इंद्रधनुष

और अन्य कहानियाँ

जगन्नाथ प्रसाद दास

भारतीय साहित्याकाश में जगन्नाथ प्रसाद दास की अपनी व्याप्ति है। एक लेखक, कवि, नाटककार, उपन्यासकार, चित्रकार, कलामर्मज्ञ, अभिनेता और आंदोलकारी या कहें कि जागरूक नागरिक के रूप में पिछले पाँच से भी अधिक दशक से वे देश के सृजनात्मक, साहित्यिक परिदृश्य पर छाए रहे। 'इंद्रधनुष और अन्य कहानियाँ' दास की रचनाओं का अनूठा संकलन है। हिंदी-जगत् के लिए ओड़िया-हिंदी की सुधी अनुवादक सुजाता शिवेन का नाम अनजाना नहीं है। संकलन में कुल 11 कहानियाँ शामिल हैं। मानवीय संबंध इनका मूल है, तो समय, समाज और परिस्थितियाँ इनकी वाहक। इन कहानियों की विशेषता यह भी है कि ये नैदानिक और अलग-अलग विवरणों से शुरू होती हैं, लेकिन किसी बिंदु पर अनजाने उनका मूड बदल जाता है और वे पाठक को एक अज्ञात क्षेत्र में ले जाती हैं, जहाँ अनसुलझे रिश्तों और रहस्यों की छाया में पाठक खुद को खोजता है। इन कहानियों के पात्र एक-दूसरे में सूक्ष्म रूप से चरणबद्ध हैं। इन कहानियों की एक विशेषता- विस्तार की धीमी, पर जान-बूझकर की गई वृद्धि है, जो पाठक को बेदम और अधीर बनाने के लिए पर्याप्त है। अपने अनूठे शिल्प और कथानक के साथ ये पाठकों को अपरिहार्य चरमोत्कर्ष पर ले जाती हैं, जिससे वह कहानी-दर-कहानी राहत तो पाता है, पर अंततः अतृप्त रह दूसरी कहानी की ओर आगे बढ़ जाता है।

इंद्रधनुष
और
अन्य कहानियाँ

इंद्रधनुष और अन्य कहानियाँ

जगन्नाथ प्रसाद दास

अनुवाद

सुजाता शिवेन



ज्ञान विज्ञान एजूकेयर

प्रकाशक • **ज्ञान विज्ञान एजूकेयर**
3639, प्रथम तल
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

संस्करण • प्रथम, 2023
मूल्य • चार सौ रुपए
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

INDRADHANUSH AUR ANYA KAHANIYAN
Stories by Shri Jagannath Prasad Das ₹ 400.00
Published by **GYAN VIGYAN EDUCARE**
3639 Netaji Subhash Marg, Darya Ganj, New Delhi-110002
ISBN 978-81-960441-9-0

अनुक्रम

1

इंद्रधनुष

वर्षा, वर्षा, वर्षा, वर्षा और वर्षा, इतनी बारिश उसने अपने जीवन में इससे पहले कभी नहीं देखी थी। मोटरगाड़ी अभी सड़क पर जैसे चल नहीं रही थी, तैर रही थी, मानो समुद्र के पानी में! सुबह जब सूरज निकला था, तो उजली धूप खिली थी। अविनाश ने सोचा था कि तीन घंटे के भीतर आराम से खाने के समय तक वे पहुँच जाएँगे, पर आधे रास्ते में बादल दिखे तो उसका मन उदास हो गया था। उसके बाद बूँद-बूँद पानी का गिरना, फिर झिपरी-झिपरी और अब आकाश फोड़ धारा-प्रवाह पानी का गिरना। रास्ता ठीक से दिखाई नहीं दे रहा था। गाड़ी चलाने में तकलीफ हो रही थी। 'रास्ते के किनारे में थोड़ी देर गाड़ी रोककर खड़े हो जाने से ठीक होगा', अविनाश ने पहले यही सोचा, फिर खयाल आया कि धीरे-धीरे गाड़ी चलाकर किसी तरह से गंतव्य तक पहुँच जाएगा। उसके हिसाब से ज्यादा दूर और जाना भी नहीं था।

सामने ठीक से दिखाई न पड़नेवाले सड़क पर से आँखें फिराकर बाईं तरफ बैठी लड़की की तरफ एक पल के लिए देखा अविनाश ने। वह बिल्कुल अविचलित होकर सामने की तरफ देखते हुए बैठी थी और मन-ही-मन मानो कुछ गुनगुना रही थी। उसे देखकर अविनाश के मन में एक निर्लिप्त भाव उभरा, गाड़ी चलाने में उसकी कोई मदद न कर पाने पर भी उसकी चिंता-तकलीफ के लिए अंतत: सहानुभूति तो प्रकट कर सकती थी। 'ऐसी औरत के साथ किस तरह से वह दो दिन या कहें तो दो रात बिताएगा!' सोचकर उसका मन संदिग्ध हो गया। पर इतनी राहत तो थी कि अच्छा नहीं लगने पर पूरे दो दिन न रुककर पहले ही वह वापस लौट सकता है।

शहर छोड़ने के समय सिर्फ मौसम ही अच्छा नहीं था, बल्कि उसका मन भी

हलका था। पास में बैठी लड़की का सान्निध्य उसे उत्फुल्ल कर रहा था और पीछे की बातें को भूलकर वह सोच रहा था कि यही कुछ पल उसके लिए खुशियाँ ला देंगे। पर यह स्थिति बस कुछ पलों तक के लिए थी। कुछ दूर जाने के बाद पुरानी सारी चिंताएँ फिर उसके दिमाग में घुसपैठ करने लगीं। उसे लगा कि ऑफिस से छुट्टी लेकर उसका चले आना एक गलत निर्णय था। उसकी अनुपस्थिति में उसके ऑफिस के कार्यकर्ता उसका क्या-क्या नुकसान कर सकते हैं, ये सारी दुश्चिंताएँ उसके मन में आने लगीं। पर ऑफिस में उसके लिए जैसे हालात पैदा हो गए थे, उसमें छुट्टी लेकर भाग नहीं आता तो कुछ दिन में वह पागल हो जाता या फिर आत्महत्या करने के बारे में सोचता।

इस तरह की भावना के कारण वह कुछ अन्यमनस्क हो गया और इस चक्कर में सामने से आती हुई गाड़ी के साथ धक्का लगने की नौबत आ गई थी। शांता उसके कंधे पर हाथ रखकर बोली, "धीरे-धीरे।" प्रकृतस्थ होकर अविनाश सँभलकर बैठा और गाड़ी चलाने की तरफ ध्यान लगाने लगा। अगर कोई दुर्घटना घट जाएगी तो भयंकर समस्या खड़ी हो जाएगी उसके लिए। ऑफिस में उसने कहा था कि किसी व्यक्तिगत काम से वह गाँव जा रहा है; पत्नी से कहा था कि ऑफिस के काम से पास के शहर में जा रहा है। ऐसी स्थिति में उसके पास और कोई उपाय नहीं होता किसी को समझाने के लिए कि वह क्यों एक अनजानी स्त्री के साथ असमय में अभयारण्य जाने के रास्ते में है!

थोड़ा सा भी उसका चित्त स्थिर होता तो कभी भी इस तरह का दुस्साहस वह नहीं करता। इसके लिए पूरी तरह से जिम्मेदार था, उसके बचपन का दोस्त मोहन। अविनाश खुद धीर, शांत, घरेलू स्वभाव का था; जबकि मोहन था बिल्कुल उसका उलटा; दायित्वहीन, मौज-मस्तीवाला, एक-एक पल को जीनेवाला व्यक्ति। उसी ने उसका परिचय करा दिया था शांता के साथ। टोनी और शांता से दोनों मिले थे एक हफ्ता पहले कॉफी हाउस में। बहुत सोच-विचार के बाद जब ऑफिस की समस्या उसके लिए असहनीय हो गई, तब मोहन के कहने पर शांता के साथ दो दिन बिताने की बात पर वह राजी हो गया था। मोहन का मत था कि अगर अविनाश पूरी तरह से ऑफिस की बात भूलकर, यहाँ से दूर कहीं समय बिता सकता है तो फिर वहाँ से लौटकर अपनी सभी समस्याओं का सामना करने में समर्थ हो चुका होगा।

अब बरसात की धीमी रफ्तार के बीच गाड़ी चलाते हुए वह सोच रहा था कि मोहन के उकसाने पर ऐसे रास्ते पर पाँव रखना संपूर्ण रूप से निरर्थक ही नहीं था, बल्कि बहुत ही अविवेक भरा कदम और खतरनाक निर्णय था। पर जब उसने स्टेशन

पर हाथ में बैग लिये इंतजार करती शांता को अपनी गाड़ी में बिठाया, तब उसके मन से सारी दुर्भावनाएँ दूर हो गई थीं। कॉफी हाउस में एक ही बार की मुलाकातवाली यह साँवली, भरे-भरे तनवाली लड़की बहुत सुंदर तो नहीं थी, फिर भी खुशी से भरा चेहरा था उसका और व्यवहार बहुत शालीन था। फिर उससे बातचीत करते समय लग रहा था, मानो उससे काफी दिनों से जान-पहचान है उसकी।

शांता को देखने से जाने क्यों उसे आ रही थी कॉलेज के दिनों की उस एक लड़की की याद, जिसके साथ कम दिनों के संबंध को वह प्रेम समझ बैठा था, पर जो संबंध कभी फिर आगे नहीं बढ़ा। लड़की का चेहरा उसे ठीक से याद नहीं आ रहा था; वह कहाँ गई, क्या कर रही है, यह खबर भी उसके पास नहीं। उस लड़की के बारे में याद आने पर अविनाश को अपने नासमझीपन की याद आ जाती थी। तब उस लड़की से मुलाकात करने के लिए डरते-डरते उसके हॉस्टल जाता था और बहुत ही बचकानी चिट्ठी लिखता था। पर वह लड़की उससे ज्यादा समझदार व संतुलित थी। जो बात उसे अविवेकी प्रमाणित कर उसे लज्जित कर देती थी, उस बात को अविनाश भुला देना चाहता था, पर वही बात अचानक उसके मन में आ गई। एक दिन उस लड़की ने उससे कहा था, "आप हॉस्टल के रजिस्टर पर अपना नाम लिखते समय कृपा करके भाई मत लिखिएगा।" उसकी बात सुनकर सिर झुकाते हुए वह वापस लौट रहा था, तब पीछे से पुकारकर लड़की बोली, "और हाँ, एक बात और, लिफाफे के ऊपर लोकल न लिखने से भी चलेगा।"

सचमुच कितना बेवकूफ था वह तब! अभी भी क्या वह वैसा ही रह गया है? उसके मन में अपने घर-संसार की वही बँधी-बधाई दिनचर्या थी और था ऑफिस का वही अप्रीतिकर परिवेश। इन दो परिस्थितियों से उबरने के लिए दो दिन का जो विराम उसने चाहा था, अब लग रहा है, वर्षा-तूफान के कारण सब बेकार हो जाएगा। इस तरह की एक नकारात्मक मन:स्थिति के समय शांता बोली, "हम पहुँच गए।" अपनी चिंताओं के घेरे से बाहर निकलकर अविनाश ने देखा, कुछ ही दूरी पर सामने था फॉरेस्ट बँगले का फाटक। अंदर पहुँचकर उसकी गाड़ी जब पोर्टिको में रुकी, पहली बार लगातार वर्षा के आक्रमण से राहत पाने के कारण अविनाश ने शांति की एक लंबी साँस ली।

बँगले में और कोई नहीं था। वहाँ के कर्मचारी ने चारों कमरे उसे दिखाकर अपनी पसंद का कोई कमरा चुन लेने के लिए कहा। शांता ने कोने में स्थित एकांत कमरे को चुना, जिसके पीछे बैठने-उठने के लिए चौड़ा आँगन था। जहाँ से

उपत्यका दिखता था। कमरे के अंदर सामान को ले जाते समय भी अविनाश को चिंतित देखकर शांता बोली, "रिलैक्स, हमें कितना अच्छा एक कमरा मिल गया!"

अविनाश बोला, "पर इस बरसात का क्या किया जाएगा?"

शांता बोली, "हर काले मेघ का एक रुपहला आस्तरण भी होता है। इतने पानी-बरसात में और कोई यहाँ नहीं आएगा, अब यह पूरा बँगला हमारा है।"

"पर इस पानी-बरसात, अँधेरे में मुझे डिप्रेशन हो रहा है।" अविनाश बोला।

"इस समय मुझे कैसा महसूस हो रहा है? हम जैसे यथार्थ में धरती में नहीं है। हैं कहीं एक स्वप्न के अंदर! उससे बढ़कर और कोई खुशी क्या हो सकती है भला?"

उन्हें एक बजे पहुँच जाना था, पर रास्ते में ही देर हो गई थी। चौकीदार ने उनसे खाने के बारे में पूछा और पास के कमरे में खाना परोसने के लिए चला गया। अब कमरे में सिर्फ शांता और अविनाश रह गए। अविनाश कमरे का दरवाजा बंद करके शांता को आगोश में लेकर चूमने लगा। शांता उसके कंधे को थपाथपाकर बोली, "जल्दी बचाने की कोई बात नहीं है। हमारे पास तो दो दिन का समय है। पहले थोड़ा रहने का इंतजाम ठीक से कर लें।"

इतना कहते हुए उसने जाकर दरवाजा खोल दिया और अपने बैग से चीजें निकालकर सजाकर रखने लगी। अविनाश तब भी अपने को सँभाल नहीं पाया था, बरसात में गाड़ी चलाकर आने की तकलीफ; मन के कोने में ऑफिस की चिंता अभी तक उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। वह सबकुछ मंत्रविद्ध-सा कर रहा था। जैसेकि शांता को बाँहों में ले लेना, जिसमें कोई उत्तेजना नहीं थी, था बस कर्तव्य का दावा! शांता की तरह वह भी अपने सूटकेस से चीजें बाहर निकालकर व्यवस्थित रखने में लग गया। शांता ने बाथरूम के अंदर जाकर भीतर से दरवाजा बंद कर लिया।

अविनाश जानता था कि उसे अब कल्पना करनी चाहिए कि बिना कपड़ों में शांता कैसी लग रही होगी! पर उसके मन में अपने वरिष्ठ कर्मचारी मि. आचारी की बात याद आ रही थी। आचारी उसके साथ सभ्यता से पेश आता था, पर कुछ दिन से उनके बीच के संबंध मानो ठंडे पड़ते जा रहे थे। अविनाश से अनजाने में हुई एक भूल के कारण कंपनी को बहुत बड़ा नुकसान हो गया था और अविनाश को लग रहा था कि आचारी उसे बचाने के लिए उसकी भरपूर मदद और समर्थन नहीं कर रहा था। उसी बात को लेकर ऑफिस में उसकी स्थिति खबरा होने लगी थी और किसी भी समय हेड-ऑफिस से कुछ प्रतिकूल आदेश आ जाएगा, इस भय में रहता

था अविनाश। आचारी जरूर हेड-ऑफिस की मति-गति के बारे में अवगत था, पर उस बारे में अविनाश को अपने विश्वास में नहीं ले रहा था। अविनाश आचारी की खुशामद नहीं करना चाहता था, पर मन के अंदर नौकरी छूट जाने की आशंका भी रहती थी। आचारी के हर व्यवहार में अब वह अपने प्रति विद्वेष और शत्रुता देखने लगा। इन सब हालात के चलते उसे लगने लगा कि वह अपने काम में और ज्यादा भूल कर बैठेगा।

शांता बाथरूम से निकली और उसी समय चौकीदार उन्हें खाने के लिए बुलाने आया। अविनाश हाथ-मुँह धोकर शांता को लेकर खाना की टेबल पर गया। चौकीदार ने उन्हें खाना परोसा और बोला, "आज मांस-मछली कुछ नहीं है। बरसात में बाजार जाना संभव हो नहीं हुआ।"

अविनाश बोला, "बरसात तो बंद होने जैसा नहीं लग रहा है, फिर रात को क्या करोगे?"

"सुबह जितनी धूप थी, उससे क्या पता था कि इतना तेज पानी गिरेगा? बाजार तो यहाँ से बहुत दूर है। देखूँगा, अगर वर्षा जरा कम हो जाए..."

अविनाश बोला, "तो क्या हमें रात को उपवास पर रखोगे तुम?"

चौकीदार बोला, "हुजूर! अभी मैं यहाँ अकेला हूँ..."

अविनाश झल्लाकर उसे कुछ कहने जा रहा था कि शांता ने उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"नरि।" चौकीदार ने कहा।

"नरसिंह या नरेंद्र?" शांता ने पूछा।

चौकीदार बोला, "नरहरि।"

खाना खाते हुए अविनाश बोला, "दाल में नमक अधिक लग रहा है।"

नरहरि को जवाब देने का मौका न देकर शांता बोली, "आज रात को खाना बनाने में मैं मदद करूँगी, तब दाल, सब्जी में नमक ठीक रहेगा।"

उसकी बात से साहस पाकर नरहरि बोला, "बात यह है कि हमारा रसोइया छुट्टी पर है। मैं किसी तरह से काम चला ले रहा हूँ। आज उसे लौटना था। पर जैसी बारिश हो रही है, कब तक लौटेगा, क्या पता?"

खाना खाकर हाथ-मुँह धाकर दोनों अपने कमरे में लौट गए। खिड़की से बरसात के पानी की बौछार आ रही थी; शांता ने खिड़की को बंद कर दिया। कमरे में अँधेरा हो गया।

शांता ने पूछा, "क्या बत्ती जला दूँ?"

अविनाश बोला, "रहने दो।"

अविनाश ने पैंट-शर्ट बदलकर पायजामा-कुरता पहन लिया और बिस्तर पर लेटकर शांता से बोला, "इधर आओ।" शांता ने ड्रेसिंग टेबल के पास जाकर अपने बालों से क्लिप खोली, माथे से बिंदी निकालकर दर्पण पर चिपका दी, गले से हार निकालकर टेबल के पास रखा और जाकर अविनाश के पास पहुँचकर लेट गई। अविनाश ने उसे अपने पास खींचा, तभी वह बोली, "एक मिनट।" और उठकर टेबल पर रखी हुई फोटो को दीवार की तरफ करके वापस लौटकर आई और बोली, "भगवान् का चेहरा मैंने दीवार की तरफ कर दिया।"

"कौन से ठाकुर?" शांता मन-ही-मन कुछ मंत्र पढ़ने लगी और कुछ देर बाद जवाब दिया, "तुम अभी ठाकुर के बारे में सुनना चाहोगे या फिर थक गए हो तो सो जाओ। या और कुछ?"

अविनाश बोला, "और कुछ।"

"और कुछ को रात के लिए रखा जाए तो... ?" शांता ने पूछा।

अविनाश बोला, "नहीं, अभी।"

शांता जब और पास खिसक आई, तब वह बोला, "ठीक है, रात को। थोड़ा सा अभी सो जाऊँ तो शायद मेरे लिए अच्छा होगा।" कहकर अविनाश ने दूसरी तरफ चेहरा घूमा लिया।

शांता बोली, "जैसी तुम्हारी इच्छा, मैं तुम्हें थपथपाकर सुला दूँगी।"

"भगवान् के बारे में कब बताओगी?"

"तुम जब चाहोगे। पर अभी सो जाओ।"

"तुमने अभी मन-ही-मन कौन सा मंत्र पढ़ा? वह मंत्र क्या था, मुझे बता सकोगी? या फिर किसी को कहने की मनाही है?"

"पहले सो जाओ। आधी नींद में देवता, मंत्र की बात सोचना ठीक नहीं है। अभी, बल्कि बाहर बरसात का शब्द सुनते-सुनते सो जाओ।"

शांता की बात सुनकर बरसात की तरफ अविनाश का ध्यान चला गया। अभी भी तेज बारिश हो रही थी और उसे याद आ गई, पानी के अंदर ऊब-चुभ होकर अपनी गाड़ी चलाने की तकलीफ।

शांता बिस्तर से उठकर जाने लगी तो अविनाश ने पूछा, "कहाँ जा रही हो?"

शांता टेबल के ऊपर रखे हुए एक छोटे पर्स को उठा लाई और तकिया के नीचे रखकर लेटते हुए बोली, "भूल गई थी।"

अविनाश को लगा कि अब उसे नींद नहीं आएगी, पर कब उसकी आँखें लग

गईं, उसे पता ही नहीं चला। जब उसकी आँखें खुलीं, तब भी बाहर बरसात उसी तरह अनवरत बरस रही थी। उसके सो जाने के बाद शांता ने उसे चद्दर ओढ़ा दिया था; उसे और ऊपर खींचते हुए अविनाश ने अपने बगल की तरफ नजर फेरी, शांता वहाँ नहीं थी। कमरे के अंदर अँधेरा घिरा हुआ था, पर पीछे बरामदे की बत्ती जल रही थी। शांता वहाँ कुरसी पर बैठकर कुछ पढ़ रही थी।

अविनाश बिस्तर से उठकर उसके पास गया। पूछा, "समय कितना हुआ ? मैं बहुत समय सो गया ना ?"

"नहीं, अँधेरा ज्यादा लग रहा है, पर अभी सिर्फ साढ़े छह बजे हैं।"

"साढ़े छह ? ऑफिस से सभी चले गए होंगे। मैं नहीं हूँ तो आचारी अभी बैठकर अपना सिर पीट रहा होगा।"

"आचारी कौन है ?"

"आचारी ? उसी जानवर के कारण तो मैं यहाँ चला आया। नहीं तो तुम कौन, मैं कौन; और फॉरेस्ट का बँगला कहाँ ? वह व्यक्ति मेरा हाकिम है।"

"तब तो मि. आचारी को तुम्हें धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने तुम्हें छुट्टी मनाने का एक सुयोग दिया।"

"धन्यवाद ? मेरी इच्छा हो रही है, उस आदमी का गला घोंटकर मार दूँ! वही तो मेरी सारी अशांति का कारण है। मैं ऑफिस छोड़कर इतनी दूर हूँ, फिर भी मेरे दिमाग में वह चिपका हुआ है। सुनोगी उस आदमी की बात ?"

शांता हँसी और बोली, "क्या फायदा होगा ऐसी अशांति की बात सुनकर ? अभी देखो, हम कैसे पृथ्वी से अलग ऐसी एक तनहा जगह पर हैं, जहाँ और कुछ नहीं है, है तो बस अँधेरा और बारिश। और बस हम दोनों!"

अविनाश अपनी कुरसी को खिसकाकर उसके पास ले गया और उसके कंधे पर हाथ रख दिया। शांता ने पढ़ रही पुस्तक को बंद करके खिड़की पर रख दी और अपना हाथ उसके हाथों पर रखकर बोली, "मैं जाकर देखती हूँ कि रात के खाने का क्या बंदोबस्त कर रहा है नरहरि।"

शांता उठकर कमरे से बाहर चली गई। अविनाश भी उसके पीछे-पीछे गया और दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया। कमरा और रसोई के बीच में दालान था, जिसके ऊपर छत थी, पर किनारे में दीवार नहीं थी, जिसके कारण बरसात में पानी के छींटों से दालान में पानी जम गया था। शांता के रसोई के भीतर चले जाने के बाद अविनाश पीछे लौट आया और शांता जिस पुस्तक को पढ़ रही थी, उसे उठाकर देखने लगा। उसने सोचा था, कोई सस्ता उपन्यास होगा। पर यह बहुत सुंदर

दिख रही एक कविता की पुस्तक थी। अन्यमनस्क भाव से पुस्तक के पन्ने पलटते हुए उसने एक-दो पंक्ति पढ़ीं, पर उसे वे सारे शब्द आकर्षित नहीं कर पाए। उस पुस्तक को वहीं रखकर कमरे में आया और अपनी सूटकेस से चीजें निकालने में व्यस्त हो गया।

सूटकेस में जो कपड़े रखे हुए थे, उसके नीचे अविनाश ने रुपए रखे थे। बहुत रुपए थे। टोनी ने जब उसे एक मोटी रकम के बारे में बताया, तब अविनाश विश्वास नहीं कर पाया। सिर्फ दो दिन के लिए इतना रुपया? मोहन ने कहा, "शांता जैसी लड़की लाखों में एक है।"

टोनी बोला, "मुझे कभी भी, किसी से उसे लेकर कोई शिकायत नहीं मिली है; बल्कि अनेक व्यक्तियों ने मुझे फोन करके संतोष व्यक्त किया है।"

अविनाश की नजर टेबल के ऊपर गई, जहाँ दीवार की तरफ मुँह करके भगवान् की फोटो रखी हुई थी। उसे उठाकर हाथों में लेकर वह रोशनी के सामने उसे बड़े ध्यान से देखा उसने। अलग-अलग कई देव-देवियों की फोटो चिपकाकर उसे फ्रेम किया गया था। सारे देव-देवियों को पहचानने की वह कोशिश करने लगा। गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्मा, कृष्ण और जगन्नाथ। कई और ठाकुरों को वह पहचान नहीं पाया। अपने पैरों की तरफ नजर गई तो देखा, उसने चप्पल पहन रखी है। चप्पल पहनकर भगवान् की फोटो छूना ठीक नहीं हुआ शायद। उसने पैरों से चप्पल उताकर, फोटो को माथे से लगाकर टेबल के ऊपर रख दिया।

उसके पास कोई काम नहीं था तो उसे खालीपन सा महसूस हुआ। साथ में कोई पुस्तक ले आता तो अच्छा रहता! पर इतना रुपया खर्च करके एक लड़की के साथ समय बिताने के लिए आकर पुस्तक पढ़ने के बारे में वह कैसे सोच पाता भला? वर्षा न हो रही होती तो दोनों साथ-साथ जंगल में कुछ दूर घूमने जा सकते थे। सुबह जरूर पानी गिरना बंद हो जाएगा और शांता को गाड़ी में लेकर वह जंगल के और अंदर जाएगा। अभी उसे उस कमरे के अंदर घुटन सी होने लगी। बाहर उस समय भी काफी तेज पानी गिर रहा था। उसने बरामदे से कुरसी और शांता की पुस्तक अंदर लाकर दरवाजा बंद कर दिया। 'रसोई में शांता क्या कर रही है, चलकर देखा जा सकता है,' उसने सोचा।

दालान में खड़े होकर उसने रसोई की तरफ देखा। वहाँ तक जाने के गलीनुमा रास्ते में पानी जम गया था और बरसात के छींटे दोनों तरफ से पड़ रहे थे। उसकी इच्छा हुई जाकर देखने के लिए कि शांता रसोई में क्या कर रही है? पर उस अँधेरे में वहाँ जाने में जाने कैसा एक भय सा महसूस हुआ उसे। पूरे जंगल ने मानो मूसलाधार

बरसात और अँधेरे के साथ इस छोटे से मकान को अपने कब्जे में कर लिया हो! बाहर की पृथ्वी से पूरी तरह से विच्छिन्न। अगर कोई दुर्घटना घट जाए तो? वह शांता को पुकारने जा रहा था, उसी समय शांता रसोई से निकलकर उसकी तरफ आने लगी।

"बेचारा नरहरि बरसात के कारण परेशानी में पड़ गया है। लकड़ी गीली है; बाहर जाकर सामान नहीं ला पाएगा। फिर भी आज के लिए काम हो जाएगा। कल सुबह की बात, कल ही देखेंगे।" शांता पास आकर बोली।

दोनों कमरे के अंदर घुसे तो अविनाश शांता को आगोश में लेने लगा तो देखा कि शांता पूरी तरह से भीग गई है। पर गीले बदन से मानो एक अद्भुत गरमाहट निकल रही थी। कमरे की मद्धिम रोशनी में शांता रहस्यमयी नजर आ रही थी। अपना हाथ हटाते हुए अविनाश बोला, "जाओ कपड़े बदल लो, सर्दी लग जाएगी।"

"मैं रसोई में फिर एक बार जाऊँगी। तब कुछ और भीग जाऊँगी। जब पूरी तरह से गीली हो जाऊँगी तो जाकर नहाकर कपड़े बदल लूँगी। तुम्हारी अगर इच्छा हो रही है तो जाओ, जाकर बरसात में थोड़ा भीग आओ।"

'अद्भुत बात कह रही है यह लड़की!' मन में सोचा अविनाश ने। उम्र होने के बाद से कभी बरसात के पानी में खड़े होने की कोई घटना उसे याद नहीं है। बरसात में भीग जाने पर निमोनिया जरूर होगा, यह एक गलत धारणा उसके मन से कभी भी दूर नहीं हो पाई थी।

उसके मन की बात को प्रतिध्वनित करते हुए शांता बोली, "क्यों डर लग रहा है? देखो।" कहते हुए वह आराम से दालान से उतरकर वर्षा के नीचे खड़ी हो गई। बाहर घना अँधेरा था और कमरे से बाहर आती रोशनी में शांता एक मूर्ति की तरह लग रही थी। अपनी दोनों बाँहें ऊपर की तरफ उठाकर अविचलित खड़ी रही और उसकी बाँहों में से पानी रिसकर उसके पाँव तक आने लगा। मंत्र-मुग्ध सा अविनाश उसे देखता रहा। एक पल को उसकी भी इच्छा हुई दालान से उतर जाए और शांता की तरफ हाथ बढ़ाकर बरसात में खो जाए। पर उसके शरीर ने उसका साथ नहीं दिया। शांता दालान के ऊपर चढ़ी और रसोई की तरफ चली गई।

अविनाश ने सोचा, 'अगर वह पानी में भीगता और उसके चलते उसे सर्दी-बुखार हो जाता तो क्या उसके पास उस मर्ज के लिए दवा है?' सूटकेस में से दवाई का डिब्बा निकालकर उसमें टटोलकर देखने लगा। आज सुबह उसे जो टैबलेट खानी थी, उसे वह खाना भूल गया था। पानी लेकर उसने टैबलेट को निगल लिया। फिर वह सारी दवाइयों को देखने लगा। दो दिन के लिए उसे जिस-जिस दवाई की

जरूरत पड़ सकती है, वह सब उसके पास है, सर्दी-बुखार की भी।

अविनाश ने सूटकेस में से व्हिस्की की बोतल को निकालकर टेबल पर रखा। पास में दो गिलास थे। वर्षा अगर नहीं हो रही होती तो वह आसपास कहीं सोडा मिल रहा है कि नहीं, इसका पता करता। खाने के कमरे में रेफ्रिजरेटर है, उसमें शायद बर्फ हो! लंच करते समय पूछ लेता। पीने के साथ कुछ खाने के लिए पैकेट भी वह साथ ला सकता था। पर अपनी समस्या से बचने के लिए यूँ लुक-छिपकर भाग आने के समय क्या इतनी सारी बातें याद आती हैं? वह भी एक वर्जित कार्यक्रम हाथ में लेकर?

इसी बीच भीगे कपड़ों में अंदर तक गीली हो चुकी शांता आकर बोली, "मैं पूरी तरह से भीग गई हूँ। बाथरूम जा रही हूँ कपड़े बदलने।"

अविनाश बोला, "तुम अपने भीगे कपड़े सुखाओगी कैसे?"

"कल जब झकाझक धूप खिलेगी तो बाहर ले जाकर सुखा आऊँगी।"

"अगर कल पानी गिरना बंद न हुआ तो?"

"तो फिर मेरे पास पॉलीथिन का बैग है, उसमें ले जाऊँगी।"

'इस लड़की को कोई फिक्र ही नहीं है,' बोतल के पास दोनों गिलास को रखकर कुरसी को पास खींचकर लाते हुए अविनाश ने मन-ही-मन सोचा। वह क्या कभी भी इस तरह निश्चिंत हो पाएगा? फिर सोचा कि इस लड़की को तो घर-परिवार, ऑफिस, रुपया, पैसा किसी के बारे में कोई हिसाब रखना नहीं पड़ रहा है। आज में ही जीती है यह। इसलिए उसकी बात ही अलग है।

कुछ देर बाद जब शांता नहा-धोकर सलवार-कुरता पहनकर स्नानघर से निकली तो सचमुच बहुत सुंदर लग रही थी। अविनाश की इच्छा हुई कि उठकर उसे आगोश में लेकर बिस्तर पर ले जाए और खाना-पीना सब भूलकर बत्ती बुझाकर बरसात का शोर सुनते हुए उसे साथ लेकर सो जाए, पर शांता के स्थिर अचंचल चेहरे की तरफ देखकर ऐसा कुछ कर पाने का साहस नहीं कर पाया वह।

शांता आकर उसके पास बैठी तो अविनाश ने दोनों गिलास में व्हिस्की डाली। "मैं भी पीऊँगी, तुमने कैसे जाना?" शांता ने पूछा।

"तो क्या तुम पीती नहीं हो?"

"मैंने ऐसा कब कहा? ठीक उत्तर यही होगा कि मुझे पीने की आदत नहीं है। पर सभी मुझे पीने के लिए मजबूर करते हैं। इसलिए उन लोगों से तर्क-वितर्क न करके गिलास उठाकर होंठों से लगा लेती हूँ, ऐसे, जैसे अभी कर रही हूँ।"

'चियर्स' कहकर शांता अपना गिलास उठाकर अविनाश के गिलास से टकराते

हुए बोली और अपने होंठों से लगा लिया। अविनाश ने अपना गिलास उठाकर एक घूँट भरा।

"अगर तुम्हें सोडा-बर्फ की जरूरत है तो कहो, मैं ले आऊँगी।"

"कहाँ से लाओगी?" अविनाश ने पूछा।

"पहले से ही किसी ने सोडा फ्रिज में छोड़ दिया है और ट्रे में बर्फ भी है। मैं ले आती हूँ।"

खूब सहजता से मानो यह कोई अपरिचित घर नहीं है, शांता जाकर सोडा-बर्फ ले आई और अविनाश के गिलास में डाल दिया। अविनाश ने एक और घूँट भरा और बोला, "तुमने तो सारी चीजें लाकर दे दीं। मुझे ऐसा लग रहा है, मानो मैं आराम से अपने घर में बैठकर अपनी पसंदीदा पेय पी रहा हूँ।"

"तुम अगर पहले बता देते तो नरहरि से कहकर ड्रिंक के साथ कुछ खाने के लिए भी बनाने के लिए कह देती।"

शांता उठकर अपने बैग में से मिक्सचर का पैकेट ले आई और उसे खोलकर अविनाश के सामने रख दिया। अविनाश बोला, "तुमने तो चमत्कार कर दिया। तुम मंत्र-तंत्र जानती हो क्या?"

शांता चुप होकर सोच ही रही थी कि क्या जवाब दूँ कि अविनाश फिर से बोल पड़ा, "तुम बहुत शांत स्वभाव की हो, क्या इसलिए तुम्हारा नाम शांता है?"

"मेरे नाम के बारे में सभी पूछते हैं, इसलिए मैं इसके उत्तर के लिए हमेशा तैयार रहती हूँ। शांता तो शांत से ही बनता है, पर शांता का और भी अर्थ है, जैसे—दूब और आँवला। और फिर शांता है कौशल्या के गर्भ से जनमी दशरथ की बेटी, और अंगराज लोमपाद की पालिता पुत्री···उसका नाम भी था शांता। ऋषि शृंग की पत्नी का नाम भी था शांता···"

"इतनी सारी बातें सुनकर तो मुझे तुमसे डरना चाहिए।"

"शांता का एक और अर्थ है, जिसे मैं सभी को नहीं कहती हूँ, पर तुम्हें बताऊँगी। शांता एक ऐसी गाय है, जिसका पाँव बाँधे बिना ही दूध दूहा जा सकता है।"

इस बात पर अविनाश को कुछ शरारत करनी चाहिए थी या फिर हँसना चाहिए था, पर उसके होंठों पर हँसी नहीं आई। उसने जल्दी-जल्दी और दो घूँट पी लिया। उसका गिलास खाली देखकर शांता ने बोतल उठाकर उससे पूछा, "और दूँ?"

"आमतौर पर मैं जितना पीता हूँ, उतना पी चुका। पर तुम अगर मेरे गिलास में डाल दोगी, तो मैं और थोड़ा पी लूँगा, तुम्हारे सम्मान में।"

शांता बोतल को गिलास के ऊपर थोड़ा सा झुकाकर बोली, "तुम्हारे पीने की कोई जिम्मेदारी मैं नहीं लेना चाहती। तुम अगर चाहोगे तो तुम्हारी इच्छा के सम्मान में मैं डालूँगी, नहीं तो बोतल बंद कर दूँगी।"

"ठीक है। मुझे और दो। मैं पीऊँगा अपनी जिम्मेदारी में। तुम क्या अपनी जिम्मेदारी में मेरा साथ दोगी?"

हँसते हुए शांता ने अपने गिलास में भी थोड़ा सा डाल लिया। उसके साथ सोडा, बर्फ मिलाया और अविनाश के साथ पीने की सहभागिता करने लगी। अविनाश बोला, "देखो, हम देर से खाना खाए थे, पर अब पीने के बाद फिर से भूख लगने लग गई।"

"क्या जाकर देखूँ कि रसोई में कितना खाना बन गया है? बेचारे नरहरि के पास जो कुछ था, उसी में खाना बनाने में लगा है। कल पानी बंद होते ही बाजार जाना होगा।"

"नहीं-नहीं, रसोई में जाने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं। तुम मेरे पास बैठी रहो। तुम क्या सोच रही हो, मैंने ज्यादा पी ली है?"

"पीने में कम या ज्यादा कुछ नहीं होता है। किसी के लिए जो ज्यादा है, किसी और के लिए वह बहुत कम भी हो सकता है, क्यों तुम्हारा क्या विचार है, इस बारे में?"

"मैं अगर सोच पाता, तो तुमसे पूछता क्यों?"

"मुझसे अगर पूछोगे, तो कहूँगी न कम पीया, न ज्यादा, तुमने सोच-समझकर ठीक पिया। क्यों ठीक कहा ना?"

"तुम्हारी बात मैं मान लेता हूँ। बरसात के कारण मन में जो अवसाद लग रहा था, वह ड्रिंक लेने से कुछ तो कम हुआ।"

शांता उठकर खड़ी हो गई और बोली, "मैं अभी जाकर खाने का इंतजाम देख लेती हूँ।" तभी नरहरि ने वहाँ आकर पूछा, "क्या खाना लगा दूँ?" उससे 'हाँ' कहकर शांता ने बोतल और गिलास ठीक उसी जगह पर रखकर टेबल साफ कर दिया और बोली, "चलो, खाना खा लेते हैं।"

नरहरि खाने की टेबल को सजा ही रहा था कि दोनों जाकर बैठ गए। नरहरि तब तक खाने का कुछ सामान ही लेकर आ पाया था और बाकी सामान लाने फिर रसोई में गया तो अविनाश से रहा नहीं गया और वह कुछ अधीर होकर बोल पड़ा, "इतनी देर क्यों लगा रहे हो? जल्दी लेकर आओ।"

शांता उसके चेहरे की तरफ देखकर उठकर खड़ी होते हुए बोली, "मैं जा रही

हूँ, नरहरि की मदद कर दूँ।" अविनाश के मना करने पर भी उसकी सुनी-अनसुनी करके नरहरि के साथ वह रसोई में चली गई। टेबल के ऊपर सारा सामान रखे जाने के बाद दोनों खाना खाने लगे।

अविनाश को चुप देखकर शांता बोली, "रात का खाना कैसा लग रहा है? अगर अच्छा नहीं लग रहा हो तो आधा दोष मेरा है।"

अविनाश ने बाहर की तरफ देखा, पानी अभी भी गिर रहा था, उसी तरह तेज-तेज। फिर बोला, "इतने खराब मौसम में इस तरह की एक निर्जन जगह पर अगर ऐसा गरम-गरम खाना मिल गया, तो यह सौभाग्य की बात है।"

शांता नरहरि से बोली, "खाना बहुत अच्छा बना है।"

खाना खाकर मुँह-हाथ धोकर अपने कमरे में जाते समय शांता ने फ्रिज से पानी की बोतल निकाल ली। अविनाश बोला, "तुम्हारे हाथ में पानी की बोतल देखकर मुझे याद आ गया कि रात में मुझे दवाई खानी है। दिन में भूल गया था, सुबह की दवाई खाना।"

नरहरि उन लोगों से विदा लेते समय बोला, "अंदर से दरवाजा ठीक से बंद कर लीजिएगा। यहाँ आसपास कोई नहीं रहता है। मैं भी सब बंद करके घर चला जाऊँगा। मेरा कमरा गेट के पास है, पर इस बरसात में पुकारने पर भी सुनाई नहीं देगा। कल सुबह कितने बजे चाय दे दूँ?"

शांता बोली, "कोई जल्दी नहीं है। हम जगेंगे, तब तुमसे मैं चाय माँग लूँगी।" नरहरि के चलने के बाद अविनाश बोला, "इस आदमी की बात सुनकर तो मुझे डर लग रहा है। इस निर्जन बँगले में हम दोनों अकेले!"

"इस बरसात की रात में जंगल के अंदर कोई भला क्यों आएगा?"

"चोर, डकैत, शिकारी नहीं तो शराब पीकर मदहोश कोई युवक! तुम्हें क्या कुछ भी डर नहीं लग रहा है?"

"भय करने की चीजें तो चारों तरफ बिखरी हुई हैं। शहर में भी घर में चोरी होने का भय रहता है, तो सड़क पर दुर्घटना का और बस के अंदर गुंडागर्दी का। इनसान कैसे जी पाएगा इतने भय में? जब आपदा आएगी, तब देखा जाएगा। पहले से ही डरकर आधा जीवन क्यों बरबाद करें?"

शांता ने गिलास में पानी डालकर अविनाश को दिया। अलग-अलग दवाई की शीशी से दवाई निकालकर एक-एक करके अविनाश खाने लगा।

"इतनी सारी दवाइयाँ?"

"कोई दवाई ब्लड प्रेशर के लिए है तो कोई थायराइड के लिए। तीन विटामिन

की गोली हैं और एक नींद की। देखो, मैंने सोचा था कि आज रात को नींद की गोली नहीं लूँगा, पर बात करते-करते उसे भी निगल गया।"

अविनाश जाकर बिस्तर पर लेट गया और बोला, "मुझे नींद आ जाए, इससे पहले मेरे पास आ जाओ।"

शांता बोली, "मैं बस पाँच मिनट का समय लूँगी।"

शांता ने बाथरूम में से अपनी गीली साड़ी को लाकर घर के अंदर दोनों खिड़कियों में किसी तरह से बाँध दिया। और बाकी कपड़ों को अलग-अलग जगहों में टाँग दिया। उसके बाद भगवान् का फोटो लेकर नीचे बैठ गई। अविनाश ने घड़ी पर नजर डाली, अभी सिर्फ साढ़े आठ बजे थे, पर लग रहा था, मानो आधी रात बीत चुकी है। वह सुबह आठ बजे घर से निकला था। देखते-देखते बारह घंटे बीत गए थे। ऑफिस गया होता तो इतने समय में वह जाने क्या-क्या काम कर लेता! पर उस बारे में अब सोचकर कोई फायदा नहीं है। उसने शांता के ऊपर अपना ध्यान केंद्रित किया। उससे जब पहली बार वह मिला था, उसके लिए मन में तब जो शारीरिक इच्छा उभरी थी और आज सुबह अपने भावी मिलन की उत्कंठा और संभावना को लेकर मन में जो उत्तेजना थी, अब उसका अहसास वह नहीं कर पा रहा था, बल्कि अविनाश सोच रहा था कि शांता से वह पूछे कि उसकी शांति का उत्स क्या है ? किस ठाकुर से, किस तरह की प्रार्थना करके उसने पाया था अपने जीवन का यह शीतल संतुलन ?

शांता ने फोटो को प्रणाम करके दीवार की तरफ घुमाकर रख दिया और उससे पूछा, "अब बत्ती बुझा दूँ?" अविनाश ने हामी भरी और अँधेरे में ही शांता अपने कपड़े उतारकर उसके पास आकर लेट गई।

अविनाश ने उसके चेहरे को अपने हाथों में लिया। अभी बाहर और भी तेज बारिश का शोर था। बीच-बीच में बादल की गड़गड़ाहट थी। दरवाजा खिड़की के परदे को पारकर बिजली की रोशनी पल भर के लिए कमरे को रहस्यमय बना रही थी। शांता के तन में थी वर्षा और अरण्य की गंध। अविनाश के मन में जो इच्छा थी, वह थी—शांता को जानने की, उसे समझने की। शांता जब उससे और थोड़ा सट गई, तब अविनाश ने पूछा, "तुमने क्या प्रार्थना की ?"

"विष्णु सहस्रनाम सुनोगे? ॐ विश्वस्मै नमः, ॐ विष्णुवे नमः, ॐ वैषटकाराय नमः, ॐ भूत भव्य भवत प्रश्वे नमः, ॐ भूतकृते नमः, ॐ भूत भूते नमः, ॐ भवाय नमः, ॐ भूतात्मने नमः, ॐ भूत भावनाय नमः, ॐ पूतात्मने नमः···क्या और सुनोगे ?"

अविनाश बोला, "हाँ।" शांता बोली, "रहने दो, कल सुबह बादल के छँट जाने पर मैं तुम्हें पूरा पढ़कर सुनाऊँगी।"

अविनाश बोला, "मैंने रुपए निकालकर रखा था, तुम्हें देना भूल गया।"

"तुम बावरे हो क्या? विष्णु सहस्रनाम सुनने के बाद तुम्हें रुपयों की बात ही याद आई? अभी सोओगे या फिर और कुछ?"

आराम से सोने के लिए शांता ने करवट लिया। उसके शरीर पर से अविनाश का हाथ ढीला होते हुए नीचे खिसक गया और वह सो गया।

आँखें खुलीं तो एक अनजानी जगह पर होने का अहसास हुआ अविनाश को। ठंड लगी तो उसने चद्दर को अपने ऊपर और थोड़ा खींच लिया। बरसात का जोर जरा सा थमा था शायद, पर पूरी तरह से बंद नहीं हुआ था। चारों तरफ नजर घुमाकर देखा, कमरे में बादल की ओर से थोड़ी से धूप की रोशनी आ रही थी। शांता नीचे बैठकर पूजा कर रही थी। उसने अगरबत्ती जलाई थी शायद, पूरे कमरे में पूजा मंडप की हलकी महक सी भरी हुई थी! बिस्तर से उठने की इच्छा नहीं हुई अविनाश की। सोचा कि शांता को पास बुलाएगा, पर वह पूजा करने में मग्न थी। आँखें बंद करके अविनाश थके हुए अपने शरीर को समर्पित कर दिया धुँधली रोशनी, गीले ठंडे मौसम, बाहर बरसात के शोर और घर के अंदर देवी के तन की महक के आगे।

फिर जब आँख खुली, तब कमरे में और थोड़ी ज्यादा रोशनी थी। शांता बरामदे में कुरसी डालकर बैठी थी। अविनाश बिस्तर से उठकर उसके पास गया, उसके पीछे खड़ा होकर उसके कंधे पर हाथ रखा। उसके हाथ पर अपना हाथ रखकर शांता ने पूछा, "चाय पीओगे? मैं जाकर ले आती हूँ।"

शांता उटकर खड़ी हो गई। शांता उदास लग रही थी। अविनाश ने पूछा, "क्या हुआ?"

"बच्चों की याद आ रही है। कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।" शांता बोली और चाय लेने रसोई की तरफ चली गई। अविनाश मुँह-हाथ धोकर आकर बरामदे में बैठ गया। आज शांता की कुरसी पर कविता की पुस्तक नहीं थी। शांता आकर चाय का कप उसकी तरफ बढ़ाते हुए बोली, "आज भी रसोइया नहीं आया। नरहरि को पानी-बरसात में बाजार जाना पड़ा सामान लाने।"

"तुम बच्चों के बारे में कह रही थी?" अविनाश ने पूछा। उसकी बातों का कोई जवाब न देकर शांता ने पूछा, "क्या चाय के साथ बिस्कुट लोगे?"

"बिस्कुट कहाँ से आएगा? नरहरि को लाने के लिए कहना था।"

"मेरे बैग में है।" शांता उठकर बिस्कुट ले आई और अविनाश के पास रख

दिए। अविनाश बोला, "मैंने क्या तुम्हारे बच्चों के बारे में पूछकर कोई गलती की ?"

"नहीं, वह बात नहीं है। मैं क्यों अपने दु:ख की बात कहकर तुम्हारा मन खराब करती ? तुम दो दिन के लिए आए हो, हँसी-खुशी में यह थोड़ा सा समय बीतना चाहिए।"

"मैंने भी सोचा था कि अपनी सारी समस्या को पीछे भूलकर इस सुंदर जगह पर निश्चिंत होकर समय बिताऊँगा। पर पहले से ही जो पानी गिरना शुरू हुआ, खत्म होने का नाम नहीं है। यहाँ पहुँचकर पहले क्लांति ने घेरा, फिर आठ या दस घंटे सो गया। सोचा था, जंगल के भीतर जाकर कुछ घूमूँगा-फिरूँगा, पर वह आशा भी नहीं है।"

"तुम्हारे सारे प्रोग्रामों में एक की बात तुम भूल जा रहे हो। मुझे भी तो साथ लाए थे तुम। क्यों लाए थे ? बेशक कुछ सुख पाने के लिए। मौसम के खराब हो जाने की तरह मैं क्यों अपना मुँह सुखाकर अपनी निजी बातें कहकर तुम्हारा मन भारी करूँ ? बल्कि तुम्हें एक कविता पढ़कर सुनाती हूँ।"

शांता अंदर जाकर कविता की पुस्तक लाकर उसके और पास कुरसी को खींचकर बैठ गई और पूछी, "पहले कविता सुनोगे या फिर मैं नाश्ता का प्रबंध करूँ ?"

"पहले कविता।" अविनाश ने कहा।

शांता ने पुस्तक खोलकर कुछ पन्ने पलटे और एक कविता चुनकर पढ़ी। उसकी आवाज शांत, सहज और स्वच्छंद थी। अविनाश कविताओं के शब्दों पर ध्यान देने की कोशिश करने लगा। यूँ तो वह कुछ-कुछ समझ पा रहा था, पर शांता के पूरी कविता पढ़ लेने के बाद भी उसके अर्थ को वह पकड़ नहीं पाया। शांता से उसने पूछा, "इस कविता का अर्थ क्या हुआ ?"

शांता बोली, "मैं क्या जानती हूँ, इसका पूरा अर्थ क्या है ? पर मुझे पढ़ना अच्छा लगता है।"

"कवि अपनी प्रेमिका से कुछ कहना चाहते हैं। प्रेमिका के साथ उनकी कुछ समस्या है; है न ?"

"तुम बैठकर इसे पढ़ते रहो। मैं जाकर नाश्ता ले आती हूँ। क्या पता नरहरि वापस लौटा भी या नहीं ?"

शांता के नाश्ता लेकर आने तक अविनाश कविता को मन-ही-मन और दो बार पढ़ चुका था। पढ़ने में अच्छा लग रहा था और अंतत: इतना समझ में आ रहा था कि कवि के मन में कुछ दु:ख रह गया है। पर कई पंक्तियाँ समझ में नहीं

आ रही थीं, जबकि कोई शब्द कठिन नहीं थे, वाक्य भी सरल थे। शांता ने उसके सामने नाश्ता सजा दिया। अविनाश ने पूछा, "क्या तुम यह सारी कविताएँ समझ पाती हो?"

"कविता क्या समझ में आती है? शायद अनूभूत की जाती है, महसूस की जाती है। अच्छा लगता है तो पढ़ती रहती हूँ, समझने की क्या जरूरत है?"

"पर कवि क्या चाहता है, यह तो जानना चाहिए, इसमें जैसे है, 'हिरन के छाल की तरह विषण्णता।' हिरन की चमड़ी में फिर दु:ख कैसे होता है?"

"हिरन की छाल देखने पर तुम्हारा मन खराब नहीं होता है? मुझे तो दु:ख लगता है। यूँ कहूँ तो हिरन के सुंदर होने पर ही मेरा मन दु:खी हो जाता है, वह सुंदर न होता तो शिकार न बनता!"

"शायद मुझे भी होता है। फिर इस कविता में हैं, प्रेम की तीन कसम। पर पूरी कविता में कहीं भी वह कसम क्या थी, जो पूरी होनी थी, उसके बारे में कुछ भी नहीं है।"

"हाँ, यह सोचनेवाली बात है। पहले तुम खा लो। फिर हम तय करेंगे कि वे तीन चीजें क्या हैं?"

शांता की तरफ ध्यान से देखा अविनाश ने। अभी वह उदास नजर नहीं आ रही थी। सुबह-सुबह नहा-धोकर तरोताजा लग रही थी शांता। पर अविनाश उसके शरीर के बारे में नहीं सोच रहा था। सोच रहा था सुबह के उसके उदास चेहरे के बारे में, उसके बच्चों के बारे में, उसके अनजाने अतीत के बारे में। विष्णु सहस्रनाम, हिरन की छाल और प्रेम के तीन वादों की बात!

"बरसात तो बंद होने को नहीं है, क्या किया जाए अब?" शांता ने पूछा।

"तुम अपने बारे में बताओ। मैं दिन भर बैठकर वे सारी बातें सुनने के लिए तैयार हूँ।"

"मेरा जीवन कैसा होगा, क्या सोचते हो तुम?"

"सहज और सुंदर। समस्या रहित, तुम अपनी मर्जी से अपना ग्राहक चुन रही हो। अच्छा कमा रही हो। खुश हो।"

"तुमने तो काफी सरल कर दिया मेरे जीवन को, जैसे कोई समस्या नहीं है! कोई दु:ख-दुर्दशा नहीं है, दुर्योग नहीं है मेरे सामने। मैं जिस तरह के पेशे में पाँव रखी हूँ, उसमें जितना भी सतर्क रहो, वह काफी नहीं होता है। उस दिन कॉफी हाउस में तुम्हारे साथ परिचय होने के बाद अगर मुझे थोड़ा सा भी शक या डर होता तो मैं पीछे हट जाती। पर हमेशा तो दस-पाँच के परिचय में किसी-किसी को पहचानने में

चूक तो हो ही जाती है। फिर केवल इतनी सी मुलाकात में पाँच मिनट में किसी को ठीक से जानना संभव नहीं है, इसलिए गलती हो जाती है और पछताना भी पड़ता है। एक उदाहरण दूँ?"

शांता अविनाश का हाथ अपनी पीठ पर रखकर पूछी, "कुछ पता चल रहा है?"

"नहीं तो!" शांता उसकी तरफ पीठ करके खड़ी हो गई और ब्लाउज खोल दिया। पीठ पर आधे हिस्से में एक गहरे कटने का दाग था। शांता बोली, "उस आदमी ने एक छुरा लेकर मेरे ऊपर आक्रमण कर दिया। वह तो भगवान् की कृपा से, किस्मत से मेरा चेहरा बच गया। ऊपर से ठीक-ठाक लगनेवाला वह आदमी बिना कारण इस तरह से हिंसक हो सकता है, यह किसे पता?"

"तुमने फिर जानबूझकर ऐसे एक पेशे को अपनाया क्यों, जिसमें इतनी आपदा की संभावना है?"

"किस पेशे में अच्छे-बुरे की आशंका नहीं है, कहो जरा? तुम भी तो अपनी नौकरी को लेकर परेशान हो।"

"पर मैं जानना चाहता हूँ कि तुमने इस पेशे को क्यों अपनाया?"

उसके प्रश्न को नजरअंदाज करते हुए शांता ने पूछा, "चाय पीओगे? बरसात की इस ठंड में और एक कप चाय और पी जा सकती है।"

चाय पीते-पीते अविनाश सोच रहा था कि कल इस समय वे लौटने के रास्ते में होंगे, वर्षा चाहे बंद हो या न हो, लेकिन उससे पहले उसको शांता से जुड़े इन सवालों के उत्तर जानना जरूरी है, शांता क्यों, किसलिए, कौन? बाहर हो रही वर्षा की तरह उसे इस भावना ने आच्छन्न कर रखा था अभी, पर शांता बहुत ही धीर-स्थिर उसके सामने बैठकर चाय पी रही थी और उसकी तरफ देखकर मुसकरा रही थी। उसके चेहरे पर सुबह के बादलों की छाया नहीं थी।

"अब इस बरसात के मौसम में और क्या किया जा सकता है?" शांता ने पूछा।

अविनाश ने सोचा, कहेगा कि चलो, बिस्तर में चलते हैं। पर उसका तन-मन तैयार नहीं था, उसके लिए। उसने कहा, "मैं तुम्हारे बारे में जानना चाहता हूँ।"

"ठीक है, पर मेरी बात सुनने के बाद अगर तुम्हारा मन खराब हो जाए तो उसके लिए मैं दोषी नहीं हूँ।"

गाँव के स्कूल में पढ़ाई करने के बाद शांता के माता-पिता ने उसकी शादी करवा दी, उससे कम पढ़े-लिखे, बिना नौकरीवाले एक बेकार जाहिल व्यक्ति के

साथ। उसके दो बच्चे हुए। पति शराब पीकर उसे मारता-पीटता रहता और फिर एक दिन घर छोड़कर चला गया। बच्चों को माँ, बाबा के पास रखकर शांता ने शहर में जाकर फिजियोथेरैपी की ट्रेनिंग ली। पढ़ाई खत्म होने के बाद जब नौकरी मिल गई, तब वह बच्चों को अपने पास ले आई।

शांता ने उठकर अपनी गीली साड़ी को बरामदे से लाकर अंदर पंखे के नीचे टाँग दिया और बोली, "मैं जाकर देख आती हूँ कि नरहरि आज हमारे खाने के लिए क्या बंदोबस्त कर रहा है?"

हो सकता है कि बरसात थोड़ा-बहुत कम हुई हो, पर बंद होने के आसार नजर नहीं आ रहे हैं। चौबीस घंटे से ज्यादा हो चुके हैं वर्षा को। अब लग रहा है, जैसे यह धारा और खत्म होगी नहीं और पृथ्वी एक सावन के अंदर थम जाएगी। बरसात अपने साथ जो धुएँ सी उदासी ले आई थी, उसे और ज्यादा विषण्ण कर दिया था शांता की जिंदगी की कहानी ने। 'हिरन के छाल की तरह?' अपने आप से पूछा अविनाश ने।

शांता ने नौकरी जरूर की, पर नौकरी की शर्त वह पूरा नहीं कर पाई। जहाँ भी उसने काम किया, हर जगह उसके शरीर पर दावा किया लोगों ने। क्लिनिक, नर्सिंग होम, हॉस्पिटल के मालिक, डॉक्टर, कर्मचारी, किसी रोगी के घर अगर कुछ दिन के लिए काम करने जाती, तो उस रोगी के परिवार के दूसरे पुरुष सदस्य, किसी की भी नजरों से बच नहीं पाई वह। पहले-पहले प्रतिवाद करके बार-बार नौकरी बदलने के बाद उसे समझ में आया कि अगर जिंदा रहकर अपने बच्चों की ठीक तरह से परवरिश वह करना चाहती है तो उसे समझौता करना ही होगा।

और बहुत सोच-विचार करने के बाद उसने निर्णय लिया कि अगर मजबूर होकर उसे इस तरह समझौता करना ही होगा, तो फिर वह करेगी अपनी शर्तों पर। उसका अधिकार होगा ग्राहक को पसंद-नापसंद करने में। उसने अपने विवेक के साथ करार कर लिया और नया जीवन शुरू किया। अब वह अपने दोनों बेटों को ज्यादा समय दे पाती है। उसके पास था सेविका बनकर किसी रोगी के लिए एक-दो दिन बाहर जाने का उचित बहाना। उसके मन में अब पृथ्वी के प्रति क्रोध, घृणा या हिंसा नहीं है। संसार के अनेक लोगों की तरह जीवन-यापन के लिए उसने भी एक ऐसे पेशे को अपना लिया था, जो उसकी मर्जी का नहीं था। उसकी जैसी परिस्थिति वाला व्यक्ति और कर भी क्या सकता है?

शांता जाकर दोपहर के खाने के बारे में पूछताछ कर रही थी। अविनाश को तब याद आ गई कुछ दिन पहले अखबार में पढ़ी हुई एक छोटी सी खबर। किसी

गाँव की सारी लड़कियाँ वेश्यावृत्ति करती हैं और इसका संचालन उनके माता-पिता, भाई करते हैं। इस व्यवस्था को लेकर सभी नाक-भौंह चढ़ा रहे थे। पर एक नारीवादी ने वहाँ जाकर अपना मत दिया था कि इन लड़कियों की स्थिति शहर में रहनेवाली देहजीवी लड़कियों से काफी अच्छी है, कारण, वे दलाल, पुलिस और असामाजिक लोगों के कब्जे से संपूर्ण रूप से मुक्त हैं।

अविनाश को फिर याद आया कि अपनी नौकरी के पहले दौर में उसने कितने प्रकार की नौकरियाँ की थीं और उसके दोस्तों ने किस रास्ते से गुजरकर वर्तमान में किस तरह की जीविका को अपनाया हैं। उसने अपने परिवार के बारे में सोचा। कितना कम समय दे पाता है वह अपने बच्चों को। अपने शरीर के बारे में, ऑफिस की समस्या से उपजी अपनी मानसिक अवस्था की बात और उससे मुक्ति पाने के लिए दो दिन के विराम की बात।

खाने की टेबल पर बैठकर जब शांता ने पूछा, "क्यों, मेरे बारे में और कुछ सुनोगे?" तब अविनाश बोला, "नहीं, तुम अपनी पुस्तक में से कुछ कविता पढ़कर मुझे सुनाना।"

खाने के बाद बिस्तर पर पास-पास लेटते समय शांता ने अपनी पुस्तक खोलकर पूछा, "वही पुरानी कविता सुनाऊँ, या फिर कोई नई कविता?"

अविनाश बोला, "वही, जो कविता सुबह पढ़ी थी, फिर से एक बार पढ़कर सुनाओ।"

"मैं एक बार तुम्हें पढ़कर सुना चुकी हूँ, अब तुम मुझे पढ़कर सुनाओ।"

अविनाश उसके हाथ से पुस्तक लेकर कविता को पढ़ने की कोशिश करने लगा, पर एक पंक्ति पढ़ते हुए दो बार अटका तो बोला, "मुझसे कविता पढ़ना नहीं हो पाएगा; तुम मुझे पढ़कर सुनाओ।"

शांता का गला स्पष्ट और संयत था। कविता के शब्द सारे सटीक, अविनाश के चेतना को सीधे आकर छू ले रहे थे। शांता का पढ़ना खत्म हुआ, फिर भी आँख बंद किए अविनाश को अनुभव हुआ, मानो शांता की आवाज और दूर जाकर फिर उसके पास लौट आ रही है! वह नींद में सो गया।

शांता ने चाय का कप हाथ में लेकर उसे उठाया और दोनों फिर बरामदे में जाकर बैठे। अविनाश बोला, "कल सुबह ही निकल जाएँगे। वर्षा बंद हो चाहे न हो!"

"कल सुबह तक वर्षा बंद हो जाएगी। सभी अच्छे दिनों की तरह बुरे दिनों का भी अंत होता है।"

"बरसात ने सबकुछ बिगाड़ दिया।"

"क्या सब बिगड़ गया? तुमने ऐसा क्या करने के लिए सोचा था, जो वर्षा के कारण नहीं कर पाए? फिर तुमने क्या यह सोचा है कि तुम ऐसा भी कुछ कर पाए, जो बरसात नहीं होती, तो शायद कर नहीं पाते?"

थोड़ा सा सोचकर अविनाश बोला, "मौसम ठीक होता तो हम बाहर घूमने चले जाते और मैं तुमसे कविता नहीं सुन पाता। बरसात के कारण मैंने तुम्हें अपने और करीब पाया।"

शांता बोली, "बरसात का बहाना लेकर शायद कोई इतनी चाटुकारिता भरी बातें नहीं कर पाता।"

अविनाश अभी अच्छे मूड में था। बोला, "हर काले मेघ का एक रुपहला आस्तरण है, तुम जानती जरूर हो।"

इस तरह बातें करते-करते रोशनी धीरे-धीरे कम होने लगी। वर्षा और जंगल मानो दिन को और भी छोटा किए दे रहे थे।

शांता बोली, "नरहरि कह रहा था कि वह आज जल्दी घर जाएगा, इसलिए वह जल्दी खाना परोस देगा। यूँ तुम अगर चाहो तो उसके जाने के बाद मैं खाना लगा सकती हूँ।"

"नहीं, नहीं। आज हम जल्दी खाना लेंगे और जल्दी बिस्तर में चले जाएँगे। हमारे पास तो अब सिर्फ बारह घंटे का समय ही बाकी रहेगा।"

"बारह घंटा तो बहुत समय होता है। कितना कुछ किया जा सकता है इन बारह घंटों में!"

"कोई व्यक्ति तो सिर्फ सोते हुए पूरा समय बिता सकता है। कल रात मैं जैसी गहरी नींद में सोया, पहले कभी इतनी अच्छी नींद ले पाया था, मुझे याद नहीं आ रहा है।"

"अच्छी बात है। और कुछ चाहे कर पाए या नहीं कर पाए, पर याद रखनेवाली नींद तो लिया, यह भी बड़ी बात है।"

शांता जाकर रसोई में एक बार घूम आई। लौटकर वह बोली, "तुम अगर ड्रिंक लेना चाहते हो तो शुरू कर दो।"

कुरसी खींचकर दोनों टेबल के पास बैठ गए। शांता जाकर फ्रिज से ठंडा पानी और बर्फ ले आई। बैग से नमकीन पैकेट लाकर प्लेट में डाला और दोनों गिलास में भरपूर व्हिस्की डाली।

अविनाश ने पूछा, "तुम भी पीओगी?"

"जरूर, कल की बात कल थी, आज की बात आज।"

"तो फिर कल क्यों नहीं ?"

"कल मैं तुम्हें ठीक से जानती नहीं थी। मेरी जैसी परिस्थिति में व्यक्ति को हरसंभव सतर्क रहना तो होगा।"

"अभी भी तुम मुझे कितना जानती हो ?"

"जितना जानना है, उतना जान गई। ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं।"

"तुम कुछ भी नहीं जानती हो मेरे बारे में। तुम कैसे जान सकोगी कि मेरे सूटकेस के भीतर छूरी है या नहीं ?"

"वह संभावना तो रहेगी ही रहेगी। हर पल किसी-न-किसी विपदा की आशंका तो है ही। तो फिर क्या हम सारा जीवन डरते हुए जिएँ ? जितनी सावधानी बरती जा सकती है, उतने में संतुष्ट रहना होगा।"

उसके साथ ताल देकर शांता व्हिस्की पी रही थी। उनका पहला गिलास खत्म होनेवाला था। अविनाश कयास लगा रहा था कि शांता उसके साथ दूसरा पैग लेगी या नहीं ? शांता बोली, "यूँ कहूँ तो मुझे पीना अच्छा लगता है।" और उसने अविनाश के साथ दूसरा पैग लिया।

अविनाश बोला, "मैं आज मदहोश हो जाना चाहता हूँ।"

शांता बोली, "हर इनसान को कभी-कभी मदहोश होना चाहिए। वह शराब पीकर हो या फिर किसी और तरीके से।"

"और किसी तरीके से कोई मदहोश कैसे हो सकता है ?"

"कविता पढ़कर, पूजा-पाठ करके, धर्म-कर्म करके, तुमने मंदिर में पूजा संकीर्तन करते हुए भक्तों को कभी देखा है ?"

"पर मुझे तुम आज विष्णु सहस्रनाम पूरा पढ़कर सुनाना।"

"मैं जब सोने से पहले ठाकुर के सामने बैठकर पढ़ूँगी, तब तुम चुपचाप बैठकर सुन सकते हो।"

"तुम पूजा करते समय क्या माँगती हो प्रभु से ?"

"पूजा करके प्रभु से माँगने पर अगर सारी मनोकामना पूरी हो जातीं, तब तो किसी की कोई भी समस्या नहीं रहती !"

"तो फिर तुम प्रभु की पूजा क्यों करती हो ?"

"पूजा के साथ माँगने का क्या संबंध है ? और मैंने खुद कैलेंडरों से फोटो काटकर, जोड़कर अपने प्रभु की तसवीर बनाई, और कुछ नहीं तो मैं अंततः दिन में दो बार चुपचाप उस फोटो के सामने बैठकर दस मिनट के लिए खुशी से पाठ कर पा रही हूँ।"

"तुम जो पढ़ती हो, उसका अर्थ क्या है?"

"तुम कविता का अर्थ पूछ रहे थे, अब प्रभु के नामों के अर्थ पूछ रहे हो! अर्थ तो है जरूर, पर उससे मुझे क्या? पढ़ने में अच्छा लग रहा है तो पढ़ रही हूँ, हिरन के छाल की तरह विषण्णयता; ॐ विश्वस्मै नमः, ॐ विष्णुवै नमः···उतना ही काफी नहीं है?"

खाना खाते समय अविनाश ने सोचा कि शांता के पास हर प्रश्न का उत्तर है। थोड़ा ज्यादा पी लेने के चलते उसका दिमाग ठीक से काम नहीं कर रहा था। फिर भी उसने सोचा कि खाना खाकर सोने जाने से पहले वह शांता को सहस्रनाम पढ़ते समय उसके पास बैठकर उसे पूरा सुनेगा जरूर।

खाना खाने के बाद शांता ने नरहरि को दूसरे दिन क्या काम करना होगा, समझा दिया; क्योंकि वे सुबह-सुबह ही वहाँ से निकल जाएँगे। अविनाश ने यह भी जोड़ दिया कि बरसात हो रही हो, तब भी वे जाएँगे। नरहरि बोला, "कल सुबह बरसात बंद हो चुकी होगी।"

शांता उसके साथ ताल देकर बोली, "हाँ, सही है। कल सुबह बरसात नहीं होगी।" पर अविनाश सोच नहीं पा रहा था कि इस बरसात का भी कोई अंत है!

अविनाश बिस्तर पर लेटकर इंतजार करने लगा कि कब शांता अपना काम खत्म करके प्रभु को लेकर नीचे बैठेगी और तब वह उसके पास बैठकर उसकी पूजा देखेगा। पर दस मिनट बाद शांता जब अपने ठाकुर को लेकर नीचे पालथी मारकर बैठी, तब अविनाश का उठने का मन नहीं हुआ। वह मन लगाकर शांता का पाठ सुनने लगा और 'हिरण्यगर्भाय रुद्राय मारीचये साधवे कांतारा गरुड़ध्वजाय' सुनते-सुनते वह सो गया।

जब नींद से उठकर आँखें खोलीं तो कुछ अस्वाभाविक घट गया-सा उसे लगा। कमरे में थोड़ा अँधेरा सा था, पर बारिश पूरी तरह बंद हो चुकी थी। समय देखा तो पाँच बज रहे थे। सबकुछ शांत था, सिर्फ शांता की साँस की सहज और मद्धिम गति के अलावा। उसे क्या अभी उठा दे? अपनी सोच पर उसे शर्म सी आई। वह फिर से सोने की कोशिश करने लगा, पर उसे फिर नींद नहीं आई, वह बिस्तर से उठ गया।

बाहर थोड़ा उजाला होने लगा था। सोचा कि बाहर बरामदे में जाकर बैठेगा। दरवाजे के सामने में शांता की साड़ी टँगी हुई थी। हाथ से छूकर देखा, साड़ी सूख चुकी थी। उसे खोलकर तह लगाकर टेबल पर रख दिया। टेबल पर शांता की कुछ और छोटी-छोटी चीजें बिखरी हुई रखी थीं। उसने उसकी घड़ी, चश्मा, कविता की पुस्तक को बार-बार छुआ। फिर दरवाजा खोलकर बरामदे में गया।

बाहर सबकुछ अद्भुत हरा-हरा नजर आ रहा था। वह अगर एक-दो दिन और रुक पाता, दोनों चलते हुए जंगल के कुछ अंदर तक घूम आते। पहले उसे थकान लग रही थी। आज जबकि जल्दी उठ गया था, फिर भी उसे तरोताजा सा लग रहा था। रात में ज्यादा शराब पीने का भारीपन भी नहीं था सिर में। बरसात के साथ ही, मानो उसका अवसाद भी जैसे दूर हो गया था।

उसे अपनी गाड़ी की खबर भी लेनी होगी। धीमे कदमों से वह दूसरी तरफ के बरामदे से होकर पोर्टिको में पहुँचा। गाड़ी के ऊपर बूँद-बूँद पानी था और कीचड़ के छींटे थे। गाड़ी खोलकर वह पोंछने वाला कपड़ा निकालकर गाड़ी पोंछने लगा। उसने गाड़ी में चाबी लगाकर चल रही है या नहीं, देखना चाहा, पर सोचा कि आवाज से कहीं शांता न उठ जाए, इसलिए गाड़ी का दरवाजा बंद करके भीतर आ गया।

शांता तब भी सो रही थी। अविनाश ने सोचा कि वह अकेला जाकर ही थोड़ा सा घूम आएगा। जूते पहनकर वह बाहर आया और बँगले का गेट पार करके सड़क पर आ गया। बरसात में धुल गए पेड़-पत्ते रोशनी में चमक रहे थे। हवा में मिट्टी की सुगंध थी। बरसात शायद बहुत पहले ही बंद हो गई थी, सड़क पर पानी-कीचड़ नहीं था। वह वापस लौट जाने की बात, ऑफिस की बात, घर की बात सोचने लगा, पर इस घने पेड़ के नीचे खड़े होकर उसे जो सबसे ज्यादा याद आ रही थी, वह थी उसके बचपन की बात।

सूरज कुछ और ऊपर आया और सुबह की धूप कुछ और तेज हो रही थी। अविनाश लौटने लगा। हाथ में घड़ी पहनना भूल गया था वह। गेट के अंदर घुसते हुए उसने देखा, नरहरि रसोई की किवाड़ खोल चुका है। कमरे में शांता की सारी चीजें व्यवस्थित रखी हुई थीं और वह बाथरूम में थी। अविनाश अपनी चीजों को सँभालने लगा। शांता शायद अभी-अभी ही बाथरूम में घुसी थी। इसलिए अविनाश ने कमरे से निकलकर नरहरि को खाने के कमरे में बुलाया, हिसाब चुकाने के लिए। वह काम भी खत्म हो गया कम समय में।

नरहरि बोला, "बरसात के कारण आपको परेशानी हुई और रसोइया के न होने से खाना-पीना भी ढंग से नहीं हो पाया। बरसात बंद हो चुकी है, आज रसोइया जरूर लौटेगा।"

अविनाश बोला, "नहीं, सब ठीक था। हमें कोई परेशानी नहीं हुई।"

शांता बाथरूम से निकल चुकी होगी। खाने के कमरे से निकलकर अपने कमरे तक जाते समय मौसम कैसा है, जानने के लिए अविनाश ने नजर उठाकर आसमान

की तरफ देखा और उसने जो देखा, उसका मन उसे देखकर एक अपूर्व आनंद से भर गया। उसने दरवाजे के पास से चिल्लाकर पुकारा, "शांता! जल्दी बाहर आकर देखो।" पर शांता पूजा कर रही थी, इसलिए उसने जवाब नहीं दिया। अविनाश नहाने के कमरे में घुसा और कपड़े पहनकर जब बाहर निकला तो देखा कि शांता बरामदे में बैठी है। अविनाश चुपचाप सूटकेस में अपना सामान रखने लगा।

शांता अंदर आई तो अविनाश बोला, "हमारा जाने का समय आ गया।" शायद कल की तरह अपने बच्चों के बारे में सोच रही थी कि क्या, शांता अन्यमनस्क लगी। उसे बाँहों में लेकर अविनाश ने उसका माथा चूम लिया। शांता ने सिर्फ एक बार अविनाश को अपने से सटाकर उससे अपने को मुक्त कर लिया और पूछा, "तुमने सुबह की दवाई खाई या नहीं?"

ब्रेकफास्ट खाकर, सामान लेकर वे गाड़ी के पास गए। गाड़ी में बैठने से पहले नरहरि को बुलाकर शांता ने उसे कुछ रुपए दिए। नरहरि बोला, "बाबू ने दिया है।" उसको अनसुना करते हुए शांता बोली, "परसो रज; (एक तरह का त्योहार, जो ओडिशा में सिर्फ लड़कियाँ मनाती हैं) है, अपनी बेटी के लिए इससे कुछ खरीद देना।"

रास्ता ठीक था। बाहर धूप खिली हुई थी। गाड़ी धीमी गति से बढ़ रही थी। अविनाश का मन हलका था। बाएँ तरफ बैठकर शांता कोई गीत गुनगुना रही थी। अविनाश ने पूछा, "क्यों हमारी मुलाकात फिर जल्दी होगी न?" शांता बोली, "जरूर।"

कुछ समय चुप रहने के बाद अविनाश ने फिर पूछा, "तुमसे कैसे संपर्क करूँगा?"

शांता उसकी तरफ चेहरा घुमाकर मुसकराई और छोटा सा उत्तर दिया, "टोनी।"

अविनाश उसे कुछ और कहने जा रहा था, पर कुछ सोचकर चुप हो गया। वह सोचने की कोशिश करने लगा कि प्रेम की वह तीन शपथ क्या हो सकती हैं?



आँखें

बहुत साल पहले की बात है यह। उस समय मैं अपने शोध--कार्य के लिए पुरी जाकर वहाँ कई–कई दिनों तक रुक जाता था। पहले–पहल मैं शहर में स्थित किसी छोटे–मोटे होटल में ठहर जाता। एक दिन समुद्र के किनारे घूमते हुए पुराने एक मित्र रॉबिन के साथ मेरी मुलाकात हो गई। पुरी में उसका एक बँगला था, जो काफी दिनों से खाली थी। उसने मुझसे कहा कि मैं जब भी पुरी आऊँ, उस खाली मकान में रह सकता हूँ। उस दिन के बाद से जब भी मैं पुरी जाता, उसी मकान में ठहरता।

वह मकान काफी टूटी–फूटी हालत में था। मकान में जरूरत के सारे साज–सामान थे, पर बहुत पुराने से, साथ ही काफी दिनों से उपयोग में न आने के कारण टूट–फूट गए थे। रॉबिन भुवनेश्वर में रहता था। एक दिन आकर मुझे होटल से अपनी गाड़ी में बिठाकर मकान दिखाने ले गया। वहाँ पहुँचकर सबसे पहले हम उस माली, जो उस मकान के बगीचे के पेड़–पौधों की देखभाल करता था, को उसके मोहल्ले से ढूँढ़कर ले आए। ताला खालकर अंदर पहुँचे, तब तक साँझ हो चुकी थी। शाम के हलके अँधेरे में घर के अंदर पहुँचकर रॉबिन ने जब लाइट जलाई तो अचानक मुझे लगा कि मैं इस घर में नहीं रह पाऊँगा। उस समय बिजली शायद कम थी या बल्ब की रोशनी बहुत मद्धिम थी और मुझे वह मकान तब बहुत उदास और अनात्मीय सा लगा। बैठक रूम से अँधेरे में घिरा हुआ, जो कमरा दिख रहा था, उस तरफ नजर डालने पर जाने क्यों मेरे दिल में भय की एक हलकी ठंडी लहर तैर गई। मन में आया कि रॉबिन से कह दूँ कि मैं इस घर में रहना नहीं चाहता। अपने काम के सिलसिले में जितने दिन के लिए भी पुरी आऊँ तो किसी होटल में ही ठहरूँ, वही मेरे लिए ज्यादा सहूलियत भरा होगा।

ठीक उसी समय वोल्टेज आ गया और कमरे में उजाला भर गया और इसी के साथ अंतरंगता की एक अद्‍भुत गरमाहट ने घर के अंदर घुसकर अचानक जैसे उसे भर दिया। रॉबिन ने सारे कमरे खोलकर मुझे दिखाए। सोने के कमरे में बिस्तर बिछा हुआ था, पर इस मकान में वह कभी-कभार ही रहता था, इसलिए सारी चीजें अव्यवस्थित पड़ी हुई थीं। और बहुत ही खराब थी रसोई और नहाने के कमरे की हालत। हम सारे कमरे देख चुकने के बाद बैठक में आए। इस कमरे से एक सीढ़ी ऊपर की मंजिल की तरफ गई थी। रॉबिन ने बताया कि ऊपर सिर्फ दो कमरे हैं और उसमें टूटा-फूटा सामान रखा हुआ है। शायद वह खुद भी कई वर्षों से सीढ़ी चढ़कर ऊपरी मंजिल में नहीं गया था।

माली रास्ते के किनारे स्थित चाय की दुकान से जाकर हमारे लिए दो कप चाय ले आया। चाय पीते-पीते मैं चारों तरफ के अँधेरे कमरे और ऊपर के अनजाने कमरों की तरफ जाती सीढ़ी की तरफ देखते हुए मन में यह तय करने की कोशिश कर रहा था कि रॉबिन को हाँ कहूँ या न? अपना मकान होगा तो मैं जब चाहूँ, आना-जाना कर सकता हूँ और जितने दिन चाहूँ, रह सकता हूँ। लोगों से मुलाकात करने में भी यहाँ सुविधा रहेगी। आसपास कुछ होटल थे, जहाँ मैं खाना-पीना कर सकता हूँ। सबसे अच्छी बात यह थी कि मुझे मुफ्त में यहाँ रहने की सुविधा मिलेगी। इन सबके अलावा सबसे बड़ा जो आकर्षण था, वह था घर के ठीक पीछे समुद्र का होना, जिसके किनारे आसानी से मैं जब चाहूँ, जाकर घूम-फिर सकता हूँ। इन सबका एक ही नकारात्मक पहलू था, वह था मकान का भूतहा परिवेश! पुरी के समुद्र के किनारे स्थित पुराने मकान अशरीरी जीवों के आस्थान के रूप में विख्यात थे और मुझे अहसास हो रहा था, जैसे यह मकान उनके स्थायी आवास का एक आदर्श ठिकाना था। ऐसे ही पेशोपेश में जब मैं पड़ा हुआ था, तभी लगा कि कोई मेरे पीछे खड़े होकर जैसे कह रहा हो, "ठहर जाओ।" मैं कुछ सोच पाता, इससे पहले मेरी जुबान से निकल गया, "मुझे घर की चाबी दे दो। पुरी आने पर मैं यहीं ठहर जाऊँगा।"

माली आकर चाय का गिलास उठाकर ले जाते हुए बोला, "चलिए, यहाँ से जल्दी निकल चलते हैं। अबकी बार बिजली एक घंटे के लिए जाएगी।" हम उठ खड़े हुए। माली ने जाकर कमरे की बत्तियाँ बुझा दीं। बाहर निकलकर रॉबिन ने दरवाजे पर ताला लगाकर चाबी मेरे हाथों में दे दी। हम मकान से निकलकर रास्ते में खड़ी कार के पास पहुँचे ही थे कि सच में ही बिजली चली गई।

यही तय हुआ कि दूसरे दिन सुबह ही मैं होटल से अपना सामान लेकर यहाँ

आ जाऊँगा। तब तक माली भी आ गया होगा और मुझे वहाँ की सुविधा-असुविधा के बारे में बता देगा। हम माली को वहीं छोड़कर गाड़ी में बैठकर होटल की तरफ चलने लगे तो मैंने पीछे मुड़कर मकान को देखा। हलके चाँद की रोशनी में वह मकान सच में एकदम एक भुतहा कोठी की तरह था; या एक विराट् राक्षस के विकराल भयानक चेहरे की तरह दिखाई पड़ रहा था, जिसकी काँच की खिड़की में जाने कैसे, किस दिशा से चाँद की रोशनी ऐसे पड़ रही थी, मानो उसकी दो आँखें हों!

उसी दिन से जब भी मैं पुरी शहर में आता, उसी मकान में रहता। इस बीच माली ने झाड़-पोंछकर उस मकान को कुछ ठीक-ठाक कर दिया था। एक इलेक्ट्रिक केतली खरीदकर मैं अपनी चाय बना लेता था; पर खाना-पीना पास के होटल में जाकर खाता था। पुरी में रहने के दौरान मेरा काम था, सुबह के समय चित्रकारों के मोहल्ले में जाकर नए-पुराने शिल्पकारों से भेंट करना, मंदिर में जाकर वहाँ के 'कारण', 'परिच्छा', 'वढाऊ' जैसे छत्तीसानियोग (पुरी श्री जगन्नाथ मंदिर की सेवा-पूजा के लिए पहले से नियुक्त 36 अलग-अलग जाति विशेष के सेवक) सेवकों से बातचीत करके उनसे तथ्य हासिल करना और मुक्ति मंडप सभा के पंडितों के पीछे पड़कर उनके कागजात देखना। जाने-आने के लिए मैं रिक्शा व्यवहार में लाता था। पहले-पहले जब मैं रिक्शा लेकर जाता था, मंदिर के पास या उसके पास के मोहल्ले में उतर जाता था। पर समस्या मेरे कैमरे को लेकर होती थी, क्योंकि मंदिर के अंदर कैमरा ले जाना मना था। तब किसी के पास कैमरा रखकर अंदर जाना होता था। कभी-कभी बेल्ट लगाकर चला जाता तो वह भी एक समस्या बन जाता था। इसलिए मैंने अब दोपहर तक के लिए एक रिक्शा कर लिया। धड़िआ सुबह-सुबह अपना रिक्शा लेकर आ जाता। मैं उसके साथ जाकर पहले कहीं से भी नाश्ता कर लेता था। फिर मंदिर के अंदर जाते समय उसके रिक्शे में कैमरा और बेल्ट छोड़ देता था। फिर दोपहर का खाना खाकर उसी के रिक्शे से घर वापस आ जाता।

पुरी में मैं हर मौसम में रहा हूँ और मुझे लगता कि इस शहर में किसी भी मौसम में दोपहर को या फिर किसी भी पहर में सोया जा सकता था। यहाँ जीवन बहुत ही धीमी गति से चलता था। कोई अगर मुझसे सुबह मिलने के लिए कहता तो मेरे पास शाम को पहुँचता। और मैं किसी से मिलने जाता, तो वह सज्जन किसी मि. परिच्छा के यहाँ जाकर किसी पुराने अखबार को पढ़ने के बहाने उनके बरामदे में बैठने के एक घंटे बाद वापस घर लौटते और मुझे देखकर घर के अंदर जरूरी

कागजात लेने के लिए जाते, तो घंटे भर बाद बाहर निकलते। गुरुवार है, एकादशी के बहाने अधिकांश दिन लोग कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं होते थे। दोपहर के समय मंदिर के अंदर सारा काम और भी धीमी गति से होता। यात्री, पंडा, पुरोहित सभी निरुत्साहित-बेजान नजर आते, मानो सब पर एक अद्भुत आलस ने अड्डा जमा रखा हो! और तो और, गर्भगृह के देवी-देवता पर भी इसका असर रहता। अधिकतर यही होता था कि मेरे काम के आदमी से मेरी भेंट नहीं हो पाती थी, तब मैं मंदिर के भीतर मुक्तिमंडप के पास वाली सीढ़ी के ऊपर जाकर बैठ जाता था। जब मंदिर के अंदर का कपाट खुलता था, तो मेरा परिचित पंडा मुझे खींचकर रत्नवेदी की परिक्रमा करा देता था। इस तरह से मेरे काम का चाहे जो हो, न हो, पर पुरी में रहते समय मेरा बहुत पुण्य-अर्जन जरूर हुआ होगा।

दोपहर के समय खाना खाकर घर वापस लौटता और धड़िआ को भेजकर मैं सो जाता। नींद खुलती, तब तक मौसम कुछ आरामदायक सा हो जाता और मैं समुद्र किनारे घूमने के लिए निकल जाता। पुरी में रहने के दिनों में इस बेलाभूमि में बिताए गए मेरे वे क्षण सबसे ज्यादा याद रखनेवाले थे। मैं कई बार सुबह भी समुद्र के किनारे घूमने चला जाता था। रेत पर खाली पाँव चलने में भी एक अपूर्व आनंद था। दिग्वलय के साथ एकाकार हो गई जलराशि देखना, उद्वेग लहरें और सजग झाऊ (देवदारू की तरह का एक वृक्ष) की आतुरता को सुनना, अस्थिर नमकीन हवा को होंठों से छूने की पुलक आज भी याद आती है तो मेरे तन--मन में सिहरन भर जाती है।

शाम के समय समुद्र किनारे घूमते समय चित्रकार मोहल्ले के बानांबर महाराणा के साथ सब दिन मेरी भेंट जरूर हो जाती थी। वह अपने थैले में अपना पट्टचित्र (एक तरह की चित्रकारी) और मुखौटा लेकर ग्राहक ढूँढ़ते घूमता रहता। कभी-कभी रेत पर अपना अँगोछा बिछाकर चित्र और मुखौटा सजा देता और उसके चारों तरफ कुछ विदेशी पर्यटक आकर जमा हो जाते थे। कुछ सामान बिक जाता तो वह अपनी चीजों को फिर से समेटकर हाथ में एक चित्र और मुखौटा लेकर समुद्र किनारे घूमने लग जाता। मैं उसी समय उसके साथ हो लेता अपने स्वार्थ के लिए। एक निष्ठावान गवेषक की तरह उससे बातचीत करने की कोशिश करता था, ताकि अपने काम के लिए जितना हो सके, तथ्य उससे आदाय कर लूँ। बाना एक सीधा-सादा मिलनसार युवक था और बहुत कम दिनों में हमारे बीच मित्रता सी हो गई।

समुद्र का किनारा जब अँधेरे से घिर जाता और चेहरा दिखाई नहीं देता था, तब मैं घर लौट आता। मंद-मंद जलती रोशनी में वह मकान मुझे बिल्कुल सहृदय

नहीं लगता था। और मैं तुरत-फुरत नहाकर बाहर निकल जाता। उस समय पुरी में अच्छा भोजन नहीं मिलता था। फिर भी मैं ढूँढ़ता था कि कहीं कोई ऐसी जगह मिल जाए, जहाँ अच्छे भोजन की व्यवस्था हो। कई दिनों तक मैं और कहीं न जाकर सीधा रेलवे होटल पहुँचकर वहाँ के बार में समय बिताता था।

समस्या आती थी रात का खाना खाकर मकान में लौटने के समय। पहले पहर में ही मेरे लौटते समय सड़क लगभग सुनसान हो जाती थी। कभी-कभार ही कोई आदमी या रिक्शा उस रास्ते से गुजरता था। सड़क की ज्यादातर बत्तियाँ खराब थीं या फिर बहुत मद्धिम जलती थीं, तो रास्ता ठीक से नजर नहीं आता था, इसलिए खूब सावधानी से पैर रखना पड़ता था। कभी-कभी अपना मकान छोड़कर मैं आगे बढ़ जाता, ऐसे में मुझे फिर वापस लौटना होता था। पर बाद में सोचकर देखा तो पाया कि इसका कारण था—घर वापस लौटने का भय।

सड़क से आती मद्धिम रोशनी से मकान का फाटक खोलकर अंदर जाता और दरवाजे का ताला खोलता था। भीतर घुसते ही बाएँ तरफ स्वीच बोर्ड था, वहाँ से लाइट जला देता। बैठक में रोशनी फैलते ही मेरी आँखें सीधे दाहिने तरफ ऊपर की ओर जानेवाली सीढ़ी, जोकि जाने किस रहस्य के अँधेरे में गुम हो जाती थी कि तरफ उठ जाती। उसके बाद मैं सोने के कमरे में जाकर वहाँ की लाइट जलाता था; फिर लौटकर बैठक की लाइट बंद करता। यह सारे साधारण काम मेरे लिए एक सुचिंतित काम की तरह थे।

मैं टेबल पर उस दिन का कागज-पत्र लेकर लिखने के लिए बैठ जाता। वही समय मेरे लिए सबसे आनंददायक था। नोटकॉपी बंद करने के बाद, कुछ काम कर लेने की खुशी को महसूस करते हुए, मैं चिट्ठी लिखने बैठ जाता। इन दिनों चिट्ठी लिखना मेरे लिए एक नशे की तरह हो गया था। जिनके साथ कई दिनों से कुछ भी संपर्क नहीं था, उनके साथ चिट्ठी लिखकर फिर से संबंध जोड़ने की इच्छा होती थी इस समय। उस मकान में बाहर के संसार के साथ संपर्क जोड़ने के लिए एक टेलीफोन जरूर था, पर ज्यादातर वह काम नहीं करता था। टेबल के पास बैठकर चिट्ठी लिखते समय कई बार मैं सोचता था कि काश! मेरा चिट्ठी लिखना कभी खत्म न होता!

समस्या तब आती थी, जब टेबल लैंप की बत्ती बुझाकर दो कदम की दूरी पर स्थित अपने बिस्तर पर जाने का समय आता था। उससे पहले मैं बीच-बीच में नजरें घुमाकर देख लेता था कि घर के सारे दरवाजे ठीक से बंद हैं कि नहीं? पर बत्ती बुझा देने के बाद मेरे सीने में जो भय उत्पन्न होता था, उसकी कोई तुलना नहीं

थी। बिस्तर पर गरमी के दिन में भी चद्दर ओढ़कर सोने के बावजूद मेरे दिल की धड़कन तेज चलने लगती। यूँ तो मैं खिड़की भी बंद रखता, फिर भी समुद्र की लहरें और झाऊ पेड़ के रोने जैसी आवाजें अँधेरे कमरे से होते हुए जब-तब मेरे सीने में समा जाती थीं। कभी-कभी इन सारे भय उपजाने वाले शब्दों के साथ ताल देकर बरसात का अलौकिक रिम-झिम संगीत भी शामिल हो जाता था।

मैं अब तक जिस बात को टालता आ रहा हूँ, अब उसे कह देना प्रासंगिक होगा। यद्यपि मैं ईश्वर, देव-देवी, भूत-प्रेत का विश्वास या भय नहीं करता था, फिर भी शायद मैं अपने भय से ही भयभीत रहता था। अँधेरा होते ही एक अशरीर भय मुझे आच्छन्न कर देता, जबकि मैं यह जानता था कि इस बंद कोठरी में मेरे अलावा और कोई कहीं नहीं है। फिर भी मैं अपने सीने के अंदर दिल की धड़कन की तीव्रता को कम नहीं कर पाता था। हर रात को इस भय की पुनरावृत्ति होती थी। हर दिन त्रास के मुहूर्त को टालने के लिए मैं हरसंभव देर से घर लौटता था और कई दिनों तक अपना साहस बढ़ाने के लिए मद्यपान करता था। मैं अपने आपको समझता था और समझाता भी था, जबकि मेरे संपूर्ण तर्कबुद्धि संपन्न मन को यह समझना, समझाना बिल्कुल भी जरूरी नहीं था कि मेरी सारी आशंका बेबुनियाद थी; पर रात को घर को लौटते समय भय मानो द्वारबंध के दूसरी तरफ मेरे लिए खिन्नता के साथ इंतजार करता रहता और मेरे अंदर घुसते ही मुझे अपने अख्तियार में ले लेता था।

यह घर अब मेरे लिए युद्ध का आह्वान बन गया था। मैं चाहता तो इसे छोड़ सकता था या रात को यहाँ आकर सोने के लिए माली को बुला सकता था, या फिर बिस्तर के पास एक और लैंप जलाकर उसे रात भर जलाकर रख सकता था। पर यह सब करता तो मेरे लिए यह हार मान लेने जैसा होता। जबकि हर हाल में मैं चाहता था कि उस अनुपस्थित अशरीरी भय की उपस्थिति की पूरी तरह से अवज्ञा कर आसानी से वहाँ अपना समय बिताता रहूँ।

एक दिन दोपहर को समुद्र किनारे घूमते समय मैंने बाना महाराणा को अपने भय के बारे में बताया। उस समय हम रेत पर चल रहे थे। मेरी बात सुनकर बाना एक पल के लिए खड़ा हो गया, आँख बंद करके मन-ही-मन कुछ पढ़ा और अपने सीने में से थोड़ा सा थूककर बोला, "आप उस मकान में रहते हैं, जानकर मैं बहुत पहले से ही बताने के लिए सोच रहा था कि वहाँ एक गोरा साहेब अपना गला काटकर मर गया था। मैं कभी-कभी घरों में भी जाकर अपने पट्टचित्र बेचा करता हूँ, पर कभी उस मकान की तरफ नहीं गया।"

मैंने भी उस गोरे साहेब के बारे में सुन रखा था, पर इस कहानी को कई दूसरे मकानों के साथ भी जोड़ा जाता था। सौ साल पहले पुरी में किसी अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने सचमुच अपने हजामत की छुरी से गला काटकर आत्महत्या कर रही थी और अब उस घटना ने कई भूत कोठियों की किंवदंती को एक ऐतिहासिक और रोमांच भरा रूप दे दिया था। मैं बाना को वही बताने जा रहा था कि उसने कहा, "चलिए, अभी चलकर एक बार आपका वह मकान देखते हैं।"

दिन के समय मुझे कभी उस मकान में डर नहीं लगता था। पर आज बाना की बात सुनने के बाद और उसके मेरे साथ होने के बावजूद जाने क्यों घर का दरवाजा खोलकर अंदर घुसने में मुझे धुक-धुकी सी हुई। मैंने मकान के सारे दरवाजे-खिड़की खोलकर उसे रोशन किया। बाना ने सारे कमरे में घूम-घूमकर देखा और फिर बैठक के फर्श पर बैठकर अपनी पोटली खोली। उसके अंदर से तीन मुखौटों का एक सेट निकालकर मुझे देते हुए बोला, "इसे दीवार पर टाँग देने से घर से भूत-प्रेत सब भाग जाएँगे। सिर्फ सोने से पहले आप इन मूर्तियों को एक बार प्रणाम कर लिया कीजिएगा।"

मैं अब तक बाना से काफी चित्र खरीद चुका था। सोचा कि शायद अपनी कुछ और चीजें बेचने का यह उसका एक और तरीका हो! मुझे पशोपेश में पड़ा देखकर मेरे मन की बात वह कुछ समझ गया शायद, बोला, "तीन मुखौटों की जरूरत नहीं है, एक होने से भी चलेगा।" अब उसने अपनी थैली में से सुभद्रा का मुखौटा निकाला और बोला, "सुभद्रा देवी माँ जिस तरह श्रीमंदिर की रखवाली कर रही हैं, वैसे ही आपके घर की रखवाली करेंगी।" मुखौटा को ले जाकर जिस टेबल पर मैं पढ़ाई करता हूँ, उससे सटी हुई दीवार पर कील में टाँग दिया और थोड़ा पीछे खिसककर उसे नमस्कार किया। "अब आपको किसी का डर या भय नहीं है," बाना बोला। मैंने उसे मुखौटा के लिए पैसे देना चाहा, पर उसने लिया नहीं।

इस तरह मेरी भुतहा कोठी का एक रक्षा कवच वहाँ शोभा पाने लगा और कभी भी किसी देव-देवी को भक्ति या प्रणाम न करनेवाला मैं रात को सोने से पहले याद से उस मुखौटा के आगे हाथ जरूर जोड़ता था। यद्यपि उससे मेरे भय में कोई कमी नहीं हुई। पहले की तरह ही हर रात मकान में घुसकर बिस्तर पर जाकर नींद में सो जाने तक मेरा समय बहुत ही दुरावस्था में बीतता। और यह थी हर दिन मेरी तर्कसिद्ध, वैज्ञानिक मति और आत्मप्रत्यय की अग्निपरीक्षा, जिसमें मैं हर बार हार जाता था। एक दिन दोपहर को मैंने अपने भय को दूर करने के लिए बैठक की सीढ़ी ऊपर जाने के लिए पाँव आगे बढ़ाया, पर ठीक उसी समय ऊपर के कमरे में किसी

की पदचाप मुझे सुनाई दी और मैंने दो कदम के बाद ही फिर से नीचे उतरकर भूत के आगे हार मान ली।

दीवार में सुभद्रा के मुखौटा लगाने के कुछ दिन बाद ही मंदिर के सेवक दत्तमहापात्र ने मुझे प्रतिरक्षा का और एक आयुध लाकर दे दिया। श्री जगन्नाथ मूर्ति से उतारकर दिया गया मोटे पीले रंग के धागे की माला। मूर्तियों को रंग करनेवाले इस सेवक से मेरी जान-पहचान हो गई थी और मुझे यह माला देना उनकी मेरे प्रति आत्मीयता का प्रमाण था। दत्त महापात्र बोले, "यह माला सेवक के अलावा दूसरे किसी के पास आसानी से नहीं पहुँची है। यह पास में रहेगी तो विपदा-आपदा पास नहीं फटकेंगे। अच्छा, अब इस मंत्रित माला के लिए कुछ दान दीजिए।" मैंने उन्हें कुछ पैसा दिया और माला को ले जाकर सुभद्रा देवी माँ के मुखौटे पर चढ़ा दिया।

पुरी में रहते काफी दिन हो गया था, पर मेरी गवेषणा खत्म ही नहीं हो रही थी। मैंने तय किया कि इस बार 'अणसर' (देव स्नान पूर्णिमा और नेत्रोत्सव के बीच के पंद्रह दिन की अवधि) के दौरान आखिरी बार आकर रथयात्रा तक रुक जाऊँगा और उतने दिनों में अपना काम खत्म करूँगा। दिल्ली से लौटकर तेज गरमी में मैं फिर उस भुतहा कोठी में रहने लगा और फिर शुरू हुई मेरे भयभीत जीवन की दिनचर्या। पर इस बार मैं काम में डूबा रहता और जो कुछ तथ्य बाकी थे, उसे इकट्ठा करने में जुट गया था। रथयात्रा खत्म होते ही मैंने लौटने का फैसला कर लिया, क्योंकि इस तरह जुटे रहने पर भी कोई गवेषणा कभी खत्म नहीं होती है। किसी एक समय में यह निर्णय लेना होता है कि जितना हो गया, बस उतना काफी है।

उसी बीच अचानक बाना मेरे पास आया। उसके साथ खूब लाल रंग का कपड़ा पहने तांत्रिक की तरह दिखनेवाला एक दढ़ियल व्यक्ति था। बाना ने उसके साथ मेरा परिचय करा दिया। उत्तर भारत से आनेवाला वह एक तांत्रिक ही था। मेरे बार-बार मना करने के बावजूद कि मुझे तंत्र-मंत्र कुछ नहीं कराना है और बहुत जल्दी यह मकान छोड़कर मैं जानेवाला हूँ, बाना और उस तांत्रिक ने बैठक में आसन बिछाकर पूजा करना शुरू कर दिया। मुझे इसके लिए कुछ पैसा नहीं देगा होगा। बाना मुझे यह आश्वासन बार-बार देता रहा और तांत्रिक ने अपने थैले में से कई तरह की जड़ी-बूटी, रंग-बिरंगी चीजें निकाल अपने सामने सजाकर रखा और जाने क्या-क्या अंट-संट पढ़ने लगा। एक घंटे बाद जब वे घर से निकले, तांत्रिक को मैंने जो रुपया दिया था, उसके बदले बाना ने मुझे निर्भर प्रतिश्रुति दिया कि यह

मकान अब संपूर्ण रूप से भूत-प्रेत रहित हो गया है। यह और बात है कि मुझे उसने जो भयनाश मंत्रित सिद्धि की एक पुड़िया दी थी, उसे बाद में खोला तो देखा कि मुट्ठी भर हल्दी के चूरे के अलावा कुछ नहीं था वह।

पुरी छोड़ने से पहले उस घर से अपने कागजात, फोटोग्राफ सब इकट्ठा करके सामान पैक करते समय सुभद्रा के मुखौटे को लूँ या नहीं, यह सोचने लगा। आखिरी में तय किया कि नहीं, यहीं इसे भूत कोठी की रखवाली के लिए रहने देता हूँ। यही नहीं, मैंने तांत्रिक की दी हुई हल्दी की पुड़िया को लेकर खिड़की से बाहर बिखेर दिया। लेकिन मैं जो यह सोचा था कि जाने से पहले एक दिन ऊपरी मंजिल में जाकर अवश्य देख आऊँगा, पर जाने क्यों अंततः ऊपर जाने का साहस नहीं कर पाया। ऐसे में अपने आपको मैंने यह कहकर समझाया कि उस कमरे में टूटी-फूटी चीजों को देखकर वहाँ भूत के होने या न होने के बारे में और क्या ज्यादा प्रमाण मैं दे पाता भला?

बरसात से भीगी एक सुबह ट्रेन में बैठकर मैंने पुरी को विदा कहा। अब मेरे सिर पर चिंता सवार थी, किसी तरह लग-जुटकर पुस्तक को लिखना! दिल्ली पहुँचकर मैंने भुतहा कोठी के मालिक दोस्त के साथ सभी को धन्यवाद का पत्र लिखा और अपने मन से सबकुछ बाहर निकाल भगाया। पुरी और उस मकान में रहते समय के वे अप्रीतिकर दिन और भयानक रातें; वहाँ के वे उमस भरे दिन, मोहल्ले के लोगों की जुबान पर का वह श्लील-अश्लील शब्दों का संसार, मंदिर के अंदर का वह पत्थरों से घिरा दीया, सिंदूर कच्छा, जनेऊ, बेंतछड़ी, लोगों के थुलथुल पेट, पीलपाँव, ऊँचे बरामदे में बैठे नशेड़ी और उनका ताश खेल, भाँग, गाँजा, महुर (एक तरह की आमिषयुक्त मिली-जुली सब्जी), फेणी (कांदा से बनी एक तरह की मिठाई), खाजा, महाप्रसाद का वह आनंद बाजार, समुद्र के किनारे एकाकार हो गई नीली जलराशि के साथ मछली और सड़े हुए पेड़-पत्ते की गंध, झाऊ पेड़ का रुदन, होंठों को छूती हुई नमकीन हवा और तन को चीरकर अंतर्मन को सहलाकर जाता समुद्र का धीर समीर, सबको।

दिल्ली के मेरे स्टडी रूम की टेबल पर अलमारी, फर्श पर जमा हुई पुस्तकों व जेरॉक्स कागजों के ढेर, नोटबुक, फोटो के ढेर को देखकर मेरे मन में भय समाया कि कैसे मैं पुस्तक को लिखूँगा? पर धीरे-धीरे समय बीतने के साथ कागज और मेरी सोच तरतीब से सजने लगी। मेरा लेख खत्म हुआ, उसकी पाद-टिप्पणी, सहायक ग्रंथ की सूची और वर्णाक्रमिक सूची तैयार हो गई। फोटो में नंबर लगाकर सब इकट्ठा करके रखा गया। किस्मत से मुझे एक अच्छा प्रकाशक भी मिल गया

और मैंने उन्हें अपनी पांडुलिपि देकर एक दुस्सह काम से मुक्ति पा जाने के कारण राहत की साँस ली।

पर राहत पाना शायद मेरी किस्मत में नहीं था। कारण, कुछ महीने बाद मेरे प्रकाशक की ओर से स्त्री संपादक का मुझे फोन आया। वे मेरे साथ पुस्तक के बारे में कुछ आलोचना करना चाहती थीं। उनके ऑफिस में पहुँचकर मैंने देखा कि पुस्तक की छपाई का काम शुरू हो गया है और संपादिका सुजैन उसका प्रूफ देख रही थीं। इस अंग्रेज भद्र महिला सुजैन का एक दक्ष संपादक के रूप में काफी नाम था और उनसे बातचीत करके मैंने जाना कि उन्होंने मेरी पुस्तक को बहुत ही ध्यान से पढ़ा है और उसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पहलू के बारे में वे संपूर्ण रूप से अवगत हैं। उन्होंने मुझे पुस्तक का प्रूफ दिया, जिसमें कई जगहों पर कुछ मंतव्य था और प्रश्नचिह्न भी। मैंने पढ़कर देखा कि वे सब सटीक थे। मैंने घर लाकर अपने लेख में उचित जगहों पर फेरबदल किया और मन-ही-मन सुजैन को धन्यवाद दिया, मेरी पुस्तक को इस तरह से सुधारने के लिए।

उस संशोधित प्रूफ को लेकर जब मैं फिर उनसे मिला तो उन्होंने मुझे एक और कागज थमा दिया। वह मेरी मूल पांडुलिपि थी, जिसके एक जगह पर निशान लगाया गया था, जहाँ मैंने यह लिखा था—इंद्रद्रूम; बोले, "आपने अभी कहा कि स्नानयात्रा के बाद जगन्नाथ एक कोठरी में बाँस के बाड़े के घेरे में अंदर पंद्रह दिन रहेंगे। पर जब ठाकुर दृश्य नहीं होंगे, उस समय पूजा-अर्चना कैसे होगी? हे देवाधिराज, उस बारे में तो आपने कुछ नहीं कहा!" ब्रह्मा बोले, "हे विज्ञ राजन, स्नान पूजा के आखिरी में इस बाँस के ऊपर सूक्ष्म वस्त्र लगाकर उसके ऊपर बलराम, सुभद्रा और जगन्नाथ के तीन काष्ठ पटल प्रतीक के रूप में पूजा के लिए रखे जाएँगे।"

इन कुछ पंक्तियों को पढ़ने के बाद मैंने उनके चेहरे की तरफ देखा। उन्होंने कहा, "इसके बाद के पृष्ठ पर आपने लिखा है कि चित्रकार सेवक के द्वार तक घंटा, छाता, तुरही लेकर शोभायात्रा निकलती है और वहाँ से काष्ठ पटल देवता को लेकर मंदिर में स्थापित करते हैं। मैंने सोचा कि आपकी पुस्तक का यह एक विशेष प्रामाणिक हिस्सा है, क्योंकि आप कह रहे हैं कि पंद्रह दिनों के लिए यही पट्टचित्र ही पूजा के लिए जगन्नाथ मंदिर के त्रिमूर्ति का विकल्प है। मैंने आपके द्वारा मुहैया कराई गई सारी फोटुओं को देखा है, पर इसमें काष्ठ फलकवाले देवता के मंदिर के अंदर ले जानेवाला कोई चित्र नहीं है। पुस्तक में यह फोटो जाना बहुत जरूरी है।"

यद्यपि वह सही कह रही थीं, पर मन से पुस्तक के बारे में मैं सारी बातें भुला देना चाहता था, इसलिए कहा, फोटो लाना अब असंभव है। पर भद्र महिला

ने पांडुलिपि को बहुत ही ध्यान से पढ़ा था, इसलिए बोलीं, "कुछ दिन बाद ही रथयात्रा है। आप एक-दो दिन के लिए पुरी जाकर आसानी से फोटो खींचकर ला सकते हैं।" मेरे चेहरे पर उदास भाव देखकर वे बोलीं, "उम्मीद है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे।"

इस तरह से बेमन से मुझे फिर पुरी जाना पड़ा, इस बार मेरे सिर पर काम का बोझ नहीं था और मैंने तय किया था कि आराम से कुछ दिन घूम-फिरकर अपने इस छोटे से काम को मैं कर लूँगा। मैं भुवनेश्वर जाकर वहीं रहा और तय किया कि जिस दिन रात को काष्ठ पटल वाले देव को मंदिर के अंदर लिया जाएगा, उसी दिन शाम को पुरी जाऊँगा और रात को फोटो खींचकर दूसरे दिन सुबह भुवनेश्वर लौट आऊँगा। पुरी में और ज्यादा दिन रहने की इच्छा नहीं थी। मैंने ठीक किया कि मेरे दोस्त को और तंग न करके मैं उस रात को पुरी के किसी होटल में ही रह जाऊँगा; उस भुतहा कोठी में नहीं रहूँगा।

भुवनेश्वर में मैं अपने दूसरे कामों में व्यस्त रहा। पता नहीं क्यों पुरी जाने के दिन मैंने रॉबिन को फोन किया और उसके पास से उस मकान की चाबी और उसकी गाड़ी लेकर पुरी जाने के लिए निकला। शायद मेरे मन में यह बात रही हो कि जब पुरी में रहना ही नहीं है तो क्यों बेकार में होटल का किराया दूँ? इस बार मेरे पास सिर्फ मेरा कैमरा था और मेरा मन हलका था। पुरी में पहुँचकर मैंने पहले चित्रकार मोहल्ले में सेवक के घर जाकर खबर ली कि कब मंदिर से घंटा, छतरी, तुरही लेकर शोभायात्रा आएगी? इन सब कामों का कोई निर्दिष्ट समय नहीं होता है, पर इतना पता चला कि सुबह होने से पहले ही यह पर्व खत्म होगा। मन में तय किया कि रात के दो बजे जाकर महाराणा के द्वार पर पहुँच जाऊँगा।

रात को होटल में खाना खाने के बाद मैं गाड़ी लेकर भुतहा कोठी पहुँचा। रात नौ बजे चारों तरफ सन्नाटा था और घर के अंदर अँधेरा। गाड़ी से बैग निकालकर, गाड़ी बंद करके, टॉर्च जलाकर फाटक खोला और मकान का दरवाजा खोलकर अंदर घुसा। दरवाजे के पास स्थित स्विच को दबाकर कमरे की बत्ती जलाकर बाकी कमरों की भी बत्ती जलाई। सोने के कमरे का बिस्तर ठीक था, शायद बहुत दिन पहले मैं जैसा छोड़कर गया था, वैसा ही। खाट पर बैठकर मैंने अपना बैग खोलकर पानी की बोतल निकालकर पिया और बैग को टेबल के ऊपर रखकर उसमें से कैमरा और सारे कागजात निकाले।

उसी समय वोल्टेज कम हो गई और सारी बत्तियाँ मद्धिम-मद्धिम जलने लगीं। मुझे फिर अपने पहले के दिनों की बातें याद आने लगीं। टेबल से नजर उठाकर देखा

तो पाया कि सुभद्रा पहले की तरह वहाँ उपस्थित हैं। और मुखौटा पर वह माला भी लटकी हुई है। मैंने खड़े होकर प्रणाम किया और उसी समय घर के बाहर स्थित समुद्र और झाऊ के पेड़ के बारे में सचेत हुआ। सोने के कमरे के दरवाजे से बाहर मेरी आँखें बैठक से ऊपर जाती हुईं उन सीढ़ियों पर टिक गईं। मेरे तन पर सिहरन व्याप्त हो गई और मैं अपने दिल की धड़कन स्पष्ट सुनने लगा।

कमरे के अंदर मद्धिम बत्ती अब मेरे साथ छुपा-छुपी का खेल खेल रही थी। कमरे की सारी चीजें मुझे बहुत विषण्ण दिखाई दे रही थीं और उसके साथ बाहर से बंद खिड़की के रास्ते भीतर घुसती समुद्र की लहरों की आवाज और झाऊ पेड़ के रोने का स्वर ताल मिला रहा था। मैंने अपनी घड़ी में रात के एक बजे का अलार्म लगाया और अपने कपड़े बदलकर सोने चला गया।

बत्ती बुझाकर बिस्तर पर लेट जाने के बाद इस बार जो भय मेरे ऊपर हावी हुआ, इससे पहले वैसा त्रास मैंने कभी अनुभव नहीं किया था। मेरी नींद अचानक गायब हो गई और चारों तरफ कई तरह की अशरीरी आशंका ने मुझे आच्छन्न कर दिया। मेरे दिल की धड़कन और तेज चलने लगी और मैं बिस्तर पर उठकर बैठ गया। तभी मुझे ऊपरी मंजिल पर चलने का शब्द सुनाई पड़ा। मैं समझ गया कि अब एक पल भी मैं यहाँ ठहर नहीं पाऊँगा। मैंने फिर बत्ती जलाई, कपड़े बदले, बैग के अंदर कैमरा, अलार्म घड़ी, बाकी चीजें रखीं और आखिरी बार सुभद्रा देवी के चेहरे की तरफ देखा। वह चेहरा पहले की तरह ही अविचलित था, पर मेरे मन को उससे कोई आश्वासन नहीं मिला। कमरा और उसकी सीढ़ियों को नजरअंदाज करते हुए मैं बाहर निकला और दरवाजे पर ताला लगाया। घर के अंदर के बनिस्बत अब बाहर का सन्नाटा मुझे ज्यादा सुरक्षित लग रहा था। बाहर का फाटक बंद करके मैं जाकर गाड़ी में बैठ गया। लेकिन वहाँ से निकलते समय पीछे मुड़कर उस मकान के अलौकिक चेहरे को देखने का साहस नहीं हुआ मुझे।

मैं सीधा जाकर एक होटल में पहुँचा। वहाँ एक रूम बुक कराया और उसके निरापद आश्रय में मैं निश्चिंत हो सो गया। मेरी नींद अलार्म घड़ी के बजने पर खुली। मैं तैयार होकर कैमरा लेकर चित्रकारों के मोहल्ले में जाने के लिए तैयार हो गया, तब तक शुरुआती रात की वह भयावह अनुभूति मेरे मन से बिल्कुल मिट चुकी थी। मैं अब चिंतित था कि कैसे मेरा काम पूरा करके दिल्ली लौट जाऊँ ?

चित्रकारों के मोहल्ले के बाहर अपनी गाड़ी खड़ी करके मैं कैमरा लेकर सेवक के घर गया। उस समय घर के अंदर पूजा-अर्चना चल रही थी। मुझे देखकर मेरे पुराने परिचित मुझे अंदर ले गए। मैं पूजा की फोटो लेकर बाहर बरामदे में जाकर

बैठ गया और इंतजार करने लगा कि कब मंदिर से घंटा, छाता, तुरही लेकर सेवक आएँगे! कोई भी ठीक से यह बता नहीं पा रहा था कि वे लोग कब तक आएँगे या फिर कहते, देखिए अभी पहुँचने ही वाले होंगे! धीरे-धीरे रात बीतती जा रही थी और गली में दर्शनार्थियों की भीड़ भी बढ़ती जा रही थी। मैंने उस भीड़ में एक विदेशी पर्यटक को देखा, जो अपना कैमरा लेकर फोटो खींचने में व्यस्त थी। वहाँ बैठे-बैठे मैं ऊब गया था, उठकर उनकी तरफ बढ़ा।

उनकी नजरों से मेरी नजर टकराई। भद्र महिला की लंबाई कुछ कम थी, उम्र का पता नहीं चल रहा था। पिचकी नाक, पर खूबसूरत सी वह कोई चीनी या जापानी महिला थी। वह भी मेरी तरफ बढ़ी और मधुर मुसकान से मेरे निर्वाक अभिवादन का नीरव उत्तर दिया। मैं उन्हें बुलाकर ले गया और पास के मकान के बरामदे में बिठाकर उनसे बातचीत करने लगा। भद्र महिला पर्यटन करने आई थीं। इस यात्रा के समय पुरी में जिस पंडा के साथ उनकी जान-पहचान हुई थी, वही उनको यहाँ लाया था मंदिर की इस अद्‌भुत परंपरा को देखने के लिए। मैंने उन्हें अपनी गवेषणा और इस पर्व के महत्त्व के बारे में उन्हें बताया। मैंने उन्हें अपना पता लिखा पुरजा दिया और उन्होंने मेरी नोटबुक में अपना नाम और जापान का पता लिख दिया।

उसी समय घंटा, तुरही लेकर मंदिर से सेवक पहुँच गए। चित्रकार सेवक काष्ठ पटलवाले जगन्नाथ देवों का चित्र लेकर बाहर निकला और अब सदल-बल शोभायात्रा मंदिर की ओर चलने लगी। मैं फोटो खींचने में व्यस्त हो गया और अलग-अलग दिशाओं से कई तरह की फोटो खींचकर निश्चिंत हुआ कि इस बार पुस्तक के लिए जरूरी फोटुएँ मिल जाएँगी। गली से निकलकर शोभायात्रा ने जब मंदिर की तरफ रुख किया तो मैंने अपना कैमरा बंद करके बैग में रखा, क्योंकि इसके बाद के पर्व के फोटो की जरूरत मुझे नहीं थी। वहाँ से लौटने से पहले मैं उन जापानी महिला को ढूँढ़ने लगा। उनका नाम था आयुमी और मुझे यह नाम अच्छा लगा, इसलिए मुझे याद रह गया था, पर उनके शहर का नाम मैं भूल गया था। पर वे मुझे नहीं मिलीं। मैं फोटो खींचने में जब व्यस्त था, तभी शायद वे चली गई थीं।

उसी दिन मैं पुरी छोड़कर भुवनेश्वर पहुँचा, रॉबिन को उसके घर की चाबी लौटाई और दिल्ली लौट गया। घर पहुँचकर जितनी जल्दी हो सका, अपने परिचित स्टूडियो में फिल्म रोल दे दिया। यद्यपि पूरा रोल व्यवहृत नहीं हुआ था। सुजैन को फोन करके बता दिया कि एक-दो दिन में मैं उनके पास फोटो पहुँचा दूँगा।

समस्या की शुरुआत हुई यहीं से। स्टूडियो में जाकर जब मैंने अपनी फोटुएँ माँगी, तो वहाँ का जो सहकर्मी था, उसने एक लिफाफे से फोटुओं की नेगेटिव

निकालकर दिखाई। छत्तीस फोटुओं की रील में से आधी रील में कुछ भी नहीं था और बाकी आधा सफेद हो गया था और चार फ्रेम में सिर्फ दो गोलाकार छवि के सिवा कुछ नहीं था। मैंने सोचा कि शायद कहीं कुछ अदला-बदली हो गई है। और वह शायद कोई दूसरा रोल निकालकर मुझे दिखा रहा है। पर उसने जोर देकर कहा कि मैंने उसे यही रोल दिया था। खिन्न होकर मैंने उसे अपने मालिक को बुलाने के लिए कहा।

फोटो दुकान का मालिक अनुपम मेरा पुराना परिचित है। वह आकर मुझसे बोला कि उसने खुद मेरे दिए गए रोल पर काम किया था और अचरज किया था कि मैंने सिर्फ चार फोटो ही क्यों खींचे हैं? मैं खिन्नता के साथ बोला, "मैंने ऐसी कोई भी फोटो नहीं खींची थी और बाकी जो फोटो मैंने खींची थीं, हो सकता है कि ठीक से न खींची हों, पर नेगेटिव में कुछ तो दिखता!"

अनुपम ने फिर एक बार नेगेटिव को देखा; और बोला, "कैमरे में कुछ गड़बड़ी होगी, इसलिए शायद ऐसा हुआ हो!"

मैंने कहा कि यह बिल्कुल भी मेरी फिल्म नहीं है, क्योंकि यह जो चार फोटो फ्रेम दिख रहे हैं, ऐसी कोई भी फोटो मैंने नहीं खींचा था।

अनुपम ने नेगेटिव को रोशनी की तरफ रखकर देखा और बोला, "शायद यह किसी स्त्री के सीने का क्लोजअप है। तुमने तो इससे पहले भी कई बार इस तरह की फोटो खींचकर मुझे दिया है।" मैंने नेगेटिव को उठाकर युग्म वृत्तों को देखा। अनुपम शायद ठीक कह रहा है; मैंने शायद ऐसी फोटो कभी खींचा था। पर इस बार तो कैमरे में नया रील डालकर ले गया था और सिर्फ उस शोभायात्रा की ही फोटो खींचा था। अनुपम बोला, "तुम जरा इंतजार करो; मैं तुम्हें प्रिंट करके दिखाऊँगा।"

अब मैं हताश और खिन्न होने लगा। इतना समय, मेहनत और पैसा खर्च करने के बाद फोटो में रह गया था किसी स्त्री के सीने का चित्र! अब मेरी पुस्तक का क्या होगा? मैं अपने प्रकाशक को क्या जवाब दूँगा? और इन सबके अलावा जो बात मुझे सबसे ज्यादा परेशान कर रही थी, वह थी ऐसा संभव हुआ कैसे?

अनुपम ने मेरे हाथ पर जो चार गीली फोटुएँ पकड़ाईं, उसे देखकर मुझे और कोई नया तथ्य नहीं मिला। अनुपम से बोला, "यह एक असंभव बात है। कहीं कुछ गड़बड़ है।" अनुपम शांत स्वभाव का व्यक्ति था, बोला, "तुमने शायद पहले चार फोटो खींचे थे और बाद में जो फोटो लिये, उसका एक्सपोजर ठीक नहीं हुआ।" मैं मन-ही-मन विरक्त हुआ उसकी बात सुनकर। उस दिन रात को भूत कोठी में सुभद्रा की फोटो के नीचे वाली टेबल पर कैमरा रखकर उसमें नई रील डाली थी

और पहली फोटो चित्रकार मोहल्ले में ही जाकर खींची थी। अनुपम के साथ और तर्क करके फायदा नहीं था। उसके पास से नेगेटिव और उस गीले प्रिंट को लेकर बाहर निकलते समय अनुपम से बोलकर आया कि फिर कभी मैं यहाँ नहीं आऊँगा।

घर लौटते हुए मेरे मन की स्थिति बहुत खराब थी। मैंने अपना कैमरा सरंजाम को अच्छी तरह से देखा कि और कहीं वह रील रह न गया हो! पर ऐसी भूल होने की कोई संभावना नहीं थी। मेरे सारे कागजात, नेगेटिव, कॉण्टेक्ट प्रिंट, नंबर, तारीख लिखे हुए व्यवस्थित रखे हुए थे। हाथ में पकड़ा हुआ गीला नेगेटिव ही सही रील थी। उस दिन शाम को मैं फिर परेशान होकर अनुपम के पास गया कि शायद उसकी दुकान पर ही कुछ गड़बड़ हो गई हो!

उस दिन अनुपम ने मुझे अपनी दुकान के अंदर ले जाकर बिठाया और चाय मँगवाई, फिर बोला, "यहाँ उस तरह की कोई गलती होने की संभावना नहीं है; तुम्हारे जाने के वाद मैंने एक बार फिर ढूँढ़ा हर जगह। तुम्हें जिस नेगेटिव का प्रिंट कराकर दिया, वही तुम्हारी फिल्म है।" मैं खिन्नता के साथ बोला कि मैंने इस तरह की कोई फोटो खींची ही नहीं थी, मैंने तो पुरी की गलियों में लोगों की फोटो खींची थी, किसी स्त्री के सीने की क्लोजअप नहीं।

मैंने लिफाफे के अंदर से वहाँ चारों प्रिंट निकालकर अनुपम की तरफ बढ़ाते हुए कहा, "इसे कोई भी कभी किसी स्त्री के सीने की फोटो नहीं कहेगा, अगर उसका मन कुत्सित न हो!" अनुपम बोला, "मैं जानता हूँ। पर तुमने इससे पहले कई कामसूत्र के चित्र लाकर प्रोसेस करने के लिए दिए थे, मैंने सोचा कि शायद यह भी उसी तरह के किसी चित्र का क्लोजअप है!" मैं विरक्त होकर बोला, "यह कैसे संभव है कि मैंने जो फोटो खींचा था, उसके बदले नेगेटिव में कोई और फोटो आ जाएगा?"

कुछ पल चुप रहकर अनुपम बोला, "तुम स्पिरिट फोटोग्राफी की बात जानते हो? फोटो खींचने के समय नेगेटिव के अंदर जो नहीं है, वैसी चीजें भी आ जाती हैं। तुम दो व्यक्तियों की फोटो खींचे हो, पर प्रिंट करते समय पता चलता है कि उनके पीछे कोई तीसरा व्यक्ति खड़ा हुआ है। फोटोग्राफी की दुनिया में ऐसे अनेक उदाहरण है।"

मैंने देखा कि बात घूम-फिरकर फिर वही भूत के पास लौट आ रही है। चाय आ गई तो चाय पीते-पीते बोला, "मेरे फोटो से, लेकिन पचास लोग कहाँ गायब हो गए और चार-चार फ्रेम में किसी स्त्री का सीना आ गया? और बाकी फ्रेम में तो कुछ भी नहीं है! यह बात स्पिरिट फोटोग्राफी में भी संभव नहीं होगी।" अनुपम

से विदा लेकर लौटते समय मन बहुत विषण्ण था। मैंने तय किया कि उस दिन शाम से पहले ही खूब शराब पीकर मैं अपना गम गलत करूँगा और कल सुबह प्रकाशक को फोन करके बता दूँगा कि इस पुस्तक को वैसे ही छाप दें, इस जरूरी फोटो के बिना ही।

पर घर में मेरे लिए और एक चमत्कार इंतजार कर रहा था। उस दिन की डाक में एक मोटा लिफाफा था और उसके अंदर था—'अणसर पट् शोभायात्रा' के कई चित्र; यह सब आयुमि के द्वारा खींचे गए फोटोग्राफ थे। मैंने लिफाफे के अंदर ढूँढ़ा कि कोई चिट्ठी होगी, पर उसमें फोटुओं के अलावा और कुछ नहीं था। ऊपर में प्रेषक का पता भी नहीं था। मैंने अपने कागजात में से अपनी नोटबुक निकाली, जिसमें आयुमि ने अपना पता लिखकर दिया था। बार-बार बारीकी से ढूँढ़ने के बावजूद उस कॉपी में उनका पता नहीं मिला। बहुत अस्पष्ट सा उनका चेहरा मुझे याद आ रहा था, पर कैसे उन्हें धन्यवाद दूँ, मैं समझ नहीं पा रहा था। मैंने फिर एक बार लिफाफे को पलटकर देखा। चिट्ठी भारत के ही किसी जगह से आई थी, पर डाकघर की मुहर की अस्पष्ट छपाई से पता नहीं चल रहा था कि कहाँ से आया था? तुम जहाँ भी हो, तुम्हें अनेक-अनेक धन्यवाद आयुमि। मैंने मन-ही-मन उस धुँधले चेहरे से कहा और फोन करके अनुपम को भी यह सुसंवाद सुना दिया।

अब मैंने नियंत्रित होकर पुस्तक में कौन-कौन सी फोटो जाएगी, उसे चुन लिया। दूसरे दिन सुजैन को वह सारे चित्र देते समय सोचा था, उन्हें अपने इस अपूर्व अनुभव के बारे में बताऊँगा, पर मुझे लगा, जो मेरे लिए अलौकिक था, दूसरों के लिए शायद इसमें कोई आकर्षण नजर न आए! सुजैन उन फोटो में से अपने काम की उपयुक्त फोटो चुनने लगी। उन फोटो में गलती से मैंने वे चारों फोटुएँ भी रख दी थीं। उसे अलग निकालकर रखते हुए, इतनी सारी फोटुओं में से सुजैन ने सिर्फ चार फोटो चुने और बाकी फोटो मुझे लौटाते हुए पूछा, "इन फोटुओं के लिए क्रेडिट किसे देना होगा?" मैंने कहा लेखक को। सुजैन फोटुओं को फिर एक बार देखकर बोली, "नहीं हो सकता, क्योंकि हर फोटो में सेवकों के साथ आप भी मौजूद हैं।" मैंने आयुमि के बारे में बताने के लिए सोचा, पर फिर सारी बातें बखान करनी होंगी सोचकर बोला, किसी का भी नाम नहीं देने से भी चलेगा।

मैं वहाँ से लौटकर घर पहुँचा ही था कि सुजैन का फोन आ गया, यह कहने के लिए कि मैंने अपने चारों फोटोग्राफ, जिसे वे उपयोग में नहीं लाएँगी, वहीं उनकी ऑफिस में छोड़ आया हूँ। मैं समझ गया कि वे सब वही भौतिक फोटोग्राफ थे, जिसे मैंने नहीं खींचा था। मैंने कहा कि उन फोटुओं की मुझे कोई जरूरत नहीं है।

कुछ महीने बाद जगन्नाथ चित्रपट पर मेरी पुस्तक, प्रूफ रीडिंग, ले-आउट, कवर डिजाइन की राह से गुजरते हुए छपकर तैयार हुई। अब मैंने अपने जीवन से इस गवेषणा वाले हिस्से को काटकर दूसरे कामों में मन लगाया। इसी बीच एक दिन मेरे प्रकाशक ने मुझे बताया कि उस पुस्तक के विमोचन के लिए अपने घर में एक छोटा सा आयोजन रखा है। पहले भी उनके ऐसे अनुष्ठानों में मैं गया था, इसलिए जानता था कि यह सब उनके घर में सिर्फ लोगों से मिलने-मिलाने का कारोबार है, पुस्तक तो एक बहाना भर है।

मैं उनके द्वारा तय किए गए स्थान पर ठीक समय, ठंड की शाम 7 बजे पर पहुँच गया। मैं वहाँ पहुँचा तो सुजैन के अलावा वहाँ और कोई उपस्थित नहीं था। प्रकाशक बंधु बोले, "आज दूसरी एक जगह पर एक और आयोजन है, इसलिए हमारे अतिथि यहाँ कुछ देर से आएँगे। पर हम उनका इंतजार न करके अपना ड्रिंक लेना शुरू कर सकते हैं।" सुजैन और मुझे ड्रिंक का गिलास देकर प्रकाशक अंदर चले गए, शाम की व्यवस्था के बारे में पूछताछ करने के लिए।

बैठक के कमरे के कोने में एक टेबल पर मेरी पुस्तक की पंद्रह-बीस कॉपी सजाकर रखी हुई थीं। उसमें से एक कॉपी उठाकर सुजैन उसका पन्ना पलटते हुए बोली, "पुस्तक अच्छी बन पड़ी है।" मैंने कहा, "अगर आप पुस्तक की साज-सज्जा, परिपाटी, गेटअप के बारे में कह रही हैं तो उसको इस तरह से सुंदरता के साथ निकालने का श्रेय आपका है।" सुजैन बोली, "मैं पुस्तक के तथ्य के बारे में कह रही थी। पुस्तक को लिखने में आपको काफी कष्ट उठाने पड़े होंगे।" मैंने कहा, "मेरे लिए सबसे कठिन काम था, जब आपने मुझे दोबारा 'अणसर पट् शोभायात्रा' की फोटो लाने के लिए भेजा था।

उस समय तक हमारे अलावा और कोई अतिथि नहीं आए थे, इसलिए मैं सुजैन को उस फोटोग्राफ के रहस्य के बारे में बताने लगा। पुरी शहर की उस भुतहा कोठी में रहने के दिन, बानांबर का सुभद्रा का मुखौटा मुझे लाकर देना, 'अणसर' रात में जापानी स्त्री का आविर्भाव और अंतर्धान होना, मेरे कैमरे के अंदर भूत का घुसकर मेरे फिल्म रोल को नष्ट करना और आखिरी में मेरी जरूरत की फोटुएँ ठीक समय पर अपने आप मुझ तक पहुँच जाना! यह सारी बातें कहते-कहते मैं एक बार फिर रोमांचित हो उठा। सुजैन मेरी बातों को बड़े गौर से सुन रही थीं और बारीकी से प्रश्न भी पूछ रही थीं, हाथ में गिलास लेकर सिगरेट पीते-पीते मेरी बातों को सुनकर आमोदित हो रही थीं। जैसे मेरी बातों के आखिर में उनकी आँखें सिकुड़ गईं; मेरी तरफ सीधी नजरों से देखते हुए एक असंपृक्त प्रश्न पूछीं, "आप कहानी भी लिखते हैं या नहीं?"

मैंने कहा, "हाँ, पर इसके क्या मायने हुए?"

सुजैन बोलीं, "आपने जो कुछ मुझसे कहा, यह एक सुपरिकल्पित रहस्य कहानी है।"

मैंने कहा, "पर यह सब शत-प्रतिशत सच है; जो जैसा घटा था, मैंने ठीक वैसा ही कहा, थोड़ी सी भी अतिरंजना इसमें नहीं है।"

उसी समय उस शाम का पहला अतिथि आ पहुँचा। मैंने उठकर उनका अभिवादन किया। पर मेरे साथ हाथ मिलाकर वे जाकर प्रकाशक के साथ बातचीत में व्यस्त हो गए और मैं लौटकर सुजैन के पास जाकर बैठ गया। सुजैन बोलीं, "मेरा सीधे-सीधे यह कह देना उचित होगा कि मैं वर्तमान में एक रहस्य भरी पुस्तक का संपादन कर रही हूँ, 'कोलकाता में शेरलॉक होम्स'।"

मैंने कहा, "बहुत दिन पहले मैंने एक बांग्ला कहानी पढ़ी थी कि कैसे श्रीमान शेरलॉक होम्स और उनके सहयोगी बाटु सेन ने एक बहुत ही भयानक अपराध केस का समाधान किया था।"

सुजैन बोली, "नहीं, इस उपन्यास का असली शेरलॉक होम्स इंग्लैंड से कोलकाता आए हैं; उनके साथ वॉटसन नहीं हैं, पर उन्हें मदद करने के लिए मिल गए हैं बंगाली मनस्तत्वविद् प्रो. मुखर्जी, जोकि पत्र के माध्यम से फ्रायड के मित्र हैं। एक विवाद भरे संन्यासी आश्रम में घट गए एक अलौकिक अपराध के रहस्य का वे परदाफाश कर रहे हैं, क्या यह भूमिका आपको आकर्षक नहीं लग रही है?"

"बेशक; पर मेरी कही हुईं बातों के साथ इसका क्या संबंध?"

उसी बीच आए एक और अतिथि का स्वागत करके हम फिर आकर अपनी जगह पर बैठ गए। सुजैन बोलीं, "इसी उपन्यास को एडिट करते समय मेरा मन भी शेरलॉक होम्स की अनुप्रेरणा से काम कर रहा है। मैं आपकी कहानी में ऐसे अनेक पहलू देख पा रही हूँ, जिसे एक ग्रेट डिटेक्टिव आसानी से पकड़ पाता।"

"जैसे?" मैंने प्रश्न किया।

"पहली बात है रंग। वैसे यह बात आपकी कहानी में आना स्वाभाविक है, क्योंकि आप उस समय रंगीन चित्र के बारे में गवेषणा कर रहे थे। पर मैं एक निर्दिष्ट रंग के बारे में बोल रही हूँ।"

"किस तरह का रंग? मैंने किसी रंग के बारे में अपनी भूत की कहानी में नहीं कहा है।"

"पीला रंग, जोकि सुभद्रा का रंग है। और आपके कमरे की दीवार पर सुभद्रा का ही मुखौटा टँगा हुआ था।"

"हाँ, पर उसका कारण था कि बानांबर ने मुझे सुभद्रा का मुखौटा दिया था। वह अगर बालभद्र या जगन्नाथ का मुखौटा दिया होता तो भी मैं वही टाँगता। पर उसने मुझे सुभद्रा का ही मुखौटा क्यों दिया?"

"मूल बात पर अब आते हैं डियर वॉटसन।"

इस बात पर सुजैन ने मेरे गवेषणालब्ध का ज्ञान का संपूर्ण सदुपयोग करके कहा, "चित्रकार जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा तीनों के मुखौटे का सेट बनाते हैं, जैसा एक सेट आपने मुझे दिया था। पर कोई-कोई विदेशी पर्यटक सिर्फ जगन्नाथ, बलभद्र का मुखौटा लेते हैं, कारण, आकार-प्रकार में सुभद्रा का मुखौटा बाकी दोनों से छोटा और विषम होता है। बेचारे चित्रकार के पास सुभद्रा का मुखौटा बाकी रह जाता है।"

"अच्छा ठीक है, पर पीले रंग का तात्पर्य क्या है?"

सुजैन मेरी पुस्तक से उद्धृत करके बोलीं, "भारत के नाट्य शास्त्र के अनुसार पीला रंग अद्‌भुत रस का द्योतक है। आपके पास जो तांत्रिक आया था, उसने भी तो आपको एक हल्दी की पुड़िया दी थी, आपने अभी कहा था। इससे क्या पता चलता है?"

"यह तो बहुत मामूली बात है। हिंदुओं के पूजा-त्योहारों में हल्दी का व्यवहार किया जाता है। इसमें मैं कोई गहरा तत्त्व नहीं देख पा रहा हूँ।"

"मैं अब अपने मूल वक्तव्य पर आती हूँ। आपकी आखिरी में सुभद्रा ने सहायता की थी, उस जापानी महिला के वेश में।"

उसके बाद सुजैन ने अपना गिलास खाली किया, सिगरेट का आखिरी कश लेकर उठ खड़ी हुई और बोलीं, "जापानियों का रंग कैसा होता है?"

तब तक दूसरे अतिथि भी आ चुके थे। पुस्तक विमोचन का काम खत्म हुआ। पर मेरा मन उसमें नहीं था। सभी खाने-पीने में व्यस्त हो गए। मैं सुजैन की कही हुई बात पर गौर कर रहा था। उनकी व्याख्या चामत्कारिक थी जरूर, पर वह समस्या का समाधान कर रही थी या उसे और जटिल किए दे रही थी, यह मैं स्थिर नहीं कर पा रहा था! पार्टी में मेरा और मन नहीं लग रहा था, यद्यपि लग रहा था कि दूसरे सभी पार्टी का खूब उपभोग कर रहे थे। सुजैन अभी एक और लेखक के साथ कुछ गंभीर आलोचना में व्यस्त थी।

पार्टी खत्म होने को आ रही थी। मैं चलने के लिए निकला तो सभी के पास जाकर विदाई लेने लगा। जब सुजैन से हाथ मिलाया तो वे बोलीं, "देखा, कैसे मैंने तुम्हारी सारी समस्याओं का समाधान कर दिया!"

मेरे कैमरे के स्पिरिट फोटोग्राफी के बारे में शेरलॉक होम्स का अगर कोई मतामत है तो उस बारे में तो आपने मुझे नहीं बताया।

कुछ ज्यादा मद्यपान कर चुकी सुजैन सहजता से हँसकर बोलीं, "मैं आपको बताने जा रही थी, पर किसी ने तभी मुझे बुला लिया था। मैं कल आपको टेलीफोन करके बता दूँगी।"

अगले दिन सुजैन की तरफ से फोन नहीं आया तो दो दिन बाद मैंने खुद फोन किया। मेरे कुछ कहने से पहले ही वे बोलीं, "व्यस्तता के चलते मैं आपको फोन नहीं कर पाई। अगर मैं अभी शेरलॉक होम्स की भूमिका में आ जाऊँ तो आपको कोई ऐतराज तो नहीं होगा ?"

"नहीं।" मैंने कहा।

"आप जरूर अपने कैमरे में कभी-कभी माइक्रो लेंस का भी उपयोग करते होंगे!"

"हाँ।" मैंने कहा, "मेरी पुस्तक में कुछ मिनीएचर फोटो का क्लोजअप मैंने लिया है। आप जरूर देखी होंगी।"

"आप दोनों रंगीन और सफेद-काले फोटो के लिए एक ही कैमरे का व्यवहार करते हैं और कई बार कुछ फोटो खींच लेने के बाद कैमरे में दूसरा रोल डालते हैं।"

मैंने फिर हामी भरी। अब मैं समझने लगा कि यह सारी बातें कहकर वे किस उपसंहार की तरफ बढ़ रही हैं। मैं बोला, "हाँ, यह संभव है कि मैंने दो-चार सफेद-काली फोटो उठाने के बाद उस रोल को निकालकर कैमरे में रंगीन रोल डाला हो; फिर बाद में उसी आधे रोल का व्यवहार किया हो पर..."

मुझे आगे कहने न देकर सुजैन बोलीं, "आपका कैमरा कभी-कभी दूसरों के हाथों में भी जाता है।"

मजबूरन मुझे 'हाँ' कहना पड़ा। मैं कितना भी सतर्क रहा होऊँ, पर कई बार दूसरों को मेरे कैमरे के साथ खेलते हुए देखा हूँ। जैसे—माली, बानांबर, धड़िआ रिक्शावाला। वैसे भी कैमरे से फोटो लेने के लिए कभी-कभी कैमरा मैंने खुद उन्हें दिया है। मैं जान गया कि सुजैन क्या कहना चाहती है! वह चार भौतिक फोटो मेरे अनजाने में किसी और ने खींचे हैं और उस रोल ने दूसरे रोल के साथ मिलकर इस तरह की परिस्थिति की सृष्टि की है। मुझे कुछ और सोचने का संयोग न देकर सुजैन बोलीं, "आपके चारों भौतिक प्रिंट अभी मेरे सामने हैं। यह किसी इनसान के एनाटॉमी की फोटो नहीं है। यह किसी माइक्रो लेंस से लिये गए जगन्नाथ की आँखों के चित्र हैं।"

"हाँ, सही बात है।" जो सुजैन की नजरों ने पकड़ लिया, वह बात मुझे पहले ही समझ लेनी चाहिए थी। पर मैं फोटो के रहस्य को लेकर इतना विचलित था कि यह बात मेरे दिमाग में आई ही नहीं। पर सुजैन से बिना हारे में बोला, "पर उस रात शोभायात्रा में बाकी जो फोटो खींचे थे, उनका क्या हुआ ?"

इस बात का सीधे कोई जवाब न देकर सुजैन बोलीं, "कुछ रहस्यों का हल नहीं निकलता; वे सब रहस्य ही रह जाते हैं। आप इसे लेकर कहानी लिख सकते हैं।"

इसे लेकर कहानी लिखना तो दूर की बात थी, सुजैन के इस विश्लेषण के बाद इस विषय पर और सोचने की भी मेरी कोई इच्छा नहीं थी। पर कई सालों बाद यह सारी बातें मुझे याद आईं, तब, जब मैं अमेरिका से आए छात्र माइक के साथ अपनी गवेषणा के बारे में आलोचना कर रहा था। इसी बीच ओडिशा की चित्रकला के बारे में मेरी एकाधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं और देश-विदेश के गवेषक इस विषय में आग्रह प्रकट कर रहे थे। माइक किसी फेलोशिप के लिए चित्रकारों के गाँव के ऊपर 'रघुराजपुर रीविजिटेड' पुस्तक लिखने के लिए आया था।

मैं तब भुवनेश्वर में था और बातचीत के क्रम में माइक को अपनी भौतिक अनुभूति की बात कही थी। उसकी प्रतिक्रिया से मैं सटीक अनुमान नहीं लगा पा रहा था कि इस रहस्य भरी कहानी के बारे में वह क्या सोच रहा है ? पर एक दिन जब हम साथ पुरी जाने के लिए निकले, तब माइक ने उस भुतहा कोठी को देखने का आग्रह प्रकट किया। मेरी भी इच्छा हुई उस मकान को जाकर देखने की, जहाँ मैंने अपने जीवन का कई यादगार दिन बिताए थे।

मैंने रॉबिन को फोन किया तो उसने कहा, "तुमने मुझे ठीक समय पर फोन किया। कुछ दिन बाद बिल्डर उस मकान को ढहाकर वहाँ नया मकान तैयार करने जा रहे हैं।"

रॉबिन के पास से चाबी लेकर माइक और मैं गाड़ी लेकर पुरी गए। पुरी में पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई थी, इसलिए मैंने माइक से कहा कि पहले हम भुतहा कोठी को देख लेते हैं, फिर होटल चलेंगे। हमारी गाड़ी जब उस मकान के सामने जाकर रुकी, मेरे सीने में अचानक भय का एक झोंका समाया। पर आज मैं अकेला नहीं था। माइक और मैं दरवाजा खोलकर अंदर घुसे। बत्ती जलाकर देखा, मकान बिल्कुल वैसे ही था, जैसे मैं छोड़कर गया था कई साल पहले। आज बिजली की बत्ती ठीक जल रही थी और बैठक का कमरा उतना रहस्यमय नहीं लग रहा था, जैसा मैं कल्पना कर रहा था। मुझे लगा कि अगर मैं चाहूँ तो उस सीढ़ी पर चढ़कर,

बिना डरे, उस अँधेरे कमरे के रहस्य का भी परदाफाश कर सकूँगा।

सोने के कमरे में अब सुभद्रा का मुखौटा और वह माला नहीं थी। पर बाकी सारा सामान वैसे ही था, जैसे मैंने वर्षों पहले देखा था। यह सब वैसे ही रहेगा, बिल्डर के आकर मकान को पूरी तरह से तोड़ देने तक। माइक और मैंने बिना कुछ बातचीत किए सारा कमरा घूमकर देखा। मैंने फिर एक बार लौट जाना चाहा, यहाँ बिताए उन रहस्यमय दिनों की तरफ। आँखें बंद करके समुद्र और झाऊ पेड़ों को सुना, पर उसमें उन दिनों का वह भययुक्त सम्मोहन नहीं था।

अब बाहर निकलने से पहले मैंने सारे कमरे की बत्ती बुझाई और आखिर में बैठक की बत्ती बुझाकर बाहरी दरवाजे पर ताला लगाया। अँधेरे मकान को पीछे छोड़कर हम धीमी गति से बगीचे को पारकर सड़क से सटे हुए फाटक तक पहुँचे। उसी समय वह अचरज भरी घटना घटी। बंद खिड़की से कि उस भुतहा कोठी की बैठक के कमरे की ट्यूबलाइट अचानक जल उठी! मैं तो चौंक गया। माइक भी एक पल के लिए स्तब्ध रह गया। फिर एक बार जाकर उस भौतिक बत्ती को बुझाने की मन:स्थिति में मैं नहीं था। माइक कुछ कहने जा रहा था, मैं उसे खींचकर ले जाते हुए बोला, "चलो, चलते हैं।"

माइक तर्कसंगत लड़का था और मैं जानता था, वह क्या कहना चाहता है! इन पुराने मकानों में बिजली के तार का कनेक्शन पुराना होकर कई बार ढीला हो जाता है, या स्विच पुराना होकर ठीक से काम नहीं करता है, या फिर ट्यूबलाइट जलने में समय लेता है, या फिर ऐसे ही कोई व्याख्या, लेकिन इस समय मुझे इस रहस्य के किसी भी स्पष्टीकरण की कोई जरूरत नहीं थी। 'सभी रहस्यों की व्याख्या शायद है,' मैंने मन-ही-मन सोचा, 'पर सुजैन ने ठीक कहा था, कुछ रहस्यों को रह जाने देना चाहिए, वैसा ही रहस्य होकर।'

□

कविता की लंबी जिंदगी

खिड़की से आती रोशनी और आवाजों के साथ देवनाथ ने आँखें खोलीं। आजकल सोने, उठने या दूसरे काम करने का उसका कोई निश्चित समय नहीं है। भूख लगने पर खाना खाता, नींद लगने पर सोता और आँखें खुल जाने पर उठ जाता। कल रात को अच्छी नींद आई थी। आज सुबह अच्छा महसूस कर रहा है वह। हाथ बढ़ाकर नीचे फर्श पर गिरे तकिया को उठाया देवनाथ ने और पास के टेबल से चश्मा लेकर पहन लिया। इस चश्मे से अब साफ दिखाई नहीं पड़ रहा है। चश्मा और अपनी आँखों को ठीक से पोंछकर उसने एक बार फिर अच्छी तरह से चारों तरफ मुआयना किया और यह समझ गया कि इस चश्मा के काँच को बदलना ही होगा। इसी बात से उसे याद आया कि अभी और भी अनेक काम बाकी हैं करने के लिए, पर जानबूझकर उसने सारी बातों को अपने मन से हटा लिया। इस सब का हिसाब रखने से कोई फायदा नहीं है। जिसे कल किया जा सकता है, उसे आज क्यों करें?

हाथ-मुँह धोकर टेबल के पास वह बैठा ही था कि हरि मास्टर के नौकर ने उसके सामने गरम चाय का गिलास लाकर रख दिया। ऐसे एक स्नेही परिवार को पाकर अपनी किस्मत सराही देवनाथ ने। वह कभी भी नींद से जगे, उसके सामने चाय पहुँच जाती; भूख लगते ही सामने खाने की थाली आ जाती।

ताक पर रखे डिब्बे में से एक बिस्कुट निकालकर चाय में डुबोया देवनाथ ने और चाय के कप से उठते हुए हलके धुएँ को कुंडली की तरफ देखते हुए तय किया कि आज खाट के नीचे से ट्रंक निकालकर उसके अंदर से गरम कपड़े बाहर निकालेगा। कुछ दिनों से हलकी ठंड पड़ने लगी हैं, पर इस छोटे से काम को आज-कल, आज-कल करते-करते अब तक टालता आया है वह। कल का अखबार

उठाकर उसी पर नजर डालने लगा वह। देश-विदेश की इतनी सारी खबरों से किसी एक भी खबर ने उसके भीतर किसी तरह की कोई प्रतिक्रिया नहीं जगाई। अनासक्त भावे लिये पृष्ठ पलटते हुए साज-सामान वाले विज्ञापन की इन दो पंक्तियों को फिर से पढ़ने लगा वह, 'बैकुंठ समान है आहा! वह घर', कुछ देर तक उस परिचित पंक्ति को पढ़ते हुए उसके आगे के वाक्य को याद करने की कोशिश की उसने। नहीं, याद नहीं आ रहा है। 'निरंतर' शब्द याद आ रहा था, जिससे छंद तो मिल रहा था, पर उससे पहले और क्या शब्द थे? निरंतर क्या था, वहाँ? सुंदर साज सरंजाम? क्या एक और नई पंक्ति लिखकर वह नया पद जोड़ सकता है? उसके पहले की पंक्ति को सजाकर फिर से वह लिखेगा, अल्प विराम के साथ—'बैकुंठ समान, आहा है वह घर!' आहा के बदले अगर वह हाय लिख दे? या फिर शब्दों को इधर-उधर करके लिखे—'वह घर है आहा बैकुंठ समान?' या फिर 'वह घर है, जो बैकुंठ समान?'

वह दिन भी था, जब उसका सारा समय इसी तरह शब्दों के साथ खेल कौतुक करके बीत जाता था। अविरत शब्दकोश और समांतर कोश की तरह मन काम करता था तब। आनंद मिलता था एक शब्द की जगह दूसरे एक शब्द को मिलाने में; चार और दो अक्षर वाले शब्दों की जगह तीन अक्षर वाले दो शब्दों को जोड़ने में। एक पंक्ति को जोड़कर फिर उसे तोड़ने में। विराम, बंधन और विस्मय वाले निशानों को इधर-उधर करने में। समय कटता था तत्सम शब्द के बदले तद्भव शब्दों को खोजने में; उत्तेजना मिलती थी पुराने शब्दों की नई रूढ़ि प्रयोग करने में, या कि पंक्ति के अंदर अनायास घुस आए अनुप्रास का परित्याग करने में था एक अनुचित संतोष।

और आखिरी में कागज के पृष्ठ पर जो कविता उसके आगे साकार हो उठती थी, क्या यही चाहा था उसने? उसके मन के भीतर क्या ठीक वही रूप था, जिसने अब उसके सामने आकार लिया है? रात के स्वप्न को भला कितना पकड़ पाई है सुबह की स्मृति? पूरी कविता को पढ़ते समय कभी कविता संपूर्ण संपन्न लगती, तो फिर से पढ़ने पर लगता कहीं कुछ अव्यक्त रह गया है, जैसे किसी सुसज्जित मृण्मूर्ति का अपने नेत्रों के बनने के इंतजार सा! किसी एक विशेष भाव का अभाव सा! ऐसे में शुरू हो जाता था, फिर से भावना राज्य की परिक्रमा, शब्द कल्पद्रुम के वरदान की उन्मुख प्रत्याशा! कागज पर चलने लगती थी कलम, अब शब्दों के साथ खेल कौतुक कम नहीं, अब रहता उनके साथ शीतल युद्ध का कलाकौशल।

अखबार में छपे शब्द 'बैकुंठ' से आँखें हटाकर देवनाथ ने अपनी खाट, टेबल, कुरसी की रूक्ष निरंतरता की तरफ देखा। उसकी तरह ही यह सारे टूटे-फूटे

जर्जर से हैं। अचानक उसे याद आई रवींद्रनाथ की प्रसिद्ध 'आराम केदाराटी' की बात। यद्यपि सात समंदर पार कर शांतिनिकेतन पहुँची विदेशिनी के प्रीति उपहार सुखासन का, उसकी बैठी हुई कुरसी के साथ कोई सामंजस्य नहीं था। फिर भी, इस तरह के किसी संदर्भ के बिना देवनाथ को लगा, जैसे उसकी टूटी हुई कुरसी का आवेदन वैसा ही था, जैसे गुरुदेव की कुरसी की करुण कातर भाषा, प्रियहीन घर को आच्छन्न करती उसकी शून्यता की मूक व्यथा!

कविता की ऐसी असंलग्न ढेर सारी पंक्तियाँ इसी तरह कभी-कभी उसके मन में घुसकर उसे तितर-बितर कर देतीं। खो गए प्रेम की पीड़ा की तरह मन की गहराई में पल भर के लिए छू जाते शब्दों के कुछ ललित अक्षर। देवनाथ फिर से सहेज लेता अपने को, सजग हो जाता। वह क्यों अपने सहज संसार को छोड़कर किसी क्षणिक परावास्तव की दुनिया में ढूँढ़ेगा आश्रय? आज उसकी तबीयत ठीक है। खिड़की से बाहर धूप नजर आ रही थी। वह चौक तक आराम से पैदल जा सकता है। नहीं, उसे कोई शिकायत नहीं है, जिंदगी के प्रति। वरन् भाग्य उसके प्रति एक तरह से प्रसन्न है, ऐसा कहा जा सकता है। नहीं तो उसे कहाँ मिल पाता ऐसी सुविधा भरी जगह में पैतृक मकान, हरि मास्टर की तरह किराएदार, पैदल दूरी पर स्थित बाजार? और भी किस्मतवाली बात यह थी कि उसके गाँव और इस्पात कारखाने के बीच की दूरी को जोड़ती सड़क पर लौह पत्थर ले जाते ट्रकों के ड्राइवरों के लिए वही चौक पर बना था एक ढाबा और शराब की दुकान।

कपड़ा बदलकर वह बाहर जाने के लिए तैयार हुआ ही था कि ठीक उसी समय लड़के ने उसके सामने लाकर नाश्ता रख दिया। चौक की दुकान से खाने की चीजें मिल जाती हैं, पर मास्टर के घर से ठीक समय पर खाना पहुँचने में कभी भी देरी नहीं होती। अच्छा है, बाजार की चीज क्यों खाते भला? नाश्ता करके मुँह-हाथ धोकर थाली ले जाकर दालान में रख दिया और खिड़की-दरवाजा बंद करके ताला लगाकर वह बाहर आ गया। एक फर्लांग की दूरी तय करते ही गाँव का रास्ता खत्म। वहीं से शुरू हो जाता है हाइवे; दूसरी एक दुनिया।

सड़क पर आवाजाही शुरू हो चुकी है। एक के बाद एक लोहे के पत्थर लादे ट्रक गुजर रहे थे। न चाहते हुए भी कविता की एक पंक्ति फिर ढीठता के साथ उसके मन के अंदर घुस आई—'प्रागैतिहासिक लौह प्रस्तर का आखिरी परित्राण' उसके बाद की पंक्ति ठीक से याद नहीं। 'आदिम समय', 'शापग्रस्त' आदि शब्दों के बाद आखिर में है 'घात-प्रतिघात', 'इस्पात-इस्पात', जाने किस युग की बात है यह! उस समय ओडिशा की चिंता-चेतना का केंद्रबिंदु इस्पात हो गया था; इस्पात

कारखाने की माँग को लेकर सामाजिक, राजनीतिक वातावरण गरमा रहा था। 'बंदे उत्कल जननी' के नारे के साथ मिल रंग ला रही थी इस्पात की माँग। समयानुसार वह स्वप्न भी एक दिन साकार हो गया। कारखाना बना। पेड़-पौधे से घिरे नदी के किनारे और घने जंगल ने नया रूप ले लिया। सड़क के दोनों हरे किनारों के ऊपर अब लौह पत्थर की लाल धूल की परत बिछी हुई है।

शराब की दुकान के खुलने का यह समय नहीं था, फिर भी सुबह-सुबह ग्राहक पहुँच चुके हैं। शायद यहाँ शराब की दुकान का होना गैर-कानूनी है। शायद चौक में स्थित यह भीड़ भरा बाजार ही पूरी तरह गैर-कानूनी है। देवनाथ को लगता कि यह जगह मानो यायावरों के कुछ पल की छावनी भर है, जो अचानक आज सुबह ही बनकर खड़ी हो गई है और जब वह कल सुबह आएगा तो यहाँ कुछ भी नहीं होगा—साँय-साँय कर रहा होगा लाल मिट्टी का यह खुला मैदान।

हर दिन सुबह वह आकर जिस बेंच पर बैठता था, वह खाली था। चद्दर के कोने से उसे पोंछकर वह बैठा और अचानक हवा के ठंडे झोंके के लगने से उसने अच्छी तरह से अपने को चद्दर से लपेट लिया। खुली, पर अभी हलकी धूप बिखरी है; बाद में धूप तेज हो जाएगी, तब तक दो गिलास पेट में पड़ चुका होगा तो कुछ पता नहीं चलेगा। चटाई से दुकान के चारों तरफ बाड़ा लगाया गया है, ताकि बाहर से अंदर क्या हो रहा है, न दिखे। चाल के अंदर बोतल, गिलास और काँच के डिब्बों की कतारों के बीच बैठे दुकानदार को देवनाथ ने इशारा किया और तुरंत उसके पास एक भरी हुई बोतल और खाली गिलास पहुँच गया। दूसरी बोतल के साथ भुना हुआ चना आया। वह रोज का पुराना ग्राहक था; और उसे कब क्या चाहिए, यह दुकानदार को पता था। गिलास शायद अच्छी तरह से धुला हुआ नहीं था। उसके चारों तरफ कुछ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। उनके गुंजरण के साथ ताल मिला रहे थे गिलास, बोतलों के काँच की रुन-झुन की झनकार। यह सारी ध्वनियाँ मानो प्रतिध्वनित कर रही थीं बचपन में हुए वर्णबोध की पुस्तक में शब्द और ध्वनि के साथ का वह पहला परिचय—'घंटी बजे ठन-ठन; घंटा बजे ढंढं।'

अब कविता नहीं है; सिर्फ शब्द हैं। बचपन में वर्णबोध में शब्द ही कविता थे—'कटक नगर धवल टगर' (टगर—एक फूल)। किसी का किसी के साथ कोई मेल नहीं। 'चका चका भऊंरी मामं घर चऊंरी' (ओड़िया कविता), या फिर संपूर्ण अर्थरहित शब्दों का समूह जैसे 'पंजाए खंज बसी-बसी, कथा कहंति हसि-हसि' यानी कुछ लँगड़े व्यक्ति इकट्ठा कहीं बैठकर हँसी-खुशी बातचीत कर रहे हैं और उसकी कल्पना करके मन के अंदर सृष्टि होती है एक काव्यिक परिवेश की। ठीक

उसी समय उसके सिर के ऊपर से कौवों का एक झुंड चला गया। अनायास ही उसने हाथ बढ़ाकर अपने गिलास को ढक लिया। कौवा कर्कश और कुरूप है, पर वे शुभ समाचार लेकर आते हैं। हंस को मेघ की तरह दूत बनाकर समाचार भेजा जा सकता है। पर काक दूत? वाय दूत? कौवा को लेकर क्या कविता लिखी जा सकती है? 'डामारा काउ उच्च परबते बोबाऊ थाउ' (उँचे परबत पर बोल रहा जंगली कौवा…)

नहीं और नहीं, नेवर मोर! नेवर मोर!

और दो-चार लोग आकर आसपास की कुरसी पर बैठे चुके हैं। वे आपस में ही बतियाते रहते, उससे कभी कुछ नहीं कहते। उसके बारे में जाने क्या सोचते? बस एक बार एक व्यक्ति ने उसके पास आकर उससे पूछा था, "बाबू, तुम गीत लिखते हो न?" पहली बार ठीक से सुन नहीं पाया देवनाथ। उसकी तरफ प्रश्न भरी आँखों से देखा। अबकी बार वह व्यक्ति उसके कुछ और करीब आकर बोला, "गीत। तुम गीत लिखते हो न?"

थोड़ा सा आश्चर्यचकित और खुश होते हुए देवनाथ ने सिर हिलाकर हामी भरी। एक बार कविता लिख लिया तो फिर कवि की मोहर लग ही जाती है, फिर चाहे नौ सालों तक कविता की एक पंक्ति भी न लिखी हो! उसे खुद को भी याद नहीं कि उसने कब अपनी आखिरी कविता लिखी थी? "मुझे दो पंक्तियों का गीति काव्य चाहिए, ट्रक के पीछे लिखने के लिए।" बहुत ही सहजता के साथ उसने कहा। उसे याद आया कि जब वह कॉलेज में पढ़ता था तो ऐसे ही शादी-ब्याह वाले गीत लिखने की व्यक्तिगत फरमाइश लेकर लोग उसके पास आते थे। शादी के समय वर-वधू के लिए मंगलकामना से भरे गीत लाल-नीले कागजों पर छपवाकर अतिथियों को बाँटने का चलन था उस समय। वह कभी-कभी खिन्न मन से दो-चार पंक्ति लिख देता था, बिना किसी मेहनत के; पर वे सारे गीत लोगों में पसंद किए जाते थे, ऐसा उसके दोस्त बताते थे। ट्रकवाला बोला, "पर गीत बहुत बढ़िया होना चाहिए, हिंदी गीत को टक्कर देता हुआ।"

जाने कितने सालों के बाद किसी ने उससे कुछ लिखने के लिए कहा। कभी ऐसा भी दिन था, जब पत्रिका के संपादकों की तरफ से बार-बार तगादा आता था। गायक-कलाकार गीत की फरमाइश करके उसे चैन से बैठने नहीं देते थे। ये सारी बातें मानो उसके पूर्व जन्म की थीं! वह ट्रकवाला दुकान के अंदर गया और एक बोतल शराब लाकर उसके सामने रख दी। फरमाइशी कविता के लिए पेशगी दक्षिणा। उसके द्वारा लाई बोतल में से अपने गिलास में शराब डालकर एक घूँट

पीने के बाद देवनाथ को लगा कि उसने एक बड़ी भारी जिम्मेदारी का काम उठा लिया है। दो पंक्तियों का सस्ता मित्राक्षर पद्य लिखना उसे भारी लगने लगा। अपने को तुरंत ऋणमुक्त करने के लिए मन-ही-मन आनन-फानन में उसने दो पंक्ति सोच लीं। पर उस पंक्ति की न तो भाषा, न छंद, न भाव ही उसे अच्छा लगा··· और फिर हर ट्रक के पीछे कुछ ऐसी ही बात तो लिखी होती है!

उसके बाद कुछ दिनों तक वह इसी दो पंक्ति को सजाने में या फिर और दो नई पंक्ति लिखने में लगा रहा। टेबल पर कागज-कलम रखकर लिखना चाहा तो इधर-उधर कुछ शब्द तो लिख गए, पर मेल खाते शब्द समूह साधे नहीं जा सके। वह मन-ही-मन चाहने लगा कि अब उस ट्रकवाले से उसकी कभी मुलाकात न हो! वह ट्रकवाला कभी--कभार देवनाथ के रहते, उस दुकान में पहुँच जाता। यद्यपि फिर कभी उसने उससे गीत के बारे में कोई सवाल नहीं किया, फिर भी उसकी दी गई भेंट को देवनाथ कभी भूल नहीं पाता था। एक बार इसी तरह उससे आमना-सामना हो जाने पर देवनाथ ने अपने पॉकेट से एक छोटा नोटबुक और कलम निकालकर उसके टेबल पर रख दिया, इस बात का प्रमाण देने के लिए कि वह अभी भी उसकी फरमाइश भूला नहीं है। वह व्यक्ति देवनाथ की तरफ देखकर मुसकराया, पर उसके साथ बातचीत करने की कोई पहल नहीं की।

देवनाथ को डर लगा रहता कि कभी अचानक वह ट्रकवाला उसके पास आकर उससे शराब बोतल की अग्रिम भेंट के बदले दो पंक्तियों की कविता माँगने लगेगा! 'एक पूरी कविता के बदले में शराब की कितनी बोतल मिल सकती हैं?' मन-ही-मन हिसाब लगाने की कोशिश की उसने। पर दिन बीतने के साथ वह व्यक्ति फिर नजर नहीं आया। जबकि कविता वह लिख नहीं पाया, फिर भी उस व्यक्ति को मन-ही-मन ढूँढ़ता, जो कभी उसके कवि होने का जीवंत स्मारक था। पर वह व्यक्ति फिर कभी नहीं आया। कितना कुछ बदलता जा रहा है इन दिनों! झोंपड़ीनुमा शराब की दुकान को तोड़कर अब पत्थर का बनाया जा रहा है। कुरसी-टेबल अब और थोड़े साफ-सुथरे और ऊँचे दाम के हैं। वह व्यक्ति शायद देश छोड़ कहीं विदेश चला गया है, दूसरे किसी आरंभ के लिए। यह भी हो सकता है कि इस बीच कहीं किसी दुर्घटना में उसकी मौत हो गई हो!

देवनाथ की सहज जीवन-यात्रा का यह छोटा सा व्यतिक्रम भी अब काफी पहले की बात हो चुकी है, उसके बचपन की तरह। गाँव के सुस्त शैशव, किशोरावस्था के दिन की जो बात उसे अभी याद आती है, उसमें घर के सुख-दु:ख, आसपास के मेला, महोत्सव की बात जितनी याद नहीं आती, उससे ज्यादा याद आता है,

गाँव के रास्ते में पंक्ति बनाकर हाथों में तिरंगा लेकर गुजरते स्वाधीनता संग्रामियों का वह दृश्य—

"गांधी के नाम में,
जब हो विश्वास,
झंडे के नीचे आओ रे,
मुक्ति गंगा की लहर बह रही है,
आ-आ आके गोता लगाओ रे!"

इसमें काव्यिकता चाहे न हो, पर उत्तेजना थी। संगीतात्मकता न हो चाहे, पर सम्मिलित था कंठ स्वरों के गाने का एक अद्भुत उन्माद। कविता क्या थी, एक झंडे की पद टीका। फिर आया दो पैसों में मिलनेवाला कागज का एक पृष्ठ, जिस पर लिखा हुआ था इनकलाब जिंदाबाद का गीत—'बारह बरस का बालक, गोली के सामने रखी अपनी गरदन हो।' कविता या गीत, पढ़ना यानी सुर लगाकर गाना, अर्थ के पास पहुँचना, मनन करते हुए, अकेले नहीं, वरन् जुलूस के साथ। उसके बाद आया एक और नारा—ज्वलंत स्वाक्षर लेकर, नहीं बंधु नहीं, यह है चिता। बाद के दिनों में जैसे डेफोडिल के सुनहरे सम्मोहन से उसे खींचकर बाहर निकाल लाया था अल्फ्रेड प्रुफ्रोक।

कॉलेज में पहली बार इलियट को पढ़ते समय सीने के अंदर जो हलचल मच जाती थी, उसके बारे में सोचकर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पागलों की तरह वह ढूँढ़-ढूँढ़कर विदेशी कविता पढ़ता था। प्रुफ्रोक की कविता के शीर्षक के नीचे तिरछे में लिखे हुए दाँते की छह पंक्ति का अर्थ भी उसने ढूँढ़ निकाला था उस समय। क्लास खत्म होने के बाद अपने अध्यापक के पास जाकर वह कविता के बारे में आलोचना करता। यह जानने की कोशिश करता था कि कविता में जितने सांकेतिक आभास हैं, उनका अर्थ क्या है, संगति क्या है? कविता की हर पंक्ति, हर शब्द को समझना जैसे उसके लिए जरूरी थी। अध्यापक उसे समझाते, किसी रचना को पढ़ते समय जो भी विदेशी संदर्भ आते हैं, कठिन शब्द या अभिव्यक्ति को पढ़ते समय कहीं अटक जाते हो तो उस सबको दरकिनार करके रचना को बस पढ़ते जाओ और ऐसा करने पर ही कविता का आनंद तुम्हें मिल पाएगा। पर देवनाथ का मन नहीं मानता। कैसे अलग कर दे वह सारे अंश कविता में से? यही रुकावट पैदा करनेवाले शब्द ही तो कविता हैं। वही उस अर्थहीनता में ही तो अर्थपूर्ण हो गई है कविता।

स्कूल की पढ़ाई खत्म करने के बाद गाँव से वह शहर में मामा के यहाँ रहकर कॉलेज की पढ़ाई कर रहा था। मकान का एक छोटा सा हिस्सा, जो उसके रहने के

लिए दिया गया था, वहीं अपनी पुस्तक-कागजात रखकर उसने अपनी एक निजस्व पृथ्वी को गढ़ लिया था। दूसरे बच्चों की तरह उसका खेल-कूद, पिक्चर में मन नहीं लगता था। नई पुस्तक पाते ही उसे लेकर घंटों पढ़ता रहता था। शहर की सारी लाइब्रेरी उसकी जानी-पहचानी थीं और उसके सारे मित्र साहित्य में रुचि रखते थे। शांत, विनयी और सभ्य स्वभाव का होने के कारण यद्यपि वह किसी से ज्यादा संबंध नहीं रखता था, फिर भी घर के सारे सदस्य उसका आदर करते थे और पुस्तकों के साथ सारा समय बिताने को लेकर कोई उससे कुछ कहता नहीं था।

स्कूल में पढ़ते समय वह जो कविताएँ लिखा करता था, उसे एक सजिल्द कॉपी में इकट्ठा लिखकर रखता था। शहर में आने के बाद नए-नए कवि, खासकर अंग्रेजी कवियों को पढ़ने के बाद वह कविता को एक अलग नजरिए से देखने लगा। पुरानी कॉपी से अपनी लिखी कविता को पढ़ने पर उसे वे सब बहुत ही नीरस, साधारण, घिसे-पिटे सी लगीं। खिन्न होकर उसने उस कॉपी को फाड़कर फेंक दिया और एक नई कॉपी खरीदकर उसमें नए सिरे से कविता लिखना शुरू किया। दो पंक्ति लिखता, फिर उसे काट देता। फिर कुछ लिखता। कभी तो एक साथ पंक्ति लिख लेता तो कभी एक भी वाक्य उससे लिखा नहीं जाता। पर वह हार नहीं मानता था, कविता पूरी होने तक वह डटा रहता था। अब उसने पत्र-पत्रिकाओं में कविता भेजना शुरू किया। और एक दिन उसकी कविता एक जानी-मानी पत्रिका में प्रकाशित हुई।

कविता से इतर उसका व्यक्तित्व, जीवन बहुत सीमित था। वह जानता था कि कॉलेज की पढ़ाई खत्म होने के बाद उसे कहीं नौकरी करके घर-परिवार चलाना होगा और वैसा हुआ भी। छोटे सरकारी दफ्तर में उसे एक छोटी सी नौकरी मिल गई। छोटी सी एक गली में छोटा सा एक मकान लेकर उसने अपनी छोटी सी जिंदगी शुरू की। उसकी पत्नी शांत स्वभाव की थी और उसकी कोई उच्चाभिलाषा नहीं थी। उसके कम वेतन में उनके तीन जनों का, हाँ, ठीक समय पर उसे एक पुत्र संतान भी हुआ, परिवार ठीक से चल जाता था। अपनी इस सामाजिक आजीविका और जीवनयापन की सांसारिकता के बाहर उसका एक वृहत्तर विश्वभुवन था—कविता का। या फिर सटीक कहा जाए तो पृथ्वी के बाहर वह था एक अनंत अखिल ब्रह्मांड में, क्योंकि उस समय वह रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता का भक्त हो गया था।

चाहे जो भी हो जाए, उस असीम दूसरी दुनिया से उसे हर दिन अपने इस दो कमरों की दुनिया में लौटना पड़ता था। बाजार से रसद लाना, बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी पढ़ाई पर ध्यान देना, यार-दोस्त, आस-पड़ोस के सामाजिक दायित्व को

उसे निभाना होता था। वे सारी बातें, जो बिल्कुल भी उसके अनुकूल नहीं थीं, उसे करना होता था। रवींद्रनाथ ठाकुर ने कभी मोहल्ले की शराब की दुकान, पति-पत्नी के सुबह-शाम के झगड़े, बिना ढक्कन वाले तेल की शीशी, टूटे दाँतों वाली कंघी, साबुन की घिसी टिकिया जैसे शब्दों को आधुनिक कवियों के लेखन का आधार कहकर व्यंग्य किया था। देवनाथ भी जानता था कि यह सब कविता के लिए गैर-जरूरी है। इसलिए वह हरसंभव अपने को घर-गृहस्थी से अलग-थलग रखने लगा। किस्मत से उसकी पत्नी ने सबकुछ सँभाल लिया। अपने ही घर में देवनाथ मोल चुकाकर रहनेवाला अतिथि बन गया। पहली तारीख को अपनी पत्नी के हाथों तनख्वाह देकर वह महीने भर के लिए निश्चिंत हो जाता।

उसके बाद सब दिन के लिए वह उसी तरह पेइंग गेस्ट बनकर रह गया। गाँव में जाकर रहने के बाद पहले-पहल उसने खाना बनाने के लिए आदमी रखा। पर जब से हरि मास्टर उसके किराएदार बनकर आए, देवनाथ ने अपनी सारी जिम्मेदारी को उन पर लाद दिया। उसने खाना बनवाना भी बंद कर दिया। किराए का पैसा उसने नहीं लिया। अपनी ओर से कुछ और पैसा देना चाहा, पर उन्होंने साफ इनकार कर दिया।

अभी शराब की दुकान के सामने स्थित खुली जगह में हलकी धूप में बैठकर शराब का घूँट भरते हुए वह उस समय के अपने घर-संसार के बारे में नहीं सोच रहा था...उसे अपने व्यक्तिगत जीवन की स्मृति उतनी याद नहीं आ रही थी, जितना उसको याद आ रही थीं कविताओं की पंक्ति। अभी इस पल उसे आच्छन्न कर रखे थे रवि।



इच्छा-पत्र

कई बार पढ़ चुके पन्नों को पलटते हुए मनोरमा ने एक बार फिर उस पर सरसरी नजर डाली। दलील के हर शब्द से वह परिचित हो चुकी थी—आज अपनी पंचभूत आत्मा की सर्वसकुशलता के साथ अपनी इच्छा से, बिना किसी के अनुरोध, विशेष आग्रह, उपदेश, प्रेरणा या परामर्श के, सहजता के साथ स्वस्थ तन और शांत मन से सर्वसाधारण की जानकारी के लिए मैं श्रीमती मनोरमा यह घोषणा करती हूँ कि यह मेरा आखिरी इच्छा-पत्र है, जो मेरी मृत्यु के बाद कार्यकारी होगा। चूँकि मेरी निम्नलिखित तफसलीमुक्त संपत्ति है, मेरी इच्छा है कि मेरी मृत्यु के बाद श्रीमती···मेरी उस सारी चल-अचल संपत्ति के निम्नलिखित नियमानुसार अधिकारी होंगे और चिरकाल तक उसका भोग करेंगे। इसलिए मैं श्री-श्रीमती को मेरे मासिक भत्ते और चल-अचल संपत्ति का हिस्सेदार घोषित करती हूँ···।

कई साल पहले वकील बुलाकर अपनी इस वसीयत को तैयार करवाते समय मनोरमा ने सोचा था कि इस दुनिया में जिंदा रहने तक यह उनके लिए प्रतिरक्षा कवच साबित होगा। पर अब इतने सालों बाद इस दुनिया को कुछ और जानने-समझने के बाद उनको विश्वास हो गया था कि इसका आक्रमण अस्त्र के रूप में भी व्यवहार किया जा सकता है। अभी हाथ में उस कागज को लेकर उलटते-पुलटते मनोरमा जैसे असीम साहस और शक्ति पा रही थी।

पहले अपने पति शिवनाथ की याद आते ही उनके मन में बहुत गुस्सा उभरता था। उन्हें कोई भी सांसारिक सुख देने से पहले ही शिवनाथ उन्हें दो छोटे-छोटे बच्चों की जिम्मेदारी देकर इस दुनिया को छोड़कर चले गए थे। उस समय मनोरमा को लगता, मानो शिवनाथ ने जैसे उनसे बदला लेने के लिए ही स्वेच्छा से मरने के लिए

वही समय निश्चित किया था। विवाह के समय जो भी आशा, आकांक्षा थीं मनोरमा की, उनमें से कुछ भी पूरी नहीं हो पाई थीं उनके जीवन में। उन्हें अपने माता-पिता के पास गाँव में छोड़कर शिवनाथ नौकरी करने शहर चले गए थे। दोनों की मुलाकात सिर्फ छुट्टियों में जब शिवनाथ गाँव आते थे, तभी हो पाती थी। बचपन से शहर में पली-बढ़ी मनोरमा के लिए गाँव का जीवन सजा की तरह था। और फिर हर समय सास-ससुर का अनुशासन, उनके अत्याचारों के बीच कम उम्र में दो-दो बच्चों को पैदा कर उनकी जिम्मेदारी, जंजाल सँभालना बिल्कुल भी सुखदायक नहीं था। इसी तरह से कम उम्र में ही उनके जीवन में दु:ख ने अपना अधिकार जमा लिया था।

पहले-पहल मनोरमा शिवनाथ के पास जिद किया करती थीं कि उन्हें भी वे अपने साथ शहर ले जाएँ! तब शिवनाथ का तर्क होता था कि उनकी जो आमदनी है और अपने माता-पिता, छोटे भाई की जो जिम्मेदारी उनके ऊपर है, उस सबके चलते मनोरमा का गाँव में रहना जरूरी है। शिवनाथ शहर में किराए पर एक मकान लेकर मुश्किल से अपना गुजारा कर रहे थे और वेतन का ज्यादातर हिस्सा गाँव पिता के पास भेज देते थे। उनके पिता हिसाबी थे और उस पैसों से कुछ जमा करके शिवनाथ के नाम से गाँव में कुछ जमीन खरीद लेते थे। शिवनाथ हमेशा मनोरमा से अपने बच्चों के भविष्य की बात करते थे, पर उन बातों से मनोरमा कभी आश्वस्त नहीं होती थीं। क्या लाभ था ऐसे एक सुखी, समृद्ध भविष्य का सपना देखकर, अगर खुद का वर्तमान इस तरह से संपूर्ण रूप से खत्म हो जाएगा दु:ख, अभाव और दुर्भिक्ष की तकलीफ में?

अपने लड़के-लड़की को लेकर मनोरमा के मन में एक विशेष मनोव्यथा थी। शिवनाथ के माता-पिता ने दोनों बच्चों को पूरी तरह अपना लिया था, मानो मनोरमा कोई बाहरी व्यक्ति हो! वह अपने बच्चों को डाँटती-फटकारती तो सास-ससुर उलटा उसे ही डाँट देते थे। दादा-दादी की शह पाकर बच्चे भी जिद्दी और अनुशासनहीन हो गए थे। मनोरमा के नियंत्रण से मुक्ति पाने दोनों बच्चे दादा-दादी की तरफदारी का फायदा उठाते हुए अपनी माँ की बात नहीं मानते थे और बात-बात पर उसकी उपेक्षा करते थे। इसी तरह से मनोरमा अपनी ससुराल में एक अनचाहे अतिथि की तरह जी रही थी।

जिस दिन शिवनाथ की बीमारी की खबर गाँव पहुँची, उस दिन सुबह अपनी सास के साथ मनोरमा का झगड़ा हुआ था। इसलिए वह तुरंत अपने बच्चों को लेकर किसी से कुछ कहे-सुने बिना शहर पहुँच गई। वहाँ पहुँचकर खबर यह मिली कि शिवनाथ को अस्पताल ले जाया गया है। दोनों बच्चों को अपने भाई के घर छोड़कर

मनोरमा वहाँ जो अस्पताल गई, तो घर लौटी शिवनाथ की मौत हो जाने के बाद ही।

शिवनाथ के आखिरी समय में उनके माता-पिता, भाई गाँव से अस्पताल पहुँच चुके थे। वे सभी शिवनाथ, जिस किराए के मकान में रहते थे, वहीं रहने लगे और वहीं से बारी-बारी अस्पताल आना-जाना करते रहे। शिवनाथ की देखभाल के साथ ही उन्हें देखने आनेवाले अतिथियों की सेवा-टहल की जिम्मेदारी भी मनोरमा पर पड़ गई। वैसे मनोरमा एक तरह से इस बात पर खुश थी कि शहर के इस छोटे से मकान की वह कर्ता-धर्ता थी और यहाँ सास-ससुर की कुछ चलती नहीं थी। अपना घर कहने के क्या मायने होते हैं, इस बात का मनोरमा को पहली बार अहसास हुआ और इसको लेकर वह सचेतन हो गई। फिर तो आगे के दिनों में सास-ससुर ने इस घर को अपना बनाने की भी कोशिश की, पर मनोरमा ने उन्हें एक अतिथि से ज्यादा अधिकार नहीं दिया।

रोना-धोना, क्रिया-कर्म जब सब खत्म हो गया और गाँव लौटने की बारी आई, तो मनोरमा ने साफ कह दिया कि वह गाँव वापस नहीं जाएगी। सास-ससुर ने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, उनकी परवरिश की दुहाई दी, पर मनोरमा ने यही जवाब दिया कि यहीं शहर में रहकर बच्चों की वह देखभाल करेगी। दादाजी के बहकावे में आकर जब बच्चे गाँव जाने की जिद करने लगे और मनोरमा को इस बात से यह डर सताने लगा कि कहीं सास-ससुर बच्चों को जबरदस्ती अपने साथ गाँव न ले जाएँ, इसलिए बच्चों को वह अपने भाई के घर छोड़ आई। समझाने-बुझाने पर भी जब मनोरमा नहीं मानी तो सास-ससुर ने उसे डाँट-फटकार भी लगाई। लेकिन मनोरमा गाँव जाने के लिए राजी नहीं हुई। मजबूरीवश, सास-ससुर गाँव लौटे, पर जाते-जाते धमकी दे गए कि मनोरमा चाहे घर न लौटे, पर वे अपने पोते-पोतियों को जैसे भी हो, ले जाएँगे।

सास-ससुर के चले जाने के बाद मनोरमा ने अपने घर-परिवार की तरफ अपना ध्यान लगाया। इससे पहले कभी वह अकेली नहीं रही थी और न ही अकेले घर चलाने की आदत थी उसे। बच्चों को स्कूल में नाम लिखाने में उसे दिक्कत आई। पर भाई के पास होने के चलते उसे काफी सुविधा भी हुई। उसने भाई को अपने गाँव भेजा बच्चों का सर्टिफिकेट और उनका बाकी सामान लाने के लिए। सास-ससुर ने मनोरमा के गहने देने से इनकार कर दिया, पर भाई बाकी सामान ले आया और बच्चों का नाम स्कूल में लिखा दिया गया। जिस दिन बच्चे पहली बार स्कूल गए, उस दिन मनोरमा ने हलका महसूस किया। इतने दिन बाद उसे शिवनाथ की याद आई और बच्चों की जिम्मेदारी उसे बोझ सी लगने लगी। बच्चे गाँव की

बात याद करते और दु:खी रहते। पर मनोरमा का खयाल था कि बच्चों को धीरे-धीरे शहर की जिंदगी की आदत पड़ जाएगी। मनोरमा अपने बच्चों को पूरी तरह से अपनाकर जितनी खुश थी, उससे कहीं ज्यादा सास-ससुर से अपने बच्चों को छुड़ाकर ले आने के चलते उनके मन को पहुँची ठेस और इस तरह से उसने उन्हें जो सजा दी थी, उसकी खुशी थी।

शहर में आने के बाद के कुछ दिन मनोरमा के लिए बहुत तकलीफ भरे थे, पर बाद में उसे इसकी आदत सी पड़ गई। शिवनाथ की कमी भी अब नहीं खलती। देखा जाए तो शिवनाथ उसके बहुत करीब कभी नहीं थे, क्योंकि पति-पत्नी दोनों ने बहुत कम समय एक साथ बिताया था। बच्चे भी शिवनाथ से बहुत जुड़े हुए नहीं थे, इसलिए उनकी मौत से वे ज्यादा विचलित नहीं हुए। पर पहले-पहल वे गाँव और दादा-दादी को याद करते थे। नए स्कूल के एकदम अपरिचित परिवेश के कारण छटपटाते रहते थे। कुछ दिन बाद उनके नए मित्र बन गए और शहर का जीवन उन्हें भाने लगा। चार-छह महीने के भीतर ही बच्चों की तरह मनोरमा को भी लगने लगा, जैसे गाँव का जीवन, सास-ससुर सबकुछ एक दु:खी तन और वक्त की तरह था और अब मानो उसने जैसे अपने जीवन की गति को फिर से वापस पा लिया है।

कभी-कभी मनोरमा को यह भी लगता था कि गाँव छोड़कर शहर आकर अचानक वह बहुत सारे बंधनों से मुक्त हो गई। शिवनाथ मानो मरकर उसे नया जन्म दे गए और वह जैसा जीवन जीना चाहती थी, उसे मिल गया। इस तरह के विचार जब भी उसके मन में आते थे, वह अपने को धिक्कारने लगती थी, पर जो हलकापन उसके भीतर अपने आप आकर उसे आश्वस्त कर जाता था, उसके लिए वह क्या करती भला? अपने मन को नियंत्रण में रखने की कोशिश तो करती थी, पर स्वतंत्र रहने में जो आनंद है, उसका तो कोई विकल्प नहीं है। उसे अब सास-ससुर का अत्याचार सहना नहीं पड़ रहा था।

शहर में बच्चों के साथ जीवन जीने के लिए पैसों की जरूरत थी, जो उसे शिवनाथ की पेंशन में रूप में मिल रहे थे। इसके अलावा, शिवनाथ ने अपने कम वेतन के बावजूद एक बड़ी रकम की इंश्योरेंस पॉलिसी की थी। जब उस रकम को पाने के लिए इंश्योरेंस कंपनी के साथ लिखा-पढ़ी का काम होने लगा, तब शिवनाथ के पिता ने वहाँ पहुँचकर तर्क दिया कि शिवनाथ ने यह पॉलिसी अपने भाइयों के लिए करवाई थी, पर मनोरमा ने उनकी बात को अनसुना कर दिया। पर जब सास-ससुर इस बात को लेकर कहा-सुनी पर उतर आए, तो मनोरमा ने अपने दोनों भाइयों को बुला लिया, जिन्होंने शिवनाथ के पिता को समझा दिया

कि कानूनन रकम तो मनोरमा को ही मिलेगी। अगर शिवनाथ ने कोई वसीयत की होगी तो उस पर बाद में विचार किया जाएगा। इसके बाद ससुर अपनी रणनीति को बदलकर नरमाई से पोते-पोतियों को अपनी तरफ करने की कोशिश करने लगे और अपनी इच्छा जाहिर करते हुए बोले कि वे कुछ दिन के लिए बच्चों को गाँव घुमाने अपने साथ ले जाएँगे।

शिवनाथ की मौत के बाद ससुर ने कई बार आकर बच्चों को अपने साथ ले जाने की बात कही थी, पर मनोरमा स्कूल या फिर दूसरा कोई बहाना बनाकर उन्हें टाल देती थी। ससुर जब तक वहाँ रहते, वे बच्चों को अपनी तरफ करने की कोशिश करते। बच्चे दादा के पास ज्यादा समय बिताते थे तो मनोरमा उन पर गुस्सा करती। बच्चे माँ और दादाजी के बीच की इस खींचातानी को समझते थे और दादाजी के रहने तक इसे एक मजेदार खेल समझते थे और दादा के रहने तक माँ का साथ छोड़कर दादाजी के हो जाते और मनोरमा को उलटा जवाब देते। मनोरमा इस तरह के हालात का एक समाधान ढूँढ़ना चाहती थी, पर ऐसा करना उसके लिए संभव नहीं हो पा रहा था।

इस बार जब ससुर ने बच्चों को अपने साथ गाँव ले जाने की बात कही तो मनोरमा जान गई कि यह उनकी एक नई चालबाजी है। इसलिए एक दिन स्कूल की छुट्टी हो जाने के बाद बच्चों को फिर से ले जाकर अपने भाई के घर छोड़ आई। ससुर ने जब बच्चों के बारे में पूछा तो उनके मुँह पर जवाब देते हुए बोली, "बच्चों पर आपका बुरा प्रभाव पड़ेगा, इसलिए उन्हें उनके मामा के घर छोड़ आई हूँ।"

बहू का उत्तर सुनकर ससुर उग्र रूप धारण करते हुए बोले, "मैं जा रहा हूँ, पर मेरे पोते-पोती को तुम कैसे अपने पास रखोगी, देख लूँगा! जैसे भी हो, उन्हें मैं अपने पास ले जाऊँगा।"

मनोरमा बोली, "अच्छा ठीक है, अभी आप जाइए और अब यहाँ आपको आने की कोई जरूरत नहीं है।"

ससुर फिर एक बार उसे धमकी देते हुए चले गए। मनोरमा के मन में कई दिनों तक यही डर लगा रहता कि कहीं किसी दिन ससुर आकर बच्चों को उसे बिना बताए चुपचाप ले न जाएँ! इसलिए भाई की सलाह पर मनोरमा ने पुलिस थाने में एक शिकायत दर्ज करवा दी थी।

इस घटना के कुछ समय बाद ससुर के वकील की तरफ से एक कानूनी नोटिस आया कि शिवनाथ के इंश्योरेंस के पैसे में उनका भी हिस्सा है और शिवनाथ की इच्छानुसार वे दोनों बच्चों को अपने पास गाँव में रखेंगे। मनोरमा ने इस नोटिस

को अपने भाई को दिखाकर सलाह माँगी। दोनों ने मिलकर यह तय किया कि इस बारे में कुछ न करके चुप रहना उचित होगा।

इस बात के कुछ दिन बाद मनोरमा अपने भाई को लेकर शिवनाथ के गाँव गई, पर ससुराल न जाकर गाँववालों से बात करके शिवनाथ की जमीन-जायदाद को बेचने की बातचीत करने लगी। इस बात की भनक लगने पर शिवनाथ के पिता भी अपने साथ कुछ लोगों को लेकर वहाँ पहुँचे और सभी को बता दिया कि शिवनाथ की जमीन को वे बेचने नहीं देंगे। इसके बाद भी जमीन खरीदने के लिए मनोरमा को ग्राहक मिल गए। अब ससुर हो-हल्ला मचाना छोड़कर मनोरमा से विनती करने लगे कि जमीन बिकने के बाद उस पैसों में से कुछ वह शिवनाथ के छोटे भाइयों को दे दे। इस बात का कोई उत्तर न देते हुए मनोरमा ने अपने गहनों की बात उन्हें याद दिलाई।

गाँव की जमीन की बिक्री हो गई और उन्हीं रुपयों से मनोरमा जिस मकान में किराए पर रहती थी, उसे खरीद लिया। अब उसका जीवन कुछ आसान हो गया। उसे मकान के लिए किराया देना नहीं पड़ता था। कई तरह के इंश्योरेंस में लगाए गए पैसों से हर महीने कुछ कमाई हो जाती थी, जिसे अपनी जरूरतों पर खर्च करने के बाद भी मनोरमा कुछ जमा भी कर लेती थी। अब इतने सालों बाद अपने घर को वह अपनी इच्छानुसार सजाने में मन लगाने लगी और अब तक उपेक्षित करती रही अपने सौंदर्य पर वह ध्यान देने लगी। इस बीच वह अपने आस-पड़ोस से मिलने-जुलने भी लगी। उसे न्यायिक परामर्श देने के लिए उसके भाई के वकील जब भी उससे मिलने आते थे, वह अपने को कुछ और ज्यादा सजाने-सँवारने लगती।

इन सबके बीच शिवनाथ उसे याद नहीं आते थे, ऐसी बात नहीं थी। पर उस याद आने में कोई आवेग या कोमलता नहीं थी। जब तक शिवनाथ जिंदा थे, उन्होंने कभी मनोरमा का प्रेम, आत्मीयता भरा साथ नहीं दिया था, पर मर जाने के बाद उसे घर, आर्थिक सुरक्षा और भविष्य के लिए दो संतान दे गए थे। सिर्फ इतने के लिए ही याद करती थी मनोरमा उन्हें, बस और कुछ नहीं। अब मनोरमा के प्यार, ममता, समय का केंद्र सिर्फ उसके दोनों बच्चे थे। उन्हें कैसे अच्छी सी परवरिश दे पाएगी, यही बस उसका एकमात्र लक्ष्य बन गया था।

जीवन इसी तरह से सहज गति से बीत रहा था, तभी अचानक उसे ससुर की तरफ से फिर एक नोटिस मिला। इस बार उन्होंने अपने पोते-पोतियों की कस्टडी की माँग की थी, मनोरमा का चरित्र अच्छा न होने की आड़ लेकर। नोटिस को पढ़कर मनोरमा का दिमाग खराब हो गया। पैसों के लालच में कोई व्यक्ति इस स्तर तक गिर सकता है, इसकी कल्पना नहीं कर पाई थी मनोरमा। अपने चरित्र पर

लाँछन से उसे ऐसा लगा, मानो किसी ने उसके जीवन को ही पूरी तरह से खत्म कर दिया है! वकील ने उसे जितना भी समझाया कि इस तरह के मुकदमे में सफेद झूठ का सहारा लिया जाता है, पर मनोरमा की कुछ समझ नहीं आया। इतने सालों से तलवार की धार पर चलने के बावजूद इस तरह का नीचता भरा आरोप मनोरमा की कल्पना से बाहर की बात थी। नोटिस के जवाब में मनोरमा के वकील ने एक कठोर उत्तर भेजा और अलग से ससुर से अपने बच्चों के लिए संपत्ति के हिस्सा माँगते हुए एक और नोटिस भेजा। इसके बाद ससुर की तरफ से और कोई समस्या नहीं उपजी, पर उस चारित्रिक हनन की बात ने मनोरमा को पूरी तरह से एक अलग व्यक्ति में बदल दिया।

ससुर की नोटिस में कहा गया था कि मनोरमा चंचल प्रकृति की औरत थी। कई पुरुषों के साथ संबंध रखती थी और बच्चों पर इसका कुप्रभाव पड़ रहा था। मनोरमा सोचने लगी कि उसके किस व्यवहार के चलते कोई उस पर इस तरह का लाँछन लगा सकता है ? उसने उन पुरुषों को याद किया, जिन्हें वह जानती थी। पर इनमें से किसी के साथ उसका ऐसा कोई संबंध नहीं था, जिसे देखकर उस पर इस तरह का आक्षेप किया जा सकता था। फिर वह अपने को दोषी सा मानने लगी। शायद उसे और भी सख्त मिजाज होना चाहिए था। अब उसने तय किया कि वह अपने जीवन को और भी नीरस और शुष्क कर देगी और उस पर समाज ने विधवा की जो भूमिका लाद दी है, उसे पूरी तरह निबाहेगी।

इसलिए मनोरमा ने सफेद साड़ी पहनना शुरू कर दिया। अपने सारे सामाजिक संबंध को कम कर दिया। भाई के दोस्त उन वकील महाशय को अपने घर आने नहीं दिया और बच्चों के लिए और भी कठोर तथा सख्त हो गई। पर इस सबके साथ उसने अपने मन से इस बात को भी पूरी तरह मिटा दिया कि उसके जीवन में शिवनाथ नाम का कोई व्यक्ति भी था। उसके लिए जो एक नया जीवन शुरू हुआ, उसमें सिर्फ वह और उसके बच्चे थे। उसके इस जीवन में दोनों बच्चों को बड़ा करने के अलावा कोई और लक्ष्य या संभावना नहीं थी। इसमें मनोरमा ने समर्पण कर दिया अपना सारा समय, उम्र, उद्यम और प्रेरणा।

और इसका एक अद्भुत और नकारात्मक प्रभाव पड़ा बच्चों पर। उनके लिए मनोरमा ने जो भी नीति-नियम, नियंत्रण बाँध दिया, इससे घर उनके लिए बंदीशाला बन गया। मनोरमा उन पर हर पल नजर रखने लगी। वह चाहती थी कि स्कूल के बाद बच्चे बाकी समय उसके पास रहें और उसकी इच्छा मुताबिक वे अपना भविष्य बनाएँ। पर उसका यह अनुशासन उसके दोनों बच्चों पर बिल्कुल अलग

प्रभाव डालने लगा। उसका बेटा सुमन माँ के प्रति बहुत ही आज्ञाकारी होकर जहाँ घरघुसरू हो गया, वहीं उसकी बेटी सुनीता स्वावलंबी होने के साथ-साथ विद्रोही स्वभाव की हो गई। और दोनों ही हालात मनोरमा के लिए परेशानी का सबब बन गए। वह सुमन को जितना घर से बाहर जाने के लिए कहती, वह उतना ही उसके आँचल में छिपता जाता। दूसरी ओर बेटी को जितना बंदिश में रखना चाहती, वह उतना ही मनमानी करती और उनसे दूर होती जा रही थी।

कभी-कभी एकांत पलों में मनोरमा को एक पुरुष की कमी का अहसास होने लगता; पर वह पुरुष निश्चित रूप से शिवनाथ नहीं थे। जीवन अब सहजता से गुजर जरूर रहा था, पर बीच-बीच में कुछ छोटे-छोटे कामों के लिए मनोरमा को अपने भाई की सहायता लेनी पड़ती थी। इसके अलावा, चालीस साल की होते-न-होते, उसे लगने लगा था, जैसे वह बीमार होती जा रही है और अपने स्वास्थ्य के लिए उसे कोई बंदोबस्त कर लेना चाहिए। वह स्वस्थ्य थी, फिर भी भविष्य में होनेवाली परेशानियों की सोच उसे हमेशा चिंता में डाले रहती। इसलिए सुमन ने जब स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद आर्ट्स लेकर पढ़ना चाहा तो उसने उसे विज्ञान लेकर डॉक्टर बनने के लिए मजबूर किया। मुँह खोलकर भले ही सुमन ने ऐतराज नहीं किया, पर मनोरमा को यह अहसास होता था कि वह मन-ही-मन काफी नाराज है। और दूसरी तरफ सुनीता पढ़ाई में कमजोर थी, इसलिए मनोरमा ने उसे आर्ट्स लेकर पढ़ने के लिए कहा तो वह जिद में आकर विज्ञान लेकर पढ़ी और फेल हो गई।

बच्चों के साथ इसी तरह के कारण-अकारण मानसिक खींचातानी के साथ मनोरमा का समय बीतने लगा। उसके बाल पकने लगे, वजन बढ़ने लगा और अपनी वेशभूषा का खयाल रखना वह भूल गई। हालाँकि, सांसारिक बात में वह निपुण हो गई थी। अपने व्यवसाय में उन्नति करते हुए शहर में एक बड़ी जमीन खरीद ली, फिर भी मनोरमा का परिवार एक खुशहाल परिवार जैसा नहीं था। तीनों की तीन तरह की जीवन-शैली थी और आपस में एक-दूसरे से प्रेम-ममता का संबंध बहुत कम था। जब सुनीता ने पढ़ाई छोड़कर कम उम्र में ही अपने एक दोस्त से शादी करने की जिद की और वह अपनी माँ के साथ इस बात को लेकर झगड़ा करने लगी, तब सुमन ने इन सब बातों से अपने को अलग रखा। ऐसे में एक दिन सुनीता घर छोड़कर चली गई और उस लड़के से शादी कर ली। बाद में मनोरमा को खबर मिली कि शादी करके पास ही एक शहर में वह रह रही है। मनोरमा ने सिर्फ खुद को ही नहीं, बल्कि सुमन को भी सुनीता से संबंध न रखने के लिए पाबंदी लगा दी।

डॉक्टरी पास करते ही मनोरमा ने सुमन की शादी करवा दी, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि बेटा भी अपनी पसंद की लड़की से शादी कर ले। कई लड़कियों को नापसंद करने के बाद मनोरमा जिस लड़की को बहू बनाकर लाई, वह गाँव की सीधी-सादी, कम पढ़ी-लिखी शांत स्वभाव की थी। मनोरमा को विश्वास था कि ऐसी लड़की को बहू बनाकर लाने से अपने बेटे पर उसका वश रहेगा, सारे अधिकार उसके हाथों में ही रहेंगे और उम्र बढ़ने के साथ बेटा-बहू दोनों उसकी सेवा-टहल करेंगे।

अब पचपन की उम्र में पहुँचकर उसी पुरानी आशा, विश्वास की बात सोचकर मनोरमा को यह समझ आ रहा था कि कितनी भ्रमपूर्ण थी उसकी योजना! कहाँ गई वह सोने की दुनिया, जिसमें वह अपने दोनों बच्चों के साथ अपना जीवन गुजारने वाली थी! सुमन आज डॉक्टर बनकर अलग शहर में रह रहा था। बहू, जिसे उसने शांत स्वभाव की जाना था, बाद में पता चला अपने बाहरी कोमल स्वभाव के बावजूद अंदर से काफी कुटिल स्वभाव की थी वह। सुमन पूरी तरह से अपनी पत्नी के कब्जे में था और उसकी उँगली पर नाच रहा था। बेटा-बहू चाहे मनोरमा के प्रति आदर-सम्मान का भाव रखते थे, फिर भी वह जानती थी कि उनके इस व्यवहार में कहीं भी अपनापन का भाव नहीं था। उलटे आजकल सुनीता के साथ उसका संबंध बहुत अच्छा हो गया था। सुनीता का पति, जिसको वह नाकारा और बेकार समझती थी, उसने अब अपने व्यवसाय को जमा लिया है और उसके पहले के खराब व्यवहार के बावजूद उसका सम्मान करता था।

दोनों बच्चे दूर रहने लगे तो मनोरमा अकेली ही रहने लगी और इस बात को स्वीकार कर लिया कि उसे इसी तरह बाकी की जिंदगी अकेले बितानी पड़ेगी। इस बात को स्वीकार कर लेने के बाद उसने अपने जीवन की दमित इच्छाओं को पूरा करने में अपने मन को लगा दिया। घर को कैसे सजाया जाए, अपना खान-पान कैसा हो, स्वास्थ्य की कैसी देखभाल की जाए, खाली समय को कैसे बिताया जाए, इन सारे विषयों के लिए उसने एक सुनिश्चित समय तय कर दिया। उसने अपने को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि बच्चे उसके पास उनकी अपनी सुविधा और इच्छा से आएँगे, न कि उसकी खुद की अपनी सुविधा या जरूरतों के मुताबिक।

सुनीता के साथ दूर हो गए संबंध मनोरमा से फिर एक बार तब जुड़े, जब सुनीता माँ बनने जा रही थी। जबकि मनोरमा और सुनीता ने इस बारे में सीधे बातचीत नहीं किया था, बल्कि उनके परिचितों के माध्यम से यह बात तय हुई कि सुनीता अपने बच्चे के जन्म तक मनोरमा के पास आकर रहेगी। एक दिन सुबह-सुबह

सुनीता अपने पति को लेकर मनोरमा के घर पहुँची। दोनों एक-दूसरे से लिपटकर काफी रोईं और सुनीता ने फिर एक बार उस घर को ऐसे अपना लिया, मानो इतने दिन तक उनके बीच कोई दूरी ही नहीं थी। मनोरमा ने महसूस किया कि इन कुछ सालों में सुनीता काफी व्यवस्थित और समझदार हो गई है। उसका पति भी मनोरमा को अच्छा लगा। उसे अब इस बात का अफसोस होने लगा कि उसने बेकार ही इतने सालों तक उन लोगों से संबंध तोड़ दिया था।

सुनीता का बच्चा हो जाने के बाद वह चली गई। उसके जाने के कुछ महीने बाद सुमन की पत्नी गर्भवती होकर उसके पास आई। वह इस बार और भी नम्र और सम्मानजनक व्यवहार करती रही, पर मनोरमा जानती थी कि इसमें कहीं भी हार्दिकता नहीं थी। मनोरमा अभी उनकी जरूरत थी, यह जानने के बावजूद भी वह उन सबकी देखभाल करती रही और नवजात शिशु के आने से बेहद खुश भी रहने लगी। कुछ दिन बाद बहू बेटे के पास चली गई।

इसी तरह से सुमन और सुनीता के बच्चों के लिए दो-दो बार धाय माँ का रूप धरने के बाद मन-ही-मन कहा, 'बस अब बहुत हो गया। उसकी खुद की उम्र भी तो काफी हो गई थी। बच्चे अब खुद अपने बच्चों की देखभाल करें। अब वह आराम करना चाहती है।' बच्चों को अब उसकी जरूरत भी नहीं थी, इसलिए उन्होंने मनोरमा को और तंग नहीं किया। इस तरह से बढ़ती उम्र के साथ मनोरमा ने नि:संगता को अपना लिया।

इसी तरह से शायद उसका जीवन कट जाता। पर उसने जो एक जमीन खरीदी थी, सरकार ने उसके आसपास एक बहुत वृहद इंडस्ट्रीयल एरिया बनाने की योजना घोषित कर दी, तब जमीन का भाव काफी बढ़ गया। मनोरमा को यह बात पता चली। एक दिन सुनीता का पति आकर मनोरमा से उस जमीन को कैसे व्यावसायिक काम में लगाया जा सकेगा, यह बताने लगा। कुछ दिन के बाद सुमन ने उसके पास पहुँचकर उस जमीन पर एक नर्सिंग होम बनाने की सलाह दी। जल्द ही एक जाने-माने बिल्डर ने आकर उस जमीन की काफी अच्छी रकम देने का प्रस्ताव रखा। अब मनोरमा को अहसास हुआ कि वह अब सचमुच एक बड़ी संपत्ति की मालकिन है।

इसी समय उसने अपनी वसीयत बनाने का मन बनाया और वकील से इच्छा-पत्र का एक नमूना लेकर आई। उसके बाद उसने एक दिन सुमन और सुनीता को इस विषय पर बात करने के लिए बुलाया। पहली नजर में सुमन को इस बात से बिल्कुल भी खुशी नहीं हुई कि सुनीता को संपत्ति में हिस्सेदार बनाया जाए। शायद

उसने सोचा था कि अकेला लड़का होने के चलते माँ की पूरी संपत्ति का वही उत्तराधिकारी था; यूँ भी लड़की को हिस्सा देने का रिवाज भी नहीं है। पर आपसी बातचीत के समय उसने यह बात नहीं उठाई। सुमन और सुनीता के मन में चाहे इच्छा जोर मार रही थी कि वसीयत बन जाए, पर दोनों ने ऊपरी मन से यह कहकर कि मनोरमा अभी और कई साल जिएँगी और उन्हें वसीयत के बारे में अभी नहीं सोचना चाहिए, बात को आगे नहीं बढ़ाया।

मनोरमा की उम्र तब पचपन साल हो चुकी थी। देखा जाए तो ऐसी कोई खास उम्र नहीं हुई थी उसकी। पर कई तरह की बीमारियों ने उसे घेर रखा था। पहले बीमार होती थी तो बच्चों को वह खबर नहीं देती थी। पर आजकल उसने गौर किया कि सुनीता और सुमन उसकी हमेशा खोज-खबर रखने लगे हैं। उनकी तबीयत भी खराब होती तो उन्हें अपने पास ले जाकर रखने की वे कोशिश करते। समय-असमय सपरिवार उसके पास पहुँच जाते और कोशिश करते कि उनके बच्चे मनोरमा के ज्यादा-से-ज्यादा करीब हो जाएँ। पर इतने सालों से अकेली रहती आ रही मनोरमा को अब चहल-पहल अच्छी नहीं लगती थी। बच्चों का उसके साथ इस तरह लद जाना उसे बोझ सा लगता।

बीच-बीच में उसकी जमीन के भविष्य की बात उठती थी, पर कोई सीधे कुछ पूछना नहीं चाहता था। वे सभी मनोरमा को कई तरह की सलाह देते थे कि कैसे उस जमीन का उपयोग करके उससे अच्छी कमाई की जा सकेगी। पर मनोरमा इस पर कोई निर्णय लेने के लिए राजी नहीं होती थी। हमेशा कह देती कि वह इस पर सोचकर बताएगी।

एक बार उनकी तबीयत खराब होने पर सुमन जिद करके उसे अपने घर ले गया। वहाँ उनकी सेवा-टहल में कोई कमी नहीं थी, पर मनोरमा को उसमें आंतरिकता कहीं नजर नहीं आ रही थी। बहुत साल पहले सुमन को डॉक्टर बनाने की इच्छा करते समय मनोरमा ने सोचा था कि उसके बुढ़ापे में उसकी तबीयत खराब होने पर वह उसका सहायक होगा। अब वह सोचती कि आगे बीमार पड़ने पर वह बेटा-बहू की सहायता न लेकर खुद अपनी देखभाल करेगी।

सुमन के घर से वापस लौटने के कुछ दिन बाद सुनीता उसे अपने साथ अपने घर ले गई। सुनीता और उसके पति भी मनोरमा की काफी देखभाल करने लगे। उनके व्यवहार में नकलीपन ढूँढ़कर मनोरमा निराश हुई, क्योंकि दोनों सचमुच स्नेही थे। फिर भी मनोरमा की वहाँ रहने की इच्छा नहीं हुई और वह बहुत जल्द अपने घर लौट गई।

कुछ साल के भीतर उनकी जमीन के आसपास के इलाके में दुकान, बाजार, ऑफिस बन गया और बिल्डर मनोरमा के पास बार-बार पहुँचकर उसे परेशान करने लगे। उनका कहना था कि मनोरमा सोने की गद्दी पर बैठी है और जमीन को न बेचकर हर दिन काफी नुकसान सह रही है। इसके जवाब में मनोरमा कहती थी कि उसे हर महीने जितना पैसा मिल रहा है, वह उसके खर्च के लिए काफी है। जमीन का दाम बढ़ रहा है तो बढ़ने दो। आखिर में एक दिन जब सुमन उसके पास पहुँचकर जमीन को किसी फायदेमंद काम में लगाने की बात करने लगा तो मनोरमा ने काफी दिनों से सोचकर रखे गए अपने अस्त्र का प्रयोग किया और बोली, "मैं भी सोच रही हूँ कि जितनी जल्दी यह जंजाल खत्म हो जाए, उतना अच्छा है। तू तो अच्छी-भली नौकरी कर रहा है और आराम से है। पर सुनीता का कारोबार कभी ठीक से चलता है, तो कभी ठीक नहीं चलता। और फिर तुम तो अपनी नौकरी में व्यस्त रहते हो, ऐसे में जमीन-जायदाद, घर-द्वार की देखभाल करने के लिए तुम्हारे पास फुरसत कहाँ है? पर सुनीता का पति इन सबकी देखभाल आसानी से कर पाएगा। मैं उससे इस बारे में बातचीत करूँगी।" बेशक सुमन ने यह कहा कि यही बात ठीक रहेगी, पर मनोरमा समझ गई कि सुमन को उसकी बात से निराशा ही हुई।

सुनीता जब एक दिन मनोरमा से अपने पति के साथ मिलने आई थी, तब मनोरमा ने जमीन-जायदाद की बात को उसके सामने रखी, पर सुनीता के बोलने से पहले उसके पति ने तुरंत कह दिया कि उसे अपनी सासू माँ की संपत्ति में कोई दिलचस्पी नहीं है। उसकी बात सुनकर सुनीता बोली कि, "आप गैर हैं, इसलिए आपको कोई दिलचस्पी नहीं होगी, पर मैं तो उनकी बेटी हूँ और इस नाते उनकी संपत्ति पर मेरा अधिकार है। ऐसे में मैं क्यों अपना अधिकार छोड़ दूँ?" मनोरमा ने कहा, "बेटी, तेरा कहना सही है। मेरी भी इच्छा है कि तुम दोनों इस जमीन-जायदाद को सँभालो। पर सभी मुझे यही बात समझा रहे हैं कि भले ही कानून में बेटी के हक के बारे में कुछ भी लिखा हो, पर कोई भी अपनी पूरी संपत्ति अपनी बेटी के नाम ही नहीं लिख देता है। मेरा कहना भी यह नहीं था कि सारी संपत्ति बेटी को ही दे दूँ। मेरा कहना है कि मेरी नजर में बेटा या बेटी में कोई फर्क नहीं है।" मनोरमा ने वसीयत की बात को और नहीं बढ़ाया।

इसी तरह से दिन बीतते रहे। सुमन अब अपनी तरफ से जमीन की बात को नहीं उठाता था। पर कभी-कभी मनोरमा सुमन से पूछती कि क्या वह सच में नौकरी छोड़कर नर्सिंग होम करना चाहता है? तब सुमन आशा से भरकर उसे अपनी योजना

बताते हुए कहता कि कैसे वह बैंक से ऋण लेकर नर्सिंग होम बनाएगा और कैसे उससे बहुत लाभ मिलेगा। पर मनोरमा फिर बात को आगे नहीं बढ़ाती थी।

इच्छा-पत्र में कभी वह सुमन और सुनीता दोनों का नाम लिखती, तो कभी एक का नाम काट देती या फिर कभी दोनों का नाम काट देती थी। सुमन या सुनीता उनसे मिलने आते तो उनसे इच्छा-पत्र को फिर से नए सिरे से टाइप करवाकर ले आने के लिए कहते। बेटा-बेटी दोनों को अब समझ में आ गया था कि उसकी माँ के लिए यह कागज एक खेल का रूप ले चुका है। पर मनोरमा की संपत्ति एक खेल नहीं, वास्तविकता थी और यह बात उसके दोनों बच्चे समझते थे, इसलिए बिना हारे हुए अपनी माँ के खेल में जी-जान से साथ दे रहे थे।

मनोरमा के बच्चे और उनके अपने बच्चे और भी बड़े हो गए थे। उसकी जमीन का दाम आसमान छूने लगा था। मनोरमा आईने में अपने आनेवाली बुढ़ापे की स्वास्थ्य हानि को देखती रहती। उसके हाथ में इच्छा-पत्र था। उस पर वह नजर फिरा रही थी, आज इस तारीख को मैं श्रीमती मनोरमा यह घोषणा करती हूँ...

नाम के लिए छोड़ी गई खाली जगह पर कई बार नाम लिखा था, पर यह निश्चित नहीं था कि मरने से पहले वह निश्चित तौर पर किसी का भी लिख पाएगी या वह लिखेगी नहीं!



5

जन्मदाता

अपने साहित्यिक जीवन में उन्हें किसी ने कभी इतना महत्त्व दिया था, ऐसा कुछ याद नहीं आ रहा था उमाशंकर को। बेशक उन्हें देश का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार मिला था, भले ही यह गौरव बस ढाई दिन के लिए था। इस पुरस्कार के लिए उनका जिस तरह का भव्य स्वागत हुआ था, उसका प्रमुख आकर्षण उमाशंकर नहीं, बल्कि पुरस्कार के लिए पैसा देनेवाले उद्योगपति थे। पुरस्कार पाने के कुछ दिन बाद ही बेटी की शादी में सारे पैसे खर्च हो गए। पुरस्कार से प्राप्त अभिनंदन और आनंद चार दिन की चाँदनी की तरह खत्म हो गया था और बचा कुछ, तो वह था ईर्ष्या, समालोचकों की तीखी आलोचना, आक्षेप और निंदा।

एक बार फिर अब अचानक उनका महत्त्व बढ़ जाने के पीछे भी उनकी साहित्यिक कृति नहीं थी, भले ही उसके मूल में पुरस्कार प्राप्त उनका उपन्यास ही था। उन्होंने जब यह उपन्यास लिखा था, तब टेलीविजन का प्रसार नहीं हुआ था और न ही धारावाहिक युग की शुरुआत हुई थी। जब संचार और संपर्क का विस्फोट हुआ और मीडिया का प्रभुत्व स्थापित हो गया, तब टेलीविजनों के धारावाहिक के प्रसारण के लिए विषय-वस्तु मुहैया कराने का साहित्य पर दबाव बढ़ा। इसी सिलसिले में पुरस्कार प्राप्त उपन्यासों का भाव अचानक से बढ़ गया, क्योंकि टेलीविजन के कर्ता-धर्ता के लिए इसे बेचना आसान था। एक दिन अचानक उनके उपन्यास पर फिल्म बनाने के लिए बंबई से उमाशंकर के पास एक फोन आया। फोन किया था एक प्रतिष्ठित फिल्म-निर्माता ने, जिनका नाम फिल्म बनाने से अधिक उनसे जुड़े विवादों के लिए अधिक ख्यात था। उमाशंकर के पास उनकी कहानियों पर फिल्म बनाने का प्रस्ताव लेकर लोगों का आना कोई नई बात नहीं थी। आसपास

के फिल्म-निर्माता कभी-कभार उनके पास आकर फिल्म बनाने के लिए उनसे अनुमति-पत्र पर दस्तखत करवा लेते थे और उनमें से कुछ अधिक उत्साही निर्माता, निर्देशक घंटों उनके उपन्यास को फिल्म के रूप में परिवर्तित करने को लेकर घंटों उस पर आलोचना करते थे। पर इतने सालों के बाद भी इतने दस्तखत और चर्चे के बाद भी उमाशंकर को कोई पैसा नहीं मिला था, न ही उनकी किसी भी कहानी का फिल्मांकन हो पाया था। इसलिए उमाशंकर ने यह तय किया कि वे अब इस विषय पर अपना ध्यान नहीं देंगे। न ही इस पर व्यर्थ समय नष्ट करेंगे। पर बंबई से उनके पास जो फोन आया था, वह पूरे भारत में जाने-माने निर्माता के रूप में स्थापित व्यक्ति का था और उन्होंने जिस तरीके से बात की, वह एकदम अप्रत्याशित था। उन्होंने उमाशंकर से कहा कि वे उनकी पुरस्कार प्राप्त पुस्तक को शुरू से आखिरी तक दो बार पढ़ चुके हैं और उससे इतने ज्यादा प्रभावित हैं कि उस पर फिल्म बनाने के लिए वे दृढ़प्रतिज्ञ हैं और इस सिलसिले में वे उमाशंकर से विस्तार से चर्चा करना चाहते हैं। इसके लिए वे उमाशंकर के बंबई आने के लिए हवाई जहाज का टिकट और पाँचतारा होटल में रहने का बंदोबस्त करवा देंगे। अगर फिल्मवालों के साथ उमाशंकर का पहले से कड़वा अनुभव नहीं होता तो वे तुरंत हामी भर देते। पर इस तरह की एक सुनहरी व्यवस्था के बारे में सुनकर उनका मन कुछ आशंकित हो गया। उन्होंने बंबई के उस फिल्म-निर्माता को उत्तर देते हुए कहा, "मैं सोच-समझकर बताऊँगा।"

निर्माता बोले, "ठीक है, मैं कल आपको ठीक इसी समय पर फोन करूँगा।"

इसके दूसरे दिन उमाशंकर के पास बंबई से ही एक दूसरे और प्रसिद्ध फिल्म-निर्माता, जिनका नाम और भी ज्यादा विवादों से भरा था, का फोन आया। इस फिल्म-निर्माता ने उमाशंकर से कहा, "मैंने इस उपन्यास को तीन बार पढ़ा है और जिस दिन आपकी पुस्तक को पढ़कर खत्म किया, उसी दिन आपके पास पहुँचने के लिए टिकट कटवा लिया। मैं सोमवार को आपके शहर पहुँचूँगा। आप कृपा करके उस दिन मेरे लिए थोड़ा समय निकाल लीजिएगा।" इसके बाद उमाशंकर को भागने का मौका नहीं मिला और अंदर-ही-अंदर अपनी माँग को देखकर वे खुश भी होते रहे।

सोमवार को शहर पहुँचते ही निर्माता ने होटल से उमाशंकर को फोन किया और उसी दिन शाम को मिलने का समय तय कर लिया। ठीक समय पर उमाशंकर होटल पहुँचे और निर्माता के सुइट पर पहुँचकर आश्वस्त हुए कि निर्माता उनकी कल्पना के अनुरूप निकले। पूरी तरह से सफेद वस्त्र और सफेद जूता पहने हुए

साफ-सफ्फाक, सभ्य निर्माता बहुत ही सादगी के साथ उन्हें अंदर ले गए और सबसे ज्यादा सुंदर आसन पर उन्हें बैठाकर बोले, "पहले आप बताइए क्या लेंगे, फिर जाकर कोई बातचीत होगी।"

रूम सर्विसवालों को बुलाकर थोड़ा बर्फ लाने के लिए कहा और फिर उमाशंकर के सामनेवाली कुरसी पर बैठते हुए बोले, "मैं आज से पहले कभी आपके शहर नहीं आया था और अगर आप यहाँ नहीं होते तो कभी भी यहाँ आने का सौभाग्य नहीं मिलता। मैंने सुना है कि यहाँ अनेक दर्शनीय स्थान हैं। वैसे भी मुझे पुरी जाकर श्री जगन्नाथजी का दर्शन करने की इच्छा है। फ्लाइट लेने से पहले अगर आप मुझे कुछ समय देते तो आपके साथ चलकर मैं सब जगह देख लेता।"

इतना कहकर उमाशंकर की तरफ कुछ पल देखने के बाद आगे बोले, "यूँ आपको कोई असुविधा न हो, समय और इच्छा हो तो…"

उमाशंकर ने उन्हें दूसरे दिन घुमाने ले जाने का वादा किया और कहाँ-कहाँ ले जाएँगे, उसके बारे में बताया। उसी समय थोड़ा और बर्फ आ गया। निर्माता ने अपने सूटकेस में से एक महँगी स्कॉच की बोतल निकाली और उमाशंकर से पूछने के बाद गिलास में सोडा, बर्फ मिलाकर उनकी तरफ बढ़ाया और अपना गिलास उठाकर चियर्स किया। गिलास से पहला घूँट भरने के बाद खिड़की से बाहर की तरफ नजर डाली उमाशंकर ने। कुछ दिन से मौसम बहुत खराब था और घर के अंदर भी इतनी गरमी थी कि कोई काम किया नहीं जा रहा था। पर अभी एयरकंडीशन कमरे में बैठकर मौसम की चरम गरमी का अहसास नहीं हो रहा था। जाम का स्वाद बहुत ही अच्छा था और सामने बैठे निर्माता बहुत ही सभ्य और नम्र थे। यह सबकुछ एकदम अलग था, उनकी आम परंपराबद्ध दिनचर्या से।

अब निर्माता काम की बात पर आए। उनकी इच्छा थी कि वे उमाशंकर के उपन्यास पर टेलीविजन के लिए पचास एपिसोड का धारावाहिक बनाएँ। भारतीय स्वाधीनता की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इस उपन्यास का महत्त्व स्वाधीनता की अर्धशताब्दी पर टेलीकास्ट किए जाने से काफी बढ़ जाएगा। निर्माता की बातचीत से प्रतीत हुआ कि भले ही उन्होंने तीन बार उपन्यास को न पढ़ा हो, पर उसे पढ़ा जरूर है और उसकी विषय-वस्तु के बारे में उन्हें पता है।

उमाशंकर बोले, "कुछ दिन पहले मुझे एक और निर्माता का फोन आया था, पर इस उपन्यास पर वे ढाई घंटे की फीचर फिल्म बनाना चाहते थे। आप क्या सोचते हैं कि इस उपन्यास के कथानक को खींचतान कर आधे-आधे घंटे के पचास एपिसोड बनाए जा सकते हैं?"

निर्माता ने उत्तर दिया, "आपके उपन्यास का कैनवास इतना व्यापक है और उसके चरित्र इतने भरे-पूरे हैं कि उसे एक फिल्म में कैद किया जाए तो उसमें से कई चरित्र और घटनाओं की कुरबानी देनी पड़ेगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आपका उपन्यास पूरी तरह से परदे पर आए, उसमें से एक भी हिस्सा काटा न जाए।"

"पर मेरा मानना कुछ अलग है," उमाशंकर बोले, "उपन्यास में इतनी बातें नहीं हैं कि उसे लेकर पच्चीस घंटे की फिल्म बनाई जाए।"

निर्माता बोले, "इसके लिए हम उसमें और अधिक मसाला मिलाएँगे। आपने जब पुस्तक लिखी थी तो आपने सोचा नहीं था कि उस पर फिल्म भी बनाई जा सकती है! इसलिए आपने उसे एक साहित्यिक कृति की तरह से लिखा। पर हम जब उसका स्क्रिप्ट लिखेंगे तो उसे एक फिल्म के दृष्टिकोण से लिखेंगे। किसी पुस्तक पर फिल्म बनाना तो आसान है, पर उसे धारावाहिक में ढालते समय हमें देखना होता है कि उसके सारे एपिसोड में संपूर्ण कथानक हो, साथ ही उसमें कुछ नाटकीयता और चरमबिंदु भी हों।"

उमाशंकर कुछ सतर्क होते हुए बोले, "तब तो आपको मेरे उपन्यास में कई परिवर्तन करने होंगे!"

"नहीं-नहीं, उसके लिए आपको ज्यादा परेशान होने की जरूरत नहीं है। कहानी में जो कुछ भी बदला जाएगा, उसके लिए आपसे बाकायदा अनुमति ली जाएगी। हमारे फिल्मी संसार में अगर कोई लेखक को ज्यादा सम्मान और पैसा देता है तो वह मैं हूँ। हम जब अभिनेता, अभिनेत्री, कैमरामैन पर इतना रुपया खर्च कर देते हैं तो फिर लेखक के साथ कोई कंजूसी क्यों? पर मेरे दोस्त ऐसा नहीं सोचते हैं। उनका कहना है कि लेखक ने तो चार पन्ने की कहानी लिख दी, जबकि फिल्म बनाने के लिए पहला और मुख्य काम है, स्क्रिप्ट लिखना। इसलिए स्क्रिप्ट लेखक को ही पैसा देना चाहिए, लेखक को नहीं। पर मैं ऐसा नहीं सोचता हूँ।"

दोनों के खाली गिलासों में शराब उड़ेलते हुए निर्माता बोले, "मैं लेखकों को क्यों इतना सम्मान देता हूँ, जानते हैं?" इतना कहने के बाद वे काफी देर चुप रहे, जैसे पिछला कुछ याद कर रहे हों! फिर अपना गिलास एक ही साँस में पी लेने के बाद सोफे पर पीठ टिकाकर आँखें मूँद लीं और बोले, "मेरे पापा एक लेखक थे।"

अचानक इस अपरिचित आदमी के लिए उमाशंकर का मन अपनेपन से भर गया। उन्होंने अपने मन में बिना किसी तर्क के निर्णय ले लिया कि अगर वह उपन्यास को फिल्म बनाने के लिए किसी को देंगे तो इन्हीं महाशय को ही देंगे।

गिलास में एक बार और शराब भरकर पीते-पीते निर्माता ने जब अपनी बात आगे कहने के लिए मुँह खोला तो उनकी आवाज और आवेग बिल्कुल अलग था। उन्होंने कहा कि, "देश के विभाजन से पहले हम लाहौर में थे। वहाँ मेरे पिता एक सरकारी ऑफिस में छोटे पद पर काम कर रहे थे। पर उनका मन साहित्य में ज्यादा था। अपना ज्यादातर समय वे पढ़ने-लिखने में बिताते थे। लेखक के तौर पर वैसे उनका कुछ विशेष नाम नहीं हो पाया था। विभाजन के बाद भारत आ जाने के बाद जीवन के जंजाल में ज्यादा कुछ लिख नहीं पाते थे। लेकिन उनका पूरा जीवन साहित्य के लिए समर्पित था। इसलिए लेखकों के प्रति मेरी एक कमजोरी सी है, साथ ही आदर और सम्मान भी है।"

फिर कुछ देर चुप्पी पसरी रही। उमाशंकर ने चुप्पी को तोड़ते हुए जब निर्माता से उनके पिताजी के बारे में कुछ और पूछा तो, वे बोले, "देखिए, कहते-कहते मैं अपने बारे न जाने कितना कुछ कहा गया! मुझे कृपया माफ करिएगा। फिल्म के बारे में ज्यादा बातें भी अभी हो नहीं पाई हैं।" अपने ब्रीफकेस से एक लिफाफा निकालकर उमाशंकर की तरफ बढ़ाते हुए वे बोले, "इसमें इकरारनामा के कागजात हैं, आप पढ़ लीजिए। अगर आप सारी शर्तों पर राजी हैं तो कल हम इस पर दस्तखत कर लेंगे, पर अभी मैं आपको अग्रिम रुपया दे दूँगा।"

इतना कहते हुए उन्होंने उमाशंकर की तरफ जो चेक बढ़ा दिया, वह पचास हजार रुपए का था। उस पुरस्कार के अलावा उमाशंकर को अपने जीवन में उनके लेखन के लिए किसी ने भी इतना रुपया नहीं दिया था। वे कृत-कृत्य भाव से चेक को देख रहे थे, तभी निर्माता बोले, "यह तो बस अग्रिम रकम है। आपकी पूरी पुस्तक के लिए कितना दिया जाएगा और अगर आप स्क्रिप्ट लिखते हैं या उसमें मदद करते हैं तो कितना दिया जाएगा, सब इकरारनामा में लिखा हुआ है। आप पहले पढ़ लें, तो फिर कल उस पर चर्चा करेंगे।"

इसके बाद कुछ देर तक औपचारिक बातचीत हुई। उमाशंकर जब जाने के लिए उठे तो निर्माता महोदय उन्हें कमरे के दरवाजे तक छोड़ने आए। फिर जाने क्या मन में आया कि पूछ लिया, "मैं तो आपसे पूछना भूल गया कि आप चेक लेना पसंद करेंगे या कैश? वैसे मैं आपको कैश लेने की परामर्श दूँगा।" इतना कहकर उन्होंने ब्रीफकेस में से नोटों का एक पुलिंदा निकालकर उमाशंकर को पकड़ा दिया। उमाशंकर ने चेक वापस करते हुए रसीद लिख देने के बारे में पूछा तो निर्माता इनकार करते हुए बोले, "इसकी जरूरत नहीं है। लेखकों के साथ इस तरह की मुझे कभी कोई समस्या नहीं आई है।"

रात में खाना खाने के बाद सोने जाने से पहले उमाशंकर ने इकरारनामा को ध्यान से पढ़ा। पर उसमें कोर्ट-कचहरी की कानूनी भाषा इतनी थी कि समझना उनके लिए मुश्किल जान पड़ा। पर उन्हें जो रकम मिलने की बात लिखी गई थी, वह उनकी कल्पना से परे की बात थी और यही बात उस रात उनके सुख निद्रा का कारण बनी।

दूसरे दिन सुबह उन कागजातों को फिर से ध्यान देकर पढ़ते हुए उमाशंकर ने सोचा कि पहले जिस निर्माता ने बात की, उससे भी बात कर लेना उचित होगा। इतनी बड़ी रकम मिलने से अपने पुराने उपन्यास पर नई आस्था जगी और लालच भी आया कि शायद इससे भी ज्यादा रकम मिल सकती है। पर पहलेवाले निर्माता ने अपने कहे मुताबिक दोबारा फोन नहीं किया और वे दूसरे से अग्रिम रकम ले चुके थे। वैसे अग्रिम रकम वे लौटा सकते हैं, पर हाथ के पक्षी को झाड़ में छुपे पक्षियों के लिए छोड़ देना बेवकूफी होगी। इस तरह के सोच-विचार में उलझे हुए वे होटल में जाकर निर्माता से मिले।

निर्माता बोले, "अभी कुछ देर हम बैठकर अपने काम के बारे में चर्चा करेंगे। उसके बाद अपना सामान लेकर मैं होटल छोड़ दूँगा और आपके साथ पहले आपके शहर का परिदर्शन करूँगा, फिर हम पुरी चलेंगे। वहाँ से लौटकर मैं सीधे एयरपोर्ट चला जाऊँगा। होटल छोड़ देने के बाद मैं आपसे काम के बारे में कोई चर्चा नहीं करूँगा। एक बिन बुलाया मेहमान बनकर आए आदमी ने आपके शहर में आकर आपका इतना समय लिया, उसके लिए मुझे क्षमा कर दीजिएगा।

इसके बाद निर्माता ने उन्हें उपन्यास को किस तरह से धारावाहिक में परिवर्तित किया जाएगा, उसके बारे में जानकारी दी और कहा कि टेलीविजन में अगर उनका प्रस्ताव स्वीकृत हो जाएगा तो वे तुरंत इस काम को शुरू कर देंगे। उसके बाद तो मशीन की तरह काम चलेगा। हर उपख्यान के लिए स्क्रिप्ट लिखकर उसे फिल्मांकन कर टेलीविजन को एक-एक एपिसोड मुहैया कराना इतनी आसान बात नहीं है। इसके लिए वे एक टीम तैयार करेंगे। अगर उमाशंकर स्क्रिप्ट लिखने की जिम्मेदारी लेंगे तो इसके लिए उन्हें ज्यादा रकम मिलेगी, पर उन्हें समय ज्यादा देना होगा, साथ ही कुछ सीखना भी होगा। धारावाहिक स्क्रिप्ट लिखने के कायदे-कानून, कहानी-उपन्यास लिखने से बहुत अलग हैं। अगर बीच-बीच में उनका परामर्श लिया जाएगा, तो इसके लिए भी उन्हें रकम दी जाएगी। उमाशंकर ने जब यह कहा कि स्क्रिप्ट लिखने के बारे में वे सोचेंगे तो उत्तर में निर्माता बोले, "मैं बॉम्बे जाकर स्क्रिप्ट कैसे लिखी जाती है, इस पर

लिखी गई कुछ पुस्तकें आपको भेजूँगा। आप पुस्तक पढ़ लेने के बाद मुझे अपना निर्णय बताइएगा।

अब बिना किसी द्वंद्व के उमाशंकर ने कागजात पर दस्तख्त करके निर्माता के हाथ में दे दिया। निर्माता बोले, "यह सिर्फ कागजात हैं। हमारा संबंध तो अब मित्रता का हो गया है।"

निर्माता ने ठीक समय पर होटल छोड़ दिया। उमाशंकर ने उन्हें साथ लेकर भुवनेश्वर के मंदिर और गुफा का दर्शन कराया। पर इन सब चीजों में निर्माता की कोई खास रुचि है, ऐसा नहीं लगा। पर जब वे पुरी मंदिर के भीतर गए तो उनके हाव-भाव बिल्कुल बदल गए। जय-विजय द्वार के पास पालथी मारकर आँखें बंद किए काफी देर तक वे बैठे रहे। मंदिर से बाहर आते समय दान-पात्र में एक मोटी रकम का दान दिया और उनके साथ जो पुजारी थे, उनको भी मोटी रकम की बख्शीश दी। बाहर आकर गाड़ी में बैठते हुए बोले, "मंदिर में आकर बहुत शांति मिली। हमारा धारावाहिक अब श्री जगन्नाथ को समर्पित है। वे जैसा चाहेंगे, वैसा इसे आगे बढ़ाएँगे।"

पुरी से लौटते समय निर्माता ने काम के बारे में कोई बात नहीं की, लेकिन अपने बारे में बहुत-कुछ कहा। उमाशंकर अब निर्माता को अच्छी नजर से देखने लगे, खासकर मंदिर में उनके आचरण को देखकर। इस तरह से उनका सफर अच्छा रहा, उमाशंकर एयरपोर्ट पर निर्माता को छोड़कर अपने घर लौटे। पर घर लौटते हुए उमाशंकर के मन में थोड़ा सा द्वंद्व उपजा कि इतने कम समय की मुलाकात में उन्होंने यूँ अपना उपन्यास समर्पित कर दिया। पर निर्माता जो पचास हजार की गड्डी दिया था, जिसकी उन्होंने रसीद भी नहीं काटी थी, वह उनकी अलमारी में सुरक्षित था और बंबई से दूसरे निर्माता ने उन्हें फिर फोन नहीं किया था। तब उमाशंकर को लगा कि उन्होंने जो किया, ठीक किया।

कुछ दिन के बाद निर्माता ने बहुत ही सुंदर पत्र भेजा, जिसमें लिखा था कि ओडिशा को देखकर वे जितना मुग्ध हुए, उतना ही आनंदित हुए उमाशंकर की मित्रता पाकर। जल्द ही वे फिर एक बार पुरी मंदिर दर्शन करने के लिए उत्सुक हैं। टी.वी. सीरियल पर कुछ पुस्तकें भेजते हुए आगे लिखा कि उन्होंने अपना प्रस्ताव दूरदर्शन को भेज दिया है, वहाँ से अनुमति मिल जाने के बाद उमाशंकर को इस बारे में सूचित करते हुए काम शुरू करेंगे।

कुछ दिन बाद पुस्तकों का एक पैकेट पहुँच गया। टीवी सीरियल कैसे बनाया जाए, उस पर कुछ पुस्तकें थीं और कुछ सफल धारावाहिक पर आधारित

पुस्तकें थीं। अपना बाकी काम छोड़कर उमाशंकर ने इन पुस्तकों को पढ़ना शुरू कर दिया। धारावाहिक लिखने की कलाकारी कहानी-उपन्यास लिखने की कलाकारी से एकदम अलग थी। दर्शकों को बाँधे रखने के लिए सीरियल के एपिसोड में काफी कलाकारी की जरूरत पड़ती है। आधे घंटे के एपिसोड में दर्शकों को बाँधे रखने के लिए कहानी में कई उतार-चढ़ाव, द्वंद्व, समाधान की लड़ी पिरोनी होती है। सफल धारावाहिक के बारे में जो आलेख लिखा गया था, उसमें इन्हीं सब निमयों को सलीके से साधा गया था। सारी पुस्तकें पढ़ लेने के बाद उमाशंकर को अहसास हुआ कि धारावाहिक की स्क्रिप्ट लिखना उनके वश के बाहर है। उन्होंने निर्माता को पत्र लिखकर जता दिया कि स्क्रिप्ट लिखने के लिए वे समय नहीं निकाल पाएँगे, इसलिए इस काम को किसी और को दे दिया जाए।

उनके पत्र के दो दिन बाद निर्माता से टेलीग्राम आया—"चिट्ठी के लिए धन्यवाद। आपके महान् उपन्यास के लिए मैं एक श्रेष्ठ पटकथा लेखक को लगाऊँगा। फिर भी आपके सहयोग की जरूरत रहेगी। आपका फैक्स नंबर और इ-मेल एड्रेस हो तो भेजिएगा।"

उमाशंकर के पास यह सारे आधुनिक संपर्क साधन थे नहीं। यहाँ तक कि उनके पास टाइपराइटर भी नहीं था। उन्होंने हाथ से पत्र लिखकर बता दिया कि स्क्रिप्ट लेखन में वे भरसक अपना योगदान देंगे।

इसके बाद की घटनाएँ तेजी से घटने लगीं। एक दिन रात दस बजे निर्माता ने उमाशंकर को फोन पर बधाई देते हुए बताया कि दूरदर्शन वाले उनके उपन्यास पर धारावाहिक बनवाने के लिए राजी हो गए हैं। उमाशंकर इस खबर को पाकर खुश हुए, क्योंकि इकरारनामे के तहत टेलीविजन से स्वीकृति पाने पर उन्हें कुछ और रुपए भी मिलेंगे। उसके बाद उन्हें हर हफ्ते जब एपिसोड टेलीकास्ट होगा, उससे भी कुछ रुपया मिलेगा।

आधी रात को डाकिया टेलीग्राम लेकर आया। 'कोई अशुभ खबर होगा', सोचकर डरते हुए उमाशंकर ने टेलीग्राम खोला। टेलीग्राम निर्माता ने भेजा था, जिसमें उन्होंने सूचित किया था कि यद्यपि टेलीविजन वालों ने उनके उपन्यास पर सीरियल बनाने की अनुमति दे दी है, पर 'उत्तरायण' नाम उन्हें स्वीकृत नहीं है, क्योंकि इस नाम से एक धारावाहिक पहले ही दिखाया जा चुका है। निर्माता ने उमाशंकर से अनुरोध किया था कि एक नया नाम वे तय कर दें। फिर आखिरी में पूछा था, "दक्षिणायन नाम कैसा रहेगा ?"

बहुत सोच-समझकर उमाशंकर ने अपने उपन्यास का नाम 'उत्तरायण' रखा था। उत्तरायण का अर्थ सिर्फ दिसंबर 22 तारीख से, जून 21 तारीख यानी माघ से आषाढ़ तक सूर्य का उत्तर दिशा की ओर जाना ही नहीं होता है, बल्कि इससे भी अलग कई और अर्थ थे इसमें। उपन्यास नायक रजनीकांत की कहानी थी, जिसका व्यक्तिगत जीवन भारत के स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गया था। बीस साल की उम्र के कॉलेज में पढ़ रहे इस युवक के भारत के स्वतंत्र होने के पंद्रह साल तक की कहानी थी इसमें। इस यात्रा का उत्तरण सिर्फ एक दिशा की ओर नहीं था, बल्कि उसके जीवन के प्रेम, आवेग, साधना, संग्राम, का उत्तरण भी था, जोकि श्रेष्ठ था और उन्नत भी।

इतने सालों के बाद एक नया नाम तय करने में असमंजस में पड़ गए उमाशंकर। कोई भी उपयुक्त नाम उन्हें सूझा नहीं। टेलीग्राम मिलने के एक दिन बाद निर्माता के बंबई ऑफिस से टेलीफोन आया कि जल्द ही नया नाम भेजा जाए, नहीं तो वे 'दक्षिणायन' नाम टेलीविजन को भेज देंगे। इस तरह की खींचातानी से तंग आकर उमाशंकर ने 'दक्षिणायन' नाम पर सहमति दे दी।

इसके बाद धारावाहिक का काम तेजी से आगे बढ़ा। निर्माता बार-बार उमाशंकर को फोन करते रहे। उन्होंने तय किया था कि भुवनेश्वर में वे एक ऑफिस खोलेंगे और वहाँ उमाशंकर की निगरानी में स्क्रिप्ट पर काम किया जाएगा। इस तरह का एक ऑफिस खोलने में उनका एक और उद्देश्य यह भी था कि बीच-बीच में वे भुवनेश्वर आकर पुरी-जगन्नाथ का दर्शन कर पाएँगे। यद्यपि धारावाहिक हिंदी में बन रहा था। फिर भी चूँकि उपन्यास ओडिशा के कथानक पर आधारित था, इसलिए उसका काफी हिस्सा वे ओडिशा में ही शूट करवाना चाहते थे। उमाशंकर को इस बात की संतुष्टि हुई कि उनके उपन्यास का नाम बदल जाने के बावजूद वे अपने उपन्यास के फिल्म रूपांतरण की देखरेख कर पाएँगे।

बहुत जल्द निर्माता के एक आदमी ने भुवनेश्वर पहुँचकर एक मकान किराए पर ले लिया और टेबल-कुरसी, कंप्यूटर, टेलीफोन लगाकर ऑफिस का रूप दे दिया। उसी समय उमाशंकर को निर्माता से एक पत्र मिला। उसमें उन्होंने लिखा था कि, 'जिन मेगा स्टार्स को लेकर मैं बहुत दिनों से एक फिल्म बनाने की योजना बना रहा था, सबकुछ ठीक हो जाने के कारण पहले उसे बनाना चाहता हूँ। इस काम में मेरा सारा समय लग जाएगा; इसलिए धारावाहिक का काम मैं अपने बेटे को सौंप रहा हूँ। वह बहुत जल्द आपसे मुलाकात करेगा। यह उसका पहला काम है, इसलिए मेरा अनुरोध है कि आप हरसंभव उसकी सहायता करेंगे और

उपदेश देंगे, पर आपके साथ मेरी मित्रता पूर्ववत् रहेगी और चूँकि अब जगन्नाथ प्रभु मेरे भाग्यविधाता हैं, तो मुझे ओडिशा तो आना ही होगा। मुझे लग रहा है कि जगन्नाथजी की दया से मेरा धारावाहिक और फिल्म बिना किसी बाधा के पूरे हो जाएँगे।'

पत्र मिलने के कुछ दिन बाद निर्माता का पुत्र उमाशंकर के घर पिता का एक पत्र और स्कॉच की बोतल उपहार में लेकर पहुँच गया। अपना परिचय देते हुए बोला, "मेरा नाम अरूप कुमार है; पर मुझे सभी ए.के. कहकर बुलाते हैं। आप भी मुझे इसी नाम से बुला सकते हैं।" अरूप एक सुंदर युवक था। एक साल पहले हार्वर्ड से पढ़कर लौटा था। उसका व्यवहार बहुत शालीन था। पर जाने क्यों, उमाशंकर अरूप को उसके पिता से जोड़कर देख नहीं पा रहे थे और उससे उस आत्मीयता का अनुभव नहीं कर पा रहे थे। पहले दिन ही तय हुआ कि दोपहर को नए ऑफिस में बैठकर वे स्क्रिप्ट पर चर्चा करेंगे।

उमाशंकर इससे पहले उस ऑफिस में आए थे। पर अब उसे और भी सजा दिया गया था। ए.के. ने उनका बाकी लोगों से परिचय करवा दिया। हर दिन की स्क्रिप्ट को टाइप करके कंप्यूटर से प्रिंट आउट निकालने के लिए और ऑफिस चलाने के लिए आदमी नियुक्त किए जा चुके थे। वहाँ ए.के. के पास बैठनेवाली फिल्मस्टार सी दिखती एक सेक्रेटरी थी, जिसका नाम रोजी था। दाढ़ी रखे हुए, बेतरतीब कपड़े पहने एक युवक भी मौजूद था, वह था स्क्रिप्ट राइटर 'उद्भ्रांत'। ए.के. बोला, "उद्भ्रांत का चेहरा देखकर उसे कमतर मत समझिएगा। यह बॉम्बे का सबसे अच्छा स्क्रिप्ट राइटर है। पिछले साल जो दो फिल्में हिट हुई थीं, उनकी स्क्रिप्ट इसी ने लिखी थी, यद्यपि स्क्रिप्ट में नाम किसी और का लिखा गया है। यह आपसे परामर्श लेकर 'दक्षिणायन' की स्क्रिप्ट लिखेगा। मैं अगर इसे किडनैप करके अपने साथ नहीं ले आता तो दस और निर्माता इसके पीछे पड़ जाते।"

ए.के. ने उमाशंकर का उपन्यास पढ़ा नहीं था, पर उसका एक संक्षिप्त सिनोप्सिस पढ़ा था। इसलिए कहानी के बारे में उसे जानकारी थी। वह उमाशंकर से बोला, "आपका उपन्यास एक अत्यंत शक्तिशाली कहानी पर आधारित है। मैं इसे लेकर एक अव्वल दर्जे का सीरियल बनाऊँगा।" उमाशंकर उसकी बात सुनकर खुश हुए, पर उद्भ्रांत को देखकर ए.के. की बात पर उन्हें उतना विश्वास नहीं हुआ। ए.के. शायद उनकी भावना को समझ गया, बोला, "उद्भ्रांत से आप पंद्रह मिनट बात कर लेंगे तो जान जाएँगे कि वह कैसी विस्फोटक चीज है! हमारा धारावाहिक हिट होगा ही होगा।"

इसके बाद धारावाहिक और उसके चरित्रों के नाम की बात पर चर्चा शुरू हुई। ए.के. बोला, "'दक्षिणायन' नाम कुछ ज्यादा भारी-भरकम हो जा रहा है। मैंने मनिष्ट इडलिआमस की डिक्शनरी को देखा था, मुझे लगता है कि 'अटान' नाम भी ठीक होगा। पर मुख्य चरित्र का नाम तो बदलना ही होगा। नायक का नाम 'रजनीकांत' है, तो दर्शकों का ध्यान पहले दक्षिण भारत के फिल्म स्टार की तरफ जाएगा।" उमाशंकर बोले, "पर पाठक तो इसी नाम से नायक को पहचानते हैं।" ए.के. बोला, "पुस्तक के पाठक अलग हैं और टेलीविजन के दर्शक अलग। धारावाहिक को ज्यादा लोग देखेंगे, जबकि पुस्तक पढ़नेवाले पाठक तो गिनती के होंगे। इसलिए हमें यह ध्यान देना होगा कि दर्शक किस नाम को सहजता से ग्रहण करेंगे। यहाँ आने से पहले मैंने बॉम्बे की एक ओपिनियन पोल कंपनी को कुछ नाम भेज दिए थे। लोगों का मत लेकर वे हमें बताएँगे कि नाम कैसा हो, जिसे दर्शक पसंद और स्वीकार करें।" इतना कहकर ए.के. उठकर खड़ा होते हुए बोला, "रोजी और मैं आज पुरी जा रहे हैं। उद्‍भ्रांत आपके पास बैठकर अपनी परिकल्पना के बारे में जानकारी देगा।"

ए.के. के चले जाने के बाद उद्‍भ्रांत, उमाशंकर के पास वाली कुरसी पर बैठते हुए बोला, "एक महान् उपन्यास लिखा है आपने। क्या यह उपन्यास अंग्रेजी में अनूदित हो चुका है ?" उमाशंकर के इनकार करने पर उद्‍भ्रांत बोला, "मेरी इच्छा इसे अनुवाद करने की है। आप किसी और को अनुमति मत दीजिएगा। इसके पहले पृष्ठ का अंग्रेजी में मैं अनुवाद कर चुका हूँ, आपको दिखाऊँगा।" उमाशंकर बोले, "ठीक है। पर इस बारे में हम बाद में बात करेंगे।"

उद्‍भ्रांत अपनी झोली में से कागजों का एक पुलिंदा निकालकर टेबल के ऊपर रखते हुए बोला, "आपके उपन्यास पर मैं बहुत काम कर चुका हूँ। अब आपका उपन्यास एक अकेला उपन्यास न होकर पचास कथानक का एक संग्रह बन गया है। सामने रखे हुए कागजातों को देखकर उमाशंकर के मन में उत्सुकता हुई यह जानने के लिए कि उनके उपन्यास को विभाजित कैसे किया गया है। पर उद्‍भ्रांत सारे कागजातों को उठाकर झोले में रखते हुए बोला, "शाम को आराम से बैठकर आपके साथ चर्चा करूँगा।"

उमाशंकर ने उसे गहरी नजरों से देखा, ठीक अपने नाम की तरह ही नजर आता था वह। पर अपने मन को सांत्वना देते हुए बोले, "निर्माता पक्के व्यवसायी हैं, इसलिए आदमी चुनने में गलती तो नहीं ही करेंगे।"

उद्‍भ्रांत बोला, "मैंने यहाँ आने से पहले ही साफ कर दिया था कि मैं होटल

में नहीं ठहरूँगा, एक अलग कमरा लेकर रहूँगा। मेरे लिए एक कमरा ही काफी है, पर पास में चाय की दुकान और ढाबा का होना जरूरी है। मैं सुबह ही जाकर कमरा देख आया था। जैसा मैं चाहता था, वैसा ही मिला। संयोग से पास में एक शराब की दुकान भी है। क्या आप आज शाम मेरे साथ बिताएँगे ?"

उमाशंकर यह जानने के लिए उतावले हो रहे थे कि उद्भ्रांत उनके उपन्यास को लेकर क्या कर रहा है ? इसलिए तुरंत उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया और बोले, "चलो।"

गाड़ी से उतरकर ताला खोलकर उद्भ्रांत उमाशंकर को जिस मकान में ले गया, उसे एक कमरा कहना ही उपयुक्त होगा। उस कमरे में एक खाट, टेबल और दो कुरसियाँ थीं। एक कोने में उद्भ्रांत का सूटकेस खुला हुआ रखा था। टेबल पर पानी का जग, दो गिलास के अलावा और कुछ नहीं था। उमाशंकर को बैठने के लिए कहते हुए उद्भ्रांत बोला, "मैं एक मिनट में आता हूँ।"

उस खाली कमरे में बैठकर उमाशंकर अपने बारे में सोचने लगे। फिल्म जगत् से अब जो वे जुड़ने जा रहे हैं, वह एक नया अनुभव है। निर्माता, ए.के., रोजी, उद्भ्रांत सभी उनकी पृथ्वी के बाहर के लोग थे। पर अब वे उन्हीं लोगों की परिधि में हैं। आज तक उनके साहित्य की सरहद थी—उनका पढ़ने का टेबल, हाथ से लिखी पांडुलिपि, छपी हुई नई पुस्तक के पन्नों की खुशबू और टूटी एक कुरसी। उसी कमरे में सुधी पाठक और समालोचकों की जमती महफिलें। पर अब उन्होंने जिस ग्रह पर पाँव रखा है, वह है फाइव स्टार होटल का कमरा, स्कॉच, व्हिस्की की बोतल, कंप्यूटर, इ-मेल, हर सेकंड में चौबीस चित्र और सुंदर लोग। उमाशंकर को लगा कि मानो वे थे इस असामान्य भावलोक के एक अनिमंत्रित आगंतुक!

ठीक उसी समय हाथों में काफी सामान लेकर उद्भ्रांत कमरे में घुसा। उसे देखकर उमाशंकर को लगा कि अगर वे इस दूसरी दुनिया के एक विजातीय अनुप्रवेशकारी हैं तो उद्भ्रांत जरूर उस इलाके का एक दुर्दम्य आतंकवादी है। उसकी उपस्थिति में अपने को बहुत ही सुरक्षित और निरापद महसूस किया उमाशंकर ने।

सारे सामानों को निकालकर टेबल पर रखा उद्भ्रांत ने। खाने के सामानों को दो कागज के प्लेट में रखकर रम की बोतल खोलकर गिलासों में डाला। उमाशंकर बोले, "ए.के., मेरे लिए जो उम्दा व्हिस्की लाए थे, उसका सदुपयोग किया जा सकता था।"

उद्भ्रांत बोला, "मैंने कई तरह की शराब पीने के बाद रम को चुन लिया है। अगर पीने का लक्ष्य खुश होना है तो फिर उसके लिए ज्यादा खर्च करने की

जरूरत क्या है ?" रम में पानी डालकर उमाशंकर की तरफ एक गिलास बढ़ा दिया उसने। दूसरे गिलास को होंठों से लगाकर चियर्स करते हुए बोला, "'उत्तरायण' की सफलता के लिए।"

गिलास को होंठों से छुआते हुए उमाशंकर बोले, "उत्तरायण नहीं, दक्षिणायन। और अगर ए.के. चाहेंगे तो फिर सिर्फ 'अयन'।

उद्भ्रांत बोला, "नाम में क्या है ? जब तक उपन्यास के मूल कथानक की आत्मा को बदला नहीं गया है तो फिर नाम में थोड़ा हेर-फेर कर दिए तो क्या फर्क पड़ता है, चाहे एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते हुए या फिर साहित्य से सिनेमा में रूपांतरित करते हुए! मान लीजिए, आपके उपन्यास को जिस भाषा में अनूदित किया जा रहा हो और उस भाषा में उसी नाम से एक प्रसिद्ध उपन्यास हो और कोई प्रकाशक उसी एक नाम से पुस्तक प्रकाशित करना न चाह रहा हो तो उस समय आप क्या करते ?"

उद्भ्रांत का गिलास खाली हो गया था, उसने अपने गिलास को भरते हुए उमाशंकर की तरफ देखा, तब तक उमाशंकर ने सिर्फ दो घूँट ही पिया था। उद्भ्रांत अपने गिलास से घूँट भरता हुआ बोला, "आप मेरे जैसे एक व्यक्ति को देखकर शायद अचरज में पड़े हुए हैं, पर बॉम्बे में सबकुछ चलता है। जब तक मैं सफल स्क्रिप्ट लिखता रहूँगा, बॉलीवुड में मेरी इज्जत रहेगी। मेरे पागलपन को लोग मान लेंगे। दो हिट के बाद सभी मेरे पीछे दौड़ेंगे। पर एक फ्लॉप हो जाए तो कोई मेरा मुँह भी देखना नहीं चाहेगा। यही है वहाँ का सरल गणित।"

उद्भ्रांत अपने लिए तीसरा पैग बनाते हुए बोला, "आपको मेरा नाम भी अद्भुत लग रहा होगा। पर मुझे इस नाम को अपनाना पड़ा, नहीं तो विजय श्रीवास्तव जैसा नाम लेकर आदमी क्या कर सकता है भला ? वैसे सफल हो जाने के बाद कोई भी नाम चलेगा, पर उससे पहले चाहिए एक अच्छा नाम और एक अच्छा पता। वैसे उद्भ्रांत भी मेरा ही नाम है, कॉलेज में पढ़ते समय मैं इसी नाम से कविता लिखता था।"

उमाशंकर मन में सोचने लगे, 'आदमी कह तो सही रहा है।' उन्होंने सोचा, 'अब उससे स्क्रिप्ट के बारे में पूछेंगे।' पर इससे पहले कि वे कुछ पूछ पाते, उनकी मन की बात जैसे उद्भ्रांत को समझ आ गई शायद, उसने अपने झोले में से कागजात निकालते हुए कहा, "मैं आपको पहले दो एपिसोड की स्क्रिप्ट पढ़कर सुनाऊँगा।" अपनी बात खत्म करते-करते उद्भ्रांत कुछ गंभीर हो गया और स्क्रिप्ट पढ़ना शुरू कर दिया। डायलॉग्स के साथ उस संपूर्ण आलेख को उद्भ्रांत मग्न होकर तन्मयता

से सुनाने लगा। उसकी पढ़ने की शैली इतनी नाटकीय और प्रभावशाली थी कि उमाशंकर उसमें डूब से गए। अतीत में लिखा हुआ यह उपन्यास उनके मन में रोमांच ले आया।

स्क्रिप्ट पूरा पढ़ लेने के बाद दोनों कुछ देर चुप रहे। उद्भ्रांत ने फिर से दोनों के गिलास भर दिए। उमाशंकर अब अपने वर्तमान में लौट आए। अपने आवेग को छुपाते हुए बोले, "पर मेरे उपन्यास की कहानी इस तरह से आगे नहीं बढ़ी थी। रजनीकांत को अपने पिता से दिक्कत थीं, पर तुमने जिस तरह से वर्णन किया है, वैसा नहीं घटा था मेरे उपन्यास में!"

उद्भ्रांत ने उलटा उनसे प्रश्न किया, "रजनीकांत के सृजनकर्ता के रूप में क्या आप नहीं सोचते हैं कि उसके जीवन में ऐसा भी हो सकता था? या शायद हुआ हो, पर आपने उस विषय पर न लिखकर बाकी विषयों पर लिखा?"

उमाशंकर ने मान लिया कि उद्भ्रांत ठीक कह रहा था। उन्होंने रजनीकांत के चरित्र की जिस तरह से कल्पना की थी, उद्भ्रांत के आलेख में ठीक उसी चरित्र का वर्णन था; बल्कि उसके वर्णन में चरित्र और भी स्पष्ट और पैना हो गया था। उद्भ्रांत बोला, "उपन्यास आपके बच्चा जैसा है, आपका आत्मज। मैं इस बारे में स्पष्ट हूँ कि मैं उसे पालूँगा भर, उसे बदलने का कोई अधिकार मेरा नहीं है। इसलिए आपके उपन्यास के चरित्र और कहानी की मूल आत्मा में मैं कोई परिवर्तन नहीं करूँगा।"

उद्भ्रांत ने और भी समझाया कि उसने क्यों एक अलग परिवेश तैयार किया। उसकी बात उन पुस्तकों में लिखी बातें जैसी थीं, जिसमें धारावाहिक लिखने का तरीका समझाया गया था। पिता के साथ रजनीकांत का वार्त्तालाप नाटकीयता की सृष्टि कर रहा था और ट्रेन में बैठकर गाँव छोड़ना एक महत्त्वहीन उपसंहार था। इसी सूत्र में आगे उसने बताया कि ट्रेन इस धारावाहिक में रूपक की तरह रहेगी, उत्तरायण या अग्रगति की प्रतीक!

उमाशंकर का मन इस बात को मान नहीं रहा था, फिर भी उसकी नाटकीयता के लिए वे सहमत हो गए। यह फिल्म और धारावाहिक का नीति नियम था, उनकी मूल साहित्यक कृति फिर चाहे कैसी भी क्यों न हो! उनके मन में आग्रह हुआ यह जानने के लिए कि उद्भ्रांत के निगरानी में उनकी कहानी कैसे आगे बढ़ेगी? पर रात गहरी हो रही थी और ज्यादा बैठने का उनमें धैर्य नहीं था। उन्होंने पूरी स्क्रिप्ट को न सुनकर उसके विषय को जानने के लिए पूछा, "दूसरे उपख्यान में क्या होगा?"

उद्भ्रांत बोला, "इसमें शहर के कॉलेज में रजनीकांत और प्रिंसिपल का आमना-सामना होगा?"

इस तरह की किसी घटना का वर्णन उमाशंकर के उपन्यास में कहीं नहीं था, इसलिए उद्‌भ्रांत की इस बात से उनका मन खट्टा हो गया। उनके इस मनोभाव को उद्‌भ्रांत ने जैसे भाँप लिया, बोला, "आप निश्चिंत रहिए, आपका उपन्यास मेरे हाथों में सुरक्षित रहेगा। मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूँगा, जिससे आपके उपन्यास के चरित्र या कथानक की मौलिकता में किसी तरह का कोई बदलाव आएगा। मेरी जिम्मेदारी बस इतनी है कि आपके मूल उपन्यास का धारावाहिक बने। मैं एक ऐसी स्क्रिप्ट लिखूँगा, जिसके लिए आप भी गर्व महसूस करेंगे।"

खिन्न मन से उस रात उमाशंकर घर लौटे और निर्णय लिया कि उनके उपन्यास से अब उनका कोई नाता नहीं रहेगा। उन्होंने अपनी पुस्तक को बेच दिया है, फिर उसका वे जो करना चाहते हैं, करें। अब वे हर दिन उपन्यास के काट-छाँट में शामिल नहीं होंगे। पर इकरारनामा के तहत स्क्रिप्ट के उपदेष्टा के रूप में उन्हें रुपया मिलना तय हुआ था। इसलिए उन्हें उद्‌भ्रांत के साथ संपर्क रखना होगा। ठीक है, वे उसे पूरी स्वतंत्रता दे देंगे, वैसी चाहे वह स्क्रिप्ट लिखे। उनमें और इतना धैर्य नहीं है कि वे उद्‌भ्रांत के साथ तर्क-वितर्क करें, क्योंकि सफल पटकथा लेखक के रूप में उसे यह कहने का अधिकार है कि मैं जानता हूँ, टेलीविजन के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा!

उसके दूसरे दिन जब वह निर्माता के ऑफिस में पहुँचे, तो वहाँ उद्‌भ्रांत पहले से ही मौजूद था। रात भर जगकर वह पहले दो एपिसोड की पटकथा को संशोधित करके ले आया था और अब उसे कंप्यूटर में टाइप करवाकर फिर प्रिंटआउट निकालकर बॉम्बे ऑफिस भिजवाने की कोशिश में जुटा था, ताकि वहाँ शूटिंग की तैयारी शुरू हो जाए। उमाशंकर ने देखा कि सारे काम युद्धस्तर पर हो रहे थे। वाकई कामकाजी थे वे। शायद उनके उपन्यास में कई फेरबदल किए जाने के बावजूद एक अच्छा कलात्मक सीरियल बन सकता है।

उसी दिन शाम को कंपोज की गई स्क्रिप्ट को पढ़ा उन्होंने। उद्‌भ्रांत ने उन्हें कल जो पढ़कर सुनाया था, उसमें भी काफी सारे और परिवर्तन किए गए थे। अगर मूल कहानी उन्होंने लिखी नहीं होती तो इसे वे एक उम्दा कहानी मानते। पर इसमें जिन घटनाओं का वर्णन था, उसमें कई हिस्सा ऐसे थे, जो उनके उपन्यास में नहीं थे, कुछ ज्यादा अतिरंजित थे। उद्‌भ्रांत ने उन्हें समझाया कि साहित्यिक कृति को फिल्म में ढालने के लिए ऐसा करना अनिवार्य है। यहाँ तक कि क्लासिक उपन्यासों में भी फिल्म निर्देशक को इस तरह की स्वतंत्रता मिलती है। उसने उन्हें रवींद्रनाथ टैगोर और सत्यजित राय की कहानी और

फिल्म का उदाहरण दिया। उमाशंकर मान गए कि वह सही कह रहा है, पर उनका मन टूट गया।

बहुत जल्द ए.के. भी वापस आ गया। उसे और खासकर रोजी को पुरी अच्छा लगा था। उसके पिता के लिए पुरी का अर्थ था, जगन्नाथ मंदिर, पर इन दोनों के लिए पुरी था समुद्र का किनारा। ए.के. ने ऑफिस पहुँचकर पहली जो मीटिंग की, उसमें उमाशंकर भी शामिल थे। ए.के. ने वहाँ सूचना दी कि बॉम्बे की जनमत-संग्रह संस्था ने 'दक्षिणायन' नाम को पसंद किया है। पर मुख्य चरित्र का नाम उन्होंने मयंक रखने का प्रस्ताव दिया है। उमाशंकर को धक्का सा लगा। उपन्यास को लिखते समय उन्होंने दो साल तक रजनीकांत के साथ समय बिताया है, उसके साथ जेल गए, उसके सुख-दुःख में हँसे-रोए। अचानक यह किस मयंक ने आकर उसकी जगह ले ली ?

पर उमाशंकर ने अपनी मन की बात सीधे न कहते हुए, बस इतना कहा कि ऐसे नाम का ओडिशा में चलन में नहीं है। ए.के. ने कहा, "मैं क्षमाप्रार्थी हूँ कि आपसे कहना हम भूल गए कि हम इसे ओडिशा की पृष्ठभूमि पर नहीं फिल्माएँगे। हम उसे सार्वजनिक दिखाना चाहते हैं। यह भारत के किसी भी इलाके का हो सकता है।"

उमाशंकर बोले, "किसी चरित्र को उसकी निर्दिष्ट सीमित पृष्ठभूमि में भी सार्वजनिक दिखाया जा सकता है।"

ए.के. बोला, "हमें भारतीय दर्शकों की बात सोचनी होगी। हमारा लक्ष्य है कि हमारे चरित्र सर्वभारतीय स्तर पर स्वीकृत हों। आपने हिंदी फिल्मों में देखा होगा कि नायक का नाम ज्यादातर 'राज' है या फिर 'विजय'। वह भारत के किसी भी प्रांत का हो सकता है। और फिर हमारा धारावाहिक हिंदी में बन रहा है, ओडिशा में नहीं, इसलिए उसका ओडिशा के साथ कोई संबंध नहीं है।"

ए.के. ने अपने हाथ में पकड़े पन्ने को उलटकर देखा और बोला, "जनमत-संग्रहकारियों की रिपोर्ट के अनुसार 73 प्रतिशत लोगों को मयंक नाम पसंद है। इसके बाद एक छोटी सी टिप्पणी में उन्होंने लिखा है कि—यह एक आनंददायक संयोग है कि रजनीकांत और मयंक दोनों का अर्थ एक है।" उमाशंकर कहने जा रहे थे कि लेखक शब्द का अर्थ देखकर नाम नहीं लिखता है, पर चुप रहे। ए.के. ने आगे बताया कि सारा काम आशानुरूप चल रहा है और दो एपिसोड बनवाकर भेजने के बाद दूरदर्शन की संपूर्ण सहमति मिल जाए तो काम और भी तेजी से चलेगा। उसके बाद मीटिंग को खत्म करके ए.के. पुरी के समुद्र किनारे समय बिताने के लिए रवाना हो गया।

उमाशंकर ने सोच रखा था कि स्क्रिप्ट लेखन में वे और माथापच्ची नहीं करेंगे, पर उद्भ्रांत बीच-बीच में आकर उन्हें तंग करता रहता। काम करने की अद्‌भुत क्षमता थी उसमें। आधी रात तक पीने के बाद बिना सोए सुबह तक वह लिखने में व्यस्त रहता। फिर ऑफिस खुलने पर कंपोज कराने देने के लिए पहुँच जाता। शाम को कंप्यूटर से प्रिंटआउट निकालकर उमाशंकर के पास विचार-विमर्श के लिए पहुँच जाता। यद्यपि उद्भ्रांत का उनके उपन्यास की घटना, चरित्र को बदलने की थोड़ी सी भी स्वतंत्रता लेना उन्हें पसंद नहीं था, फिर भी वे खुश थे कि वह उपन्यास में पूरी तरह मगन था और उसके हस्तक्षेप के बावजूद चरित्र और घटनाएँ उमाशंकर की सोची हुई परिधि से बाहर नहीं गए थे। पहले-पहल तो उद्भ्रांत के साथ उमाशंकर स्क्रिप्ट पर आलोचना कर लेते थे, पर बाद के दिनों में वे बस बेमन से उसकी बात सुनते थे, न तो उसे कोई उपदेश देते थे, न ही उसकी लिखी स्क्रिप्ट पर अपना कोई मत व्यक्त करते थे।

उद्भ्रांत ने भी उनकी मति-गति देखकर रोज उनके पास आना छोड़ दिया। बस कभी-कभार जाकर उनसे मिल आता था। उमाशंकर भी बीच-बीच में ऑफिस में अपना चेहरा दिखाकर आ जाते थे, ताकि स्क्रिप्ट के परामर्शदाता के रूप में उनकी माँग पर कोई उँगली न उठाए। निर्माता भी ठीक समय पर उन्हें उनका पारिश्रमिक दे देते थे। उमाशंकर ने यह मान लिया कि अब उपन्यास उनका होकर भी उनका नहीं रह गया है। अब जब उन्होंने उसे बेच ही दिया है तो फिर उस पर जो भी अत्याचार-अनाचार हो, उस पर उन्हें अब कुछ कहना नहीं था।

कुछ दिन के भीतर ही उद्भ्रांत ने पचास एपिसोड लिख दिए और सारा मैटर कंपोज करने के लिए दे दिया।

एक दिन सुबह-सुबह वह एक बड़ी सी सजिल्द पुस्तक लेकर उनके घर पहुँचा और बोला, "यह आपके उपन्यास के पास हुए एपिसोड का संपूर्ण रूप है। आप इसे एक बार पढ़ लीजिए। अगर इस पर आपको कुछ कहना हो तो मुझे बताइए। कंप्यूटर में कंपोज है मैटर, तो संशोधन आराम से हो जाएगा।" उमाशंकर ने पुस्तक का आखिरी पन्ना पलटकर पढ़ा। उमाशंकर ने जैसा लिखा था, उद्भ्रांत ने ठीक उसी तरह से उसका उपसंहार किया था। यद्यपि उपन्यास में स्टेशन का कोई दृश्य नहीं था, स्क्रिप्ट के आखिर में 1947, अगस्त में रजनीकांत सबको छोड़कर ट्रेन में बैठकर चला जा रहा था। पर उसका आखिरी संलाप उसी तरह था, जैसे उपन्यास में था—'कल भारत स्वतंत्र होगा। मेरा काम खत्म हो गया है। अब मैं पीछे मुड़कर नहीं देखूँगा।'

आखिरी पन्ना पढ़ने के बाद उस पर कुछ भी टिप्पणी न करके उमाशंकर बोले, "जब यह निर्णय ले लिया गया है कि नायक का नाम मयंक रहेगा तो तुम अभी तक रजनीकांत क्यों लिख रहे हो?"

उद्भ्रांत बोला, "वे चाहे जो कहें, पर मेरे लिए तो नायक रजनीकांत ही है, इसलिए मैंने अपने आलेख में इसी नाम को रखा है। कंप्यूटर में एक कमांड देते ही उस पल से नायक का नाम रजनीकांत की जगह मयंक हो जाएगा। इसलिए यह मेरी समस्या नहीं है।"

उमाशंकर मान गए कि यह व्यक्ति सच में उनके उपन्यास का भक्त है। उसे चाय देकर सोचे कि कुछ देर उसके साथ बातचीत करेंगे। उद्भ्रांत का निर्माता के साथ छह महीने का इकरारनामा था, पर उसने दो महीने में ही अपना काम पूरा कर लिया था और वह चाहता था कि अगर निर्माता राजी हो जाएँ तो वह बॉम्बे लौटकर वहाँ दूसरा काम शुरू कर दे। पर इस तरह के काम में कई कारणों से स्क्रिप्ट में बार-बार फेरबदल करना पड़ता है, इसलिए उसे शायद यहीं रहना पड़ सकता है। अगर ऐसा हुआ तो उसकी इच्छा यह थी कि इस समय का वह उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद करने के लिए उपयोग करे।

इस बार जब ए.के. आया तो उसके साथ एक नई सेक्रेटरी थी, जिसका नाम था शबनम। वे पुरी जाने के लिए बेचैन थे, इसलिए उस दिन जल्दी में एक मीटिंग की गई। ए.के. ने बताया कि दो एपिसोड का जो पायलट प्रोजेक्ट उन लोगों ने बनाया था, टेलीविजन वालों ने उसे पसंद किया है; और आशा है कि वे इस धारावाहिक के पचास नहीं, बल्कि सौ एपिसोड के लिए मंजूरी दे देंगे। इसलिए फिर से एक बार सारी बातों पर ध्यान देना होगा और स्क्रिप्ट को फिर से एक बार लिखना होगा। उमाशंकर को यह बात असंगत लगी, फिर भी वे चुप रहे। पर उद्भ्रांत बोला, "उपन्यास को पचास एपिसोड से और ज्यादा नहीं बढ़ाया जा सकेगा।"

ए.के. बोला, "उसने भले ही उपन्यास नहीं पढ़ा, पर उसका सिनोप्सिस पढ़ा है। उपन्यास का कथानक स्वाधीनता के बाद खत्म हो रहा है। लोकमत के अनुसार, इसको एक राजनीतिक कहानी के तौर पर लिखे जाने से इसे और सफलता मिलेगी। उपन्यास में जो कुछ घटा है, वह गांधी युग की कहानी है। अगर हमें सौ एपिसोड मिले तो कहानी को नेहरू-इंदिरा युग तक खींचा जा सकता है।" यद्यपि इस बात से उमाशंकर को ठेस लगी, फिर भी उन्होंने अपना मुँह नहीं खोला। पर उद्भ्रांत ने अपनी असहमति जताते हुए कहा, "लेकिन मैं ऐसी किसी योजना के साथ नहीं

जुड़ना चाहता हूँ। मैंने जितना लिखा है, उतना काफी है। हाँ, इसमें अगर आप कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं तो उसके लिए मैं तैयार हूँ, पर आपके सौ एपिसोड के प्रस्ताव पर मैं बिल्कुल भी सहमत नहीं हूँ।"

ए.के. बोला, "ठीक है, दो दिन बाद पुरी से लौटकर इस बारे में बात करूँगा।"

उमाशंकर के साथ ऑफिस से लौटते हुए उद्‌भ्रांत बोला, "आप इस प्रस्ताव पर बिल्कुल भी राजी मत होइएगा। वे चाहते हैं कि आपका नाम और पुस्तक का उपयोग करके एक नकली चीज टेलीविजन को देंगे। आप इसी को कारण बनाकर उनके साथ हुए एग्रीमेंट को खारिज कर दीजिएगा। मैं आपको बॉम्बे से और भी अच्छा निर्माता लाकर दूँगा।"

उमाशंकर बोले, "यह संभव नहीं है।"

उस दिन रात को घर लौटकर उमाशंकर ने राजीनामा को ध्यान से पढ़ा। उसमें स्पष्ट लिखा था कि टेलीविजन में प्रसार करने के लिए निर्माता उनकी कहानी को संक्षिप्त, मार्जिन, परिवर्तित, परिवर्धित कर सकते हैं, उसमें से किसी चरित्र को हटा सकते हैं, नया कोई चरित्र डाल सकते हैं, कहानी का उपसंहार बदल सकते हैं आदि-आदि। इकरारनामा पर दस्तखत कर देने के बाद उपन्यास पर सारा अधिकार निर्माता का हो जाता है। उमाशंकर का मन कितना भी दु:खी हो, पर उन्होंने निर्णय लिया कि अब इस झमेले में वे नहीं पड़ेंगे। उन्हें पूरा पैसा मिल जाए बस, उसके बाद निर्माता उपन्यास का चाहे जो भी करे।

इसके दूसरे दिन सुबह उद्‌भ्रांत फिर से उमाशंकर के पास पहुँच गया और वही बात रखी। उसने पूछा, "क्या तय किया आपने?" उमाशंकर ने उसे एग्रीमेंट की शर्त की बात न बताकर बोले, "मैं तो बस एक लेखक हूँ। सिनेमा, टेलीविजन की कला मेरा माध्यम में नहीं है। उपन्यास को लिखकर प्रकाशित कर देने के बाद मेरा काम खत्म हो गया, उसके बाद उससे मेरा कोई संबंध नहीं रहता। फिर चाहे उसे कोई दूसरी भाषा में अनुवाद करे या न करे, उस पर कोई फिल्म बनाए, नाटक में परिवर्तित करे या फिर धारावाहिक बनाए, इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है।"

उनकी बात सुनकर उद्‌भ्रांत उत्तेजित हो गया। बोला, "क्या कह रहे हैं आप? आप सृष्टा हैं। आपकी रचना आपकी संतान की तरह है। क्या आप चाहते हैं कि आपकी संतान को कोई काटे-छाँटे, व्यभिचार करें? एक बच्चे को जन्म देने के बाद माँ-बाप का कर्तव्य खत्म नहीं हो जाता है। बच्चे को पाल-पोसकर उसकी रक्षा की जाती है। आप लेखक होकर कैसे इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं?"

उमाशंकर को उसकी बात अच्छी नहीं लगी। वे खिन्न होकर बोले, "वह

बच्चा क्या अब मेरा होकर रह गया है? उस पर तो तुमने पहले ही व्यभिचार कर दिया है, उपन्यास के कुछ चरित्रों को हटाकर, कुछ नए चरित्र जोड़कर। कुछ घटनाओं को घटाकर, कुछ नई घटनाओं को जोड़कर तुमने जिस नाजायज संतान को तैयार किया है, मैं उसकी कोई भी जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार नहीं हूँ। तुम्हारी स्क्रिप्ट मेरी संतान नहीं है, वह तुम्हारी है। तुम उसकी देखभाल करो।"

उद्‌भ्रांत अचानक शांत हो गया। बोला, "संतान चाहे हरामी हो, फिर भी उसका कोई पिता तो होता ही है। ठीक है, मैं आपकी बात मान लेता हूँ। चाहे आप अपने उपन्यास की रक्षा न करें, फिर भी मैं उसकी स्क्रिप्ट की रक्षा करूँगा, पर याद रखिए—लिख देने के बाद या पैदा कर देने के बाद लेखक या माता-पिता की जिम्मेदारी खत्म नहीं हो जाती है।"

पुरी से लौटकर ए.के. जब आकर फिर उन सभी से मिला, तब तक एक बड़ी घटना घट चुकी थी। उद्‌भ्रांत की लिखी गई स्क्रिप्ट पर बनी दो फिल्में एक हफ्ते से भी ज्यादा नहीं चलीं। इसलिए उद्‌भ्रांत से अपने लिए स्क्रिप्ट लिखवाने के उत्सुक बाकी जो निर्माता उससे बातचीत कर रहे थे, वे सब पीछे हट गए। ए.के. ने सभी के सामने उद्‌भ्रांत से कहा, "हम बॉम्बे से दो और स्क्रिप्ट लेखक को ला रहे हैं। चूँकि तुम्हारे साथ हमारा छह महीने का कॉण्ट्रेक्ट था, तुम उन नए दो स्क्रिप्ट राइटर की सहायता कर सकते हो। या फिर तुम कुछ भी काम न करके पूरा पैसा लेकर जा सकते हो।"

उद्‌भ्रांत बोला, "मेरी स्क्रिप्ट पर अगर कोई और काम करेगा, तो मैं उसके साथ काम करना चाहूँगा। मैं यहाँ छह महीने पूरा करके जाऊँगा।" ए.के. बोला, "जैसी तुम्हारी मर्जी।"

उसके बाद, उमाशंकर की तरफ देखकर बोला, "स्वाधीनता के बाद के दिनों पर भी एपिसोड बनाने के बारे में मैंने सोचा है। अगर आपको इस पर कोई आपत्ति हो तो, पहले पचास एपिसोड 'दक्षिणायन' के नाम से टेलीकास्ट होगा और बाकी एपिसोड 'दक्षिणायन-2' के नाम पर टेलीकास्ट होगा। अगर आप चाहें तो इस दूसरे हिस्से के एपिसोड से अपने को अलग कर सकते हैं। एग्रीमेंट में इस सब पर विस्तार से लिखा गया है। अगर आप 'दक्षिणायन-2' में उपदेष्टा का भार सँभालते हैं तो पहले से तय किया गया पारिश्रमिक आपको वैसे ही दिया जाएगा। आप इस बारे में क्या सोच रहे हैं?" उद्‌भ्रांत की तरफ न देखते हुए उमाशंकर बोले, "मैं दूसरे भाग में भी सहयोग करूँगा।"

ए.के. बोला, "मैं यहाँ अब बार-बार नहीं आ पाऊँगा, क्योंकि मुझे अब

प्रोडक्शन का काम भी देखना होगा। पर मैं जिन स्क्रिप्ट लेखकों को यहाँ भेजूँगा, वे दोनों अनुभवी हैं। मैं इस बारे में निश्चिंत हूँ कि हम एक बहुत ही सफल धारावाहिक तैयार कर पाएँगे। पापा शायद कभी पुरी आएँ। पर शबनम को पुरी पसंद नहीं है।"

ए.के. के चले जाने के बाद उमाशंकर ने अब इस बारे में कोई ध्यान नहीं दिया, वह भी तब, जबकि उनका पारिश्रमिक समय पर पहुँच जाता था। बॉम्बे से नए स्क्रिप्ट लेखकों ने आकर अपना काम शुरू कर दिया। उद्भ्रांत बीच-बीच में ऑफिस आता था और उनसे कहता था, वह उन लोगों से सहयोग तो नहीं करेगा, पर पूरी तरह से यहाँ आना भी नहीं छोड़ेगा, क्योंकि वह जानना चाहता है कि वे स्क्रिप्ट में क्या कुछ बदलाव कर रहे हैं? वे मनमाने तौर से स्क्रिप्ट में बदलाव करते जा रहे थे और उद्भ्रांत को इस बात का संशय था कि आखिर में यह एक ऐसा धारावाहिक बन जाएगा, जिसका मूल उपन्यास के साथ कोई संबंध नहीं होगा।

उमाशंकर स्क्रिप्ट के बारे में अपना कोई मत व्यक्त नहीं कर रहे थे, इसलिए एक दिन उद्भ्रांत बोला, "वे किस तरह का परिवर्तन कर रहे हैं, सुनेंगे? पहले एपिसोड में रजनीकांत या मयंक घर छोड़ने से पहले अपने पिता की बंदूक चोरी करके ले जा रहा है। कॉलेज में वह और उसके मित्र बम तैयार करना सीख रहे हैं। आपका अहिंसक नायक एक फीका चरित्र था, इसलिए उसे ऐसा दिखाया गया है। आगे सुनेंगे? पंचम एपिसोड में उसके मित्र हरीश की मौत हो जाती है।" उद्भ्रांत की हर बात से उमाशंकर को चाबुक का प्रहार सा लगता रहा। उन्होंने कहा, "मेरे उपन्यास में तो हरीश आखिर तक जिंदा है, उसकी मौत क्यों होगी?"

उद्भ्रांत बोला, "मुझसे क्यों पूछ रहे हैं? जाकर उन्हीं से पूछिए! क्या अब भी आप चुप रहेंगे?" उमाशंकर का मन पूरी तरह से टूट गया था, वे बोले, "हाँ।"

कुछ महीने बाद एक दिन देर रात को पूरी तरह नशे में धुत उद्भ्रांत उमाशंकर के घर पहुँचा। अपने झोले में से कागज का एक पुलिंदा निकालकर उनके सामने रखते हुए बोला, "यह देखिए, पूरी तरह परिवर्तित स्क्रिप्ट है यह। इसे पढ़कर अपना मत देने के लिए कहा है। पूरी स्क्रिप्ट कंपोज हो चुकी है। अगर मैं इसमें कुछ परिवर्तन करना चाहूँ तो वे इस पर विचार करेंगे और अगर उन्हें ठीक लगेगा तो संशोधन करेंगे, नहीं तो इसे बॉम्बे भेज दिया जाएगा एपिसोड बनाने के लिए। मेरी लिखी गई स्क्रिप्ट को रद्द करके इस नई स्क्रिप्ट पर एपिसोड बनाया जाएगा।"

उमाशंकर के सामने बैठकर उद्भ्रांत स्क्रिप्ट का पन्ना पलटते हुए बोला, "इसमें ट्रेन का दृश्य हटा दिया गया है। मयंक की एक स्त्री मित्र का चरित्र तैयार किया गया है, जो आपके उपन्यास में नहीं है। उनका कहना है कि एक शक्तिशाली

नारी चरित्र के बिना दर्शकों की सीरियल देखने में कोई उत्साह नहीं रहेगा। वह इस धारावाहिक का एक सशक्त चरित्र होगी और आखिरी दृश्य में क्या है, जानते हैं? मयंक और उसकी मित्र अगस्त महीना दिखा रहे एक कैलेंडर के नीचे बैठे हैं। मयंक कह रहा है, "स्वाधीनता हमें मिली, पर बहुत काम अभी करना बाकी है।"

उमाशंकर फिर भी चुप रहे। कागजों को समेटते हुए उद्भ्रांत बोला, "यह दृश्य दक्षिणायन-2 का विज्ञापन होगा। कैसा लग रहा है यह सब आपको?"

उमाशंकर मन-ही-मन उत्तेजित हो रहे थे, फिर भी कहा कुछ नहीं। उद्भ्रांत बोला, "आप चाहे कुछ कहें या न कहें, मैं इस स्क्रिप्ट पर सीरियल बनने नहीं दूँगा। ऑफिस से मैंने पता लगा लिया है कि मुझे जो स्क्रिप्ट दिया गया है, वही एकमात्र प्रिंटआउट है, जो निकाला गया है। बाकी पूरी पांडुलिपि कंप्यूटर में ही है। अगर मैं इस पांडुलिपि को जला दूँ और कंप्यूटर डिस्क को नष्ट कर दूँ तो फिर इस पर सीरियल नहीं बन पाएगा।" उद्भ्रांत अपनी बात खत्म करके उमाशंकर की तरफ देखने लगा, पर उमाशंकर चुप रहे, क्योंकि उद्भ्रांत इस समय होश में नहीं था।

उद्भ्रांत ने पूछा, "इस समय क्या कोई पेट्रोल पंप खुला होगा?" उसके इस प्रश्न को पूछने के पीछे छिपे उद्देश्य को समझ नहीं पाए उमाशंकर। पर नशे में धुत्त इस आदमी को वे घर से निकालना चाहते थे, इसलिए बोले, "बाजार के पास वाला पंप शायद खुला हो।" पांडुलिपि को झोले में डालकर उद्भ्रांत अपने को सँभालते हुए उठा और बोला, "आपके घर में खाली बोतल हो तो मुझे दीजिए। मैं सोच रहा हूँ कि ऑफिस होते हुए मैं अपने घर चला जाऊँ।"

□

अकेले-अकेले

पति और बच्चों को विदा करने के बाद दरवाजा बंद करके कमरे में आते ही जाने कैसे एक अजीब भावावेश से रंजना का मन भर गया। इतने बड़े घर में अभी वह अकेली थी। पति, बच्चे, नौकर-चाकर हमेशा भरा रहनेवाला घर अभी एकदम से खाली और सुनसान हो गया था। इससे पहले कभी वह ऐसे अकेली रही हो, उसे याद नहीं आ रहा था। बचपन से ही वह एक बड़े परिवार में रहती आई थी। संयुक्त परिवार था उनका; ताऊ-ताई, काका-काकी और भाई-बहनों का बड़ा परिवार। शादी के बाद पति के परिवार और अपने मायके से दूर नहीं रही कभी। कभी-कभार आशुतोष बाहर जाते तो अंततः बच्चे उसके पास होते। बच्चों के बड़े हो जाने पर घर में सुबह से शाम तक चहल-पहल लगी रहती थी। आज शाम को भी जब तक पति और बच्चे घर से निकले, तब तक काफी गहमागहमी थी। गाँव से पिताजी के बीमार होने के खबर पाकर आशुतोष ने जब गाँव जाने का निर्णय लिया तो पूजा की छुट्टी होने के चलते बच्चे भी उसके साथ जाने की जिद करने लगे। चूँकि रंजना के पास कॉलेज का कुछ काम था, जिसे समय रहते पूरा करना था, इसी के चलते उसका जाना संभव नहीं हो पाया। घर का नौकर दो दिन पहले छुट्टी लेकर अपने घर चला गया था। इस तरह के संयोग के चलते वह अकेली पड़ गई।

घर के सारे दरवाजे बंद करके रंजना अपने सोने के कमरे में गई। शाम का खाना-पीना हो गया था, इसलिए अब कोई काम नहीं था उसके पास। पलंग पर बैठकर चारों तरफ नजर दौड़ाते हुए जाने कैसा एक भय और आशंका उसके मन में उपजी, उसने कुछ उत्तेजना भी महसूस की। फिर बिस्तर पर लेटकर आँखें को बंद कर लिया रंजना ने। अभी नींद के आने की कोई संभावना नहीं थी। क्या करे फिर

वह इस समय? उसने याद करने की कोशिश की कि ऐसा कौन सा काम है, जिसे वह इस एकांत समय में ही कर पाएगी? नहीं, पूरी तरह व्यक्तिगत जैसा उसका कुछ भी नहीं था। जो कुछ भी सुख-दु:ख, अभाव, अनुभूति, उत्साह, उत्तेजना थी, सबकुछ परिवार के सदस्यों में बँटा हुआ था। पति, बच्चे, घर के अलावा उसकी अपनी व्यक्तिगत कोई सत्ता नहीं थी; वह थी पत्नी, माँ या फिर गृहस्वामिनी। उसकी नौकरी उसके जीवन का बहुत ही गौण हिस्सा थी।

ठस तरह की यह जिंदगी उस पर किसी ने लादी नहीं थी, बल्कि खुद उसने इसे चुन लिया था। बचपन से ही रंजना कभी उच्चाभिलाषी नहीं थी। पढ़ाई खत्म करने के बाद माता-पिता द्वारा तय किए गए वर को स्वीकार करके विवाह कर लिया। डॉक्टरी पास करके आशुतोष ने नई-नई सरकारी नौकरी शुरू की थी। कम पगारवाली नई नौकरी में घर के पूरे खर्चे सँभालने की जिम्मेदारी रंजना ने ले ली थी। और उसी में उसका सारा समय बीत जाता था। देहात के एक अस्पताल में आशुतोष के तबादले के बीच रंजना दो बच्चों की माँ बन चुकी थी। फिर आखिरी में आशुतोष का तबादला शहर के अस्पताल में हो गया। शहर आने के बाद उनकी आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ, क्योंकि शहर में आशुतोष को निजी तौर पर इलाज करने का मौका मिल गया। इस तरह से जब उसका कारोबार जमने लगा था, तभी उसके तबादले का आदेश आ गया। तब आशुतोष ने नौकरी से इस्तीफा देकर अपना खुद का क्लिनिक खोल लिया। इन सभी फैसलों में रंजना की अपनी कोई राय नहीं थी, क्योंकि घर और बच्चों को सँभालने के अलावा उसकी किसी और काम में कोई रुचि नहीं थी।

उस शहर में जब लड़कियों के लिए एक प्राइवेट कॉलेज खुला, तब आशुतोष ने ही उससे इसरार किया कि वह उस कॉलेज में लेक्चरर पद के लिए आवेदन कर दे। पहले तो रंजना बिल्कुल भी राजी नहीं हुई। उसका कहना था कि जो कुछ उसने पढ़ा था, अब उसे कुछ भी याद नहीं है, तो ऐसे में छात्रों को क्या पढ़ाएगी? आशुतोष उसके लिए पुस्तकें खरीदकर ले आया। पर कॉलेज में वह दिन भर रहेगी तो बच्चों की देखभाल कौन करेगा? इसके जवाब में उसने एक और नौकर रख दिया। उस कॉलेज के जो कर्ता-धर्ता थे, वे आशुतोष से अपना इलाज करवा रहे थे। एक दिन घर आकर उन्होंने रंजना को बहुत समझाया। अब रंजना कहीं उसे सच में नौकरी न करनी पड़े, यही सोचकर बीमार पड़ गई। दवाई, टॉनिक देकर आशुतोष ने उसे स्वस्थ किया। इतनी बातें हो जाने के बाद जाकर रंजना नौकरी के लिए राजी हुई।

नौकरी में जाने से कुछ दिन पहले रंजना ने पाया कि उसके पास कॉलेज पहनकर जाने के लिए अच्छी साड़ी नहीं है। इन कुछ सालों में वह अपनी तरफ से बिल्कुल भी लापरवाह हो गई थी। पहला बच्चा पैदा होने के बाद से शारीरिक संबंध के प्रति उसका कोई आग्रह नहीं रह गया था और आशुतोष के साथ शारीरिक संबंध को वह सिर्फ एक जरूरी कर्तव्य की तरह लेती थी। अपनी सुंदरता की देखभाल करना तो दूर, वह अपनी देह के प्रति भी सचेतन नहीं थी। बच्चों के काम में कभी जब वह ज्यादा व्यस्त हो जाती और उसे नहाने के लिए भी समय नहीं मिलता तो वह परेशान नहीं होती थी। चेहरा धोना, बाल बाँधना जैसे काम उसके लिए जरूरी नहीं थे। वह गाय और कुत्ते की देखभाल भी खुद करती थी और अस्वच्छता को स्वाभाविक मान चुकी थी। इन सबके चलते उसका पूरा घर भले अव्यवस्थित अस्त-व्यस्त न हो, पर वह खुद इस स्थिति का अनजाने ही शिकार थी। लेकिन अब कॉलेज जाने के लिए साड़ी-ब्लाउज तैयार करने के साथ रंजना को खुद को भी साफ-सुथरा करना पड़ा। यह सब करना उसे एक अनावश्यक बोझ सा लग रहा था। कभी उसके घर मित्र-परिजन आ जाते तो वह वैसे ही बिना सजे-सँवरे उनके सामने चली जाती। ऐसे में आशुतोष झेंप जाता था, पर रंजना को कभी ऐसा महसूस नहीं होता था। उसने एक बेढंगा, लापरवाह सहज जीवन अपना लिया था। चाहे दूसरे उसके बारे में जो भी सोचें, उसे फर्क नहीं पड़ता था। पर अब जब वह घर से बाहर कॉलेज जाने लगी, तो उसके लिए यह एक अलग पृथ्वी पर कदम रखने जैसा था। वहाँ सिर्फ उसे अपनी वेशभूषा का ही ध्यान रखना नहीं था, बल्कि अपने घर-संसार से बाहर दूसरे लोगों से भी मिलना-जुलना पड़ा। पहले-पहल इस नए परिवेश और अपरिचित लोगों से मिल-जुलकर चलना उसे बहुत मुश्किल लग रहा था। तब उसने इस समस्या का एक समाधान भी निकाल लिया। लोगों से जितना कम संपर्क रखा जा सकता है, उतना ही रखा। कॉलेज में अपनी क्लास लेने के अलावा अन्य किसी अनुष्ठान के साथ उसने कोई संबंध नहीं रखा। धीरे-धीरे उसने अपने पहनने-ओढ़ने में भी लापरवाही बरतनी शुरू कर दी और दूसरे इसे लेकर क्या सोच रहे हैं, इसे लेकर वह चिंतित नहीं हुई; क्योंकि कॉलेज उसके स्वाभाविक जीवन का एक व्यतिक्रम भर था। घर पहुँचकर वह कॉलेज के बारे में पूरी तरह से भूल जाती थी।

उसके बेजार और उदासीन व्यवहार के बावजूद उसकी सहकर्मी शिक्षिकाएँ रंजना को कभी अकेला नहीं रहने देतीं। क्लास के बीच में समय मिलने पर उसकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाकर उसके करीब आने की कोशिश करतीं। उसका पति

डॉक्टर था, इसलिए उसका फायदा उठाने के लिए वही सहकर्मी उसके घर भी पहुँच जातीं। वे उसे अपना मानकर अपनी गोपनीय बातें उससे करने में झिझकती नहीं थीं, जबकि रंजना उन्हें अपने बारे में नहीं बताती थी। बिना किसी कौतूहल के रंजना उनकी बातें सुनती, पर कभी भी उनसे कुछ पूछती नहीं थी। कारण, वे जो कुछ भी कहती थीं, उसमें रंजना की कोई रुचि नहीं थी। घर-परिवार, वेशभूषा, साज-सजावट के अलावा जो विषय उनकी बातचीत का केंद्रबिंदु था, वह था प्रेम और यौन जीवन से संबंधित बातें। शहर के सारे कलंक और व्यभिचार से जुड़ी कहानी की पोटली उनके पास थी और उस सबका सविस्तार वर्णन करते थे उनके पुरुष सहकर्मी। इस महिला कॉलेज की सारे लेक्चरर महिलाएँ थीं। पर महिला प्रिंसिपल के अवकाश लेने के बाद जो प्रिंसिपल नियुक्त हुए, वे पुरुष थे और उनके अलावा दो और लेक्चरर पुरुष थे। इन दो पुरुष लेक्चरर में से एक प्रौढ़ और सुस्त प्रकृति का था, इसलिए महिला लेक्चररों के रोचक कथानक का हीरो और उनके व्यंग्य का मुख्य पात्र था सौम्यदर्शन युवा लेक्चरर श्रीमंत। अपने कम संपर्क के बावजूद रंजना श्रीमंत को जितना जानती थी, उसे वह बहुत शांत, शिष्ट और भद्र व्यक्ति लगा था। इसलिए उसे लेकर कही गई खराब बातों पर वह विश्वास नहीं कर पाती थी। पर इस बारे में भी अपने सहकर्मियों से बिना कोई तर्क किए, वह उनकी बातें चुपचाप सुन लेती थी। बातों को बतंगड़ न बनाकर वह चुप रह जाती थी।

अभी बिस्तर पर लेटे-लेटे रंजना इन सहकर्मियों की बातों को याद करने लगी। उसकी तरह अगर उनमें से हरेक ऐसे ही अकेली पड़ जाती होंगी तो क्या करती होंगी वे? प्रवीणा क्या करती? एक बार उसने कहा था कि विवाह से पहले के अपने प्रेमी के प्रेम-पत्रों को सँभालकर रखा है उसने। अगर घर में उसे एकांत मिलता होगा, तो क्या वह उन पुराने पत्रों को खोलकर पढ़ने बैठ जाती होगी? क्या करती है निहारिका एकांत पाने पर? उसका कहना था कि श्रीमंत उसके पीछे पड़ा है, जबकि उसमें उसका कोई आग्रह नहीं है। पर बाकियों ने उसे निहारिका का दिवास्वप्न कहकर हँसी में उड़ा दिया था। निहारिका क्या इस एकांत समय में उससे भेंट करने का मौका तलाशती? ज्योति, सुषमा, अनुराधा इन सभी ने कभी अपने से कोई रोमांचकारी कहानी नहीं सुनाई थी। तो क्या वे सभी अपने उत्तेजनाहीन, नीरस अतीत का मंथन करके रातें बिता देती हैं?

इसी तरह से सोचते हुए रंजना ने तय कर लिया कि इस नि:संग रात में वह क्या करेगी! इस पूरे घर में उसका संपूर्ण अपना कहने के लिए ऐसा कुछ भी नहीं था, जिसे खोलकर निकालकर उससे अंतरंग होती। कोई ऐसी सहृदय सखी नहीं

थी, जिसे बुलाकर अपनी कोई गुप्त बात उसे बताती। रंजना जैसी औरत के जीवन में गोपनीय कुछ घटना संभव भी नहीं है! पर ऐसा था नहीं। इस तरह की एकमात्र अनुभूति उसे अपने इस घर-संसार से बाहर हुई थी। उसी अनुभूति के बारे में सोचेगी वह आज रात भर। दस साल पहले की उस घटना को उसने बाद में कई बार याद करने की कोशिश की थी, पर असफल हुई थी, क्योंकि जीवन के जंजाल में फँसी वह जब भी उस घटना को याद करती, तो हर बार उसे लगता कि वास्तव में उसके जीवन में ऐसी घटना घटी ही नहीं थी। यह मात्र उसकी एक कल्पना थी। पर आज जब इस खाली घर में उसके पास में कोई नहीं है, तब इस निर्जन रात में वह अपने आपको समर्पित कर देगी, बीते हुए उन कुछ दिनों की यादों में।

रंजना बिस्तर पर से उठकर बैठ गई। नहीं, वह उस बात को इतने साधारण तरीके से नहीं सोचेगी; पहले उसके लिए अपने को तैयार करेगी। अतीत के आमने-सामने होने के लिए वह अपने आपको सजाएगी। हलके हाथों से उसने धीरे-धीरे अपने शरीर से साड़ी को अलग किया। कोई हड़बड़ी नहीं थी। अभी उसके सामने थी एक संपूर्ण रहस्यमय रात के चार प्रहर। संपूर्ण वस्त्र खोल देने के बाद जब उसने अपने को छुआ तो एक अपूर्व सिहरन उसके पूरे शरीर में फैल गई। अँगड़ाई लेकर वह बिस्तर से नीचे उतरी और धीमे कदमों से चलकर दर्पण के सामने खड़ी हो गई। पहली बार वह अपने को संपूर्णता में देख रही थी। खुद के लिए वह एक आश्चर्यजनक आविष्कार सी लगी। अवाक् हो उसने अपने को नीचे से ऊपर तक देखा। उसे पता नहीं था कि ऐसी देह थी उसके पास! उम्र ने अपने साथ जो चर्बी लाकर उसे गोल-मटोल बना दिया था, उसे छूकर अपने साथ परिचित हुई वह। अपने को विभिन्न दृष्टिकोण से देखते हुए, खुद के अवयवों से अंतरंग होने की कोशिश की रंजना ने।

खाली पाँव, खाली शरीर में घर के अंदर चेहरा उठाए खड़ी होने की यह नई अनुभूति थी। सोने के कमरे से निकलकर वह दूसरे कमरों की लाइट जलाती हुई चहलकदमी करती रही, ऐसे मानो अपने इस परिवर्तित रूप को, स्वयं के सामने अलग आप रूप में उपस्थित करना चाहती हो। मानो वह कोठरी में छिपे अँधेरों से कह रही हो, 'मुझे इस तरह से देखो; हाथ बढ़ाकर मुझे छुओ; मुझे आत्मीय बना लो। रंजना पास के एक कमरे में जाकर कुरसी पर बैठी, फिर उठकर दीवार से टेक लगाकर खड़ी रही। रसोई में जाकर पानी पीया और नहाने के कमरे में घुसकर आदतन दरवाजा बंद कर दिया, पर फिर उसे खोलकर पानी के धार के नीचे अपने को समर्पित कर दिया।

कुछ दिन के भीतर ही कॉलेज का जीवन उसकी आदत में शुमार हो गया था और घर-बाहर के जीवन से सहज समन्वय बना लिया था उसने। कॉलेज जीवन का सबकुछ परंपरागत था उसके लिए। वही पुराना पाठ और हर साल नए चेहरों के अलावा वही क्लास-दर-क्लास··· रंजना को लगा था कि घर चलाने के साथ कॉलेज की इस अतिरिक्त जिम्मेदारी को किसी तरह वह कुछ और साल तक निभा ले जाएगी, शायद अवकाश लेने तक। पर नौकरी के कुछ साल बाद उसके ऊपर एक और बोझ आन पड़ा; उसे पी-एच.डी. करना होगा। रंजना ने सोचा कि भले ही उसे प्रमोशन न मिले, वह और पढ़ाई करके शोध नहीं कर सकती। पर आशुतोष इस बात के लिए भी जोर देने लगा। उसके लिए गाइड मुहैया करने से लेकर पुस्तकें भी लाकर दे दीं। 'ओडिशा इतिहास का एक अज्ञात समय' विषय पर शोध अध्ययन शुरू करने के बाद रंजना का भी मन उसमें लगने लगा। उसने जब अपना शोध-पत्र लिखना शुरू किया तो उसे अपने ऊपर विश्वास आने लगा और ठीक समय पर उसने अपना शोध-पत्र लिखकर विश्वविद्यालय को भेज भी दिया।

रंजना भूल गई कि कितने समय से वह पानी की धार के नीचे बैठी है। अब उसे ठंड सी लगने लगी। पानी बंद करके उसने अच्छे से अपने बदन को पोंछा और एक बार फिर सोने के कमरे में दर्पण के सामने जाकर बैठ गई। ड्रेसिंग टेबल के ड्रॉर में कई तरह के मेकअप का सामान था; जिन्हें कभी वह उपयोग में नहीं लाती थी। आज बहुत ही मनोयोग से उसने एक-एक कर सबको लगाया। बालों को करीने से बाँधा, आँखों में काजल लगाया, फिर दर्पण के सामने खड़े होकर खुद को निहारते हुए वह संतुष्ट लगी।

दो परीक्षकों ने उसके शोध-पत्र की प्रशंसा की, पर लंदन के एक प्रोफेसर ने उसका मूल्यांकन करते हुए लिखा कि बेशक लेख का मानक उच्च कोटि का है, फिर भी इस विषय पर और भी कई तथ्य इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में हैं और अगर उन सबका उल्लेख न किया जाए तो थीसिस को असंपूर्ण माना जाएगा। उन्होंने यह बात भी लिखी कि अगर इस विषय पर अनुसंधान करने के लिए वह लंदन आना चाहती है तो वे खुद उसकी हर तरह की सहायता करेंगे। यह खबर पाकर रंजना कुछ निराश हुई। पर साथ ही और क्या कुछ तथ्य हैं, जानने के लिए उसके मन में आग्रह भी पैदा हुआ। लेकिन लंदन जाना उसकी सोच से परे था और उसने मन-ही-मन तय किया कि वह इसे रहने ही देगी, चाहे पी-एच.डी. पूरा हो या न हो!

लेकिन आशुतोष इतनी आसानी से छोड़नेवाला नहीं था। उसने रंजना से लंदन के उन प्रोफेसर को एक पत्र लिखवाया, जिसका उनके पास एक बेहद लंबा, जो

उत्तर आया, वह काफी उत्साहवर्धक था। विश्वविद्यालय को पत्र लिखा गया था कि उसकी यात्रा का खर्च दिया जाए और विश्वविद्यालय इसके लिए तैयार हो गया था। लंदन में सस्ते में रहने का इंतजाम भी हो गया। रंजना के डर और संकोच के बावजूद उसका लंदन जाना इस तरह से धीरे-धीरे तय होने लगा। आखिर में जब टिकट और वीजा भी हो गया तो रंजना को बुखार आ गया और उसने सोचा कि इसी बहाने उसका जाना रुक जाएगा। लेकिन आशुतोष ने उसका इलाज शुरू करवा दिया और टिकट की तारीख भी आगे बढ़वाकर सभी को बता दिया कि रंजना को जाने में थोड़ी सी देरी होगी। लंदन में किन चीजों की जरूरत होगी, उसकी एक लिस्ट बनाकर आशुतोष सारा सामान खरीदकर ले आए।

रंजना ने अलमारी खोली, देखने के लिए वह क्या पहने? साड़ियों के अंबारों के नीचे ब्लू जींस पर उसकी नजर पड़ी। जाने कब से उसने इसे पहना नहीं था। यूँ वह भूल भी चुकी थी कि उसके पास इस तरह का कोई ड्रेस भी है। खाट पर बैठकर उसे पहनने की कोशिश की तो कमर पर वह फँस गई। वह मोटी हो गई थी। फिर भी उसने कमर तक पैंट को खींचकर बटन लगाया और चेन को खींचकर लगा दिया। कसी हुई जींस को थोड़ा ढीला करने के लिए वह एक-दो बार खाट पर बैठी-उठी, फिर कमरे में चहलकदमी करने लगी। अब फिर अलमारी के पास जाकर ऊपर क्या पहनेगी, ढूँढ़ने लगी। उसके हाथ मोटा एक स्वेटर आया और उसे ही उसने पहन लिया। नीचे गिरे मोजे को उठाकर पहना और फिर दर्पण के आगे जाकर खड़ी हो गई।



हीथ्रो एयरपोर्ट पर उतरकर इमिग्रेशन की लंबी कतार में खड़े होकर अपनी बारी का इंतजार करते हुए रंजना को रोना आया। कभी भी घर से दूर वह गई नहीं थी और ऐसे में अकेले विदेश आने की बात तो सपने में भी नहीं सोची थी। यहाँ केवल अजनबी ही थे, ऐसी बात नहीं थी, बल्कि उसके आसपास सभी में एक पराएपन का भाव भी था। वह थोड़ा सा आश्वस्त तब हुई, जब यहाँ का समय जानने के लिए उसने घड़ी की तरफ देखा तो पास खड़े एक व्यक्ति ने उसकी घड़ी लेकर समय के काँटे को ठीक कर दिया। कतार में काफी देर तक खड़े होने के बाद दोपहर के दो बजे एयरपोर्ट से बाहर आई तो ठंड और कुहासे भरे मौसम ने उसका मन और उदास कर दिया। कोई जरूरत नहीं थी, इतनी तकलीफ सहकर लंदन आने की! फिर भी टैक्सी में बैठकर शहर के भीतर जब घुसी तो बाहर देखकर रंजना के मन में थोड़ी सी उत्तेजना हुई कि एक नया देश वह देख रही है। इतनी दूर जब आई है

तो वह जैसे भी हो, अपने काम को भलीभाँति पूरा करेगी। चाहे इस अनात्मीय शहर में उसे तीन हफ्ते रुकना क्यों न पड़े। एक घंटे बाद टैक्सी ने उसे उसके पते पर ले जाकर पहुँचा दिया और टैक्सीवाले ने ही जाकर घर का कॉलिंग बेल दबा दिया। एक भारतीय महिला को दरवाजा खोलते देखकर रंजना खुश हुई, पर टैक्सी का किराया उसे जितना देना पड़ा, उससे उसका मन भारी हो गया।

मिसेज पटेल रंजना का सूटकेस लेकर उसे ऊपरी मंजिल के उसके कमरे तक ले गईं। तीन कमरों के बीच का कमरा उसका था। केन्या से भागकर आए पटेल परिवार के मुखिया की मौत के बाद यह भद्र महिला अपने मकान के पाँचों कमरों में पेइंग गेस्ट रखने लगीं। यहाँ छात्र, अध्यापक और शोधकर्ता आकर रहते थे। उन्होंने रंजना को अपने घर के नीति-नियमों के बारे में बता दिया; शाम को छह बजे रात का भोजन वे देंगी। सुबह का ब्रेकफास्ट गेस्ट को खुद बनाना होगा। उसके लिए सामान उनके फ्रीज में से मिल जाएगा। दोपहर का भोजन बाहर करना होगा। किसी का टेलीफोन आने पर वे उसे बुला देंगी, पर अपने टेलीफोन से वे बात करने नहीं देंगी। फोन करना हो तो उसे बाहर जाना होगा। मिसेज पटेल एक हफ्ते का अग्रिम किराया उससे ले लेंगी। फ्रीज में कहाँ क्या रखा है ओर रसोई में कैसे चूल्हा जलाना होगा, उसे बता दिया। उस समय घर में और कोई नहीं था, इसलिए रंजना सहज महसूस कर रही थी। पर जब मिसेज पटेल ने उससे कहा कि तीनों कमरों के लिए एक बाथरूम है और अभी बाकी दो कमरे में गेस्ट हैं तो वह परेशान हो गई। पर पूरे रास्ते अनिद्रा में रहने के चलते वह थक गई थी। जब मिसेज पटेल उसके कमरे में उसे छोड़कर चली गईं तो जो साड़ी वह पहनकर आई थी, उसे पहने हुए ही वह सो गई।

दर्पण के सामने कसी हुई जींस और स्वेटर में अपने को निहारना अच्छा लगा रंजना को। वह साड़ी के अलावा और कुछ पहनती नहीं थी। इस जींस को आशुतोष ने उसके लिए लंदन जाने से पहले खरीदा था। स्वेटर उसने लंदन में खरीदा था। साड़ी में लिपटा रहनेवाला उसका स्थूल शरीर इस वस्त्र में अलग नजर आ रहा था। उसकी उम्र मानो काफी कम हो गई थी और वह तरोताजा लग रही थी। दर्पण के सामने बैठकर ही शीशी खोलकर वह नेलपॉलिश लगाने लगी। लिपस्टिक के डिब्बे में से चटख रंग का लिपस्टिक लेकर होंठों पर लगाई। अब दर्पण के सामने कमर पर हाथ रखकर खड़ी हो गई। बाएँ-दाएँ घूमकर अपने को देखने लगी, फिर आँख मारते हुए दर्पण में अपने को चूम लिया।

ठीक छह बजे मिसेज पटेल उसे जगाकर नीचे ले गईं और खाना दे दिया। किस्मत से उनके दूसरे अतिथि वापस नहीं लौटे थे। अब बादल चले गए थे और

धूप आ गई थी। यहाँ रात के आठ बजे तक ऐसा ही उजाला रहता है। धूप के समय रात का भोजन कर लेना रंजना को अजीब सा लगा। पर वह खाकर, कमरे में जाकर तुरंत सो गई। रात में उसकी नींद टूटी तो फिर उसे नींद नहीं आई। उसे घर की याद आने लगी। इतने दिन कैसे सबको छोड़कर वह रह पाएगी ? कल सुबह बाहर निकलकर कहीं से पहले आशुतोष को फोन लगाएगी। ऐसा सोचते ही उसे रुलाई आ गई, क्योंकि उसे पता नहीं था कि वह अकेले कहाँ जाकर फोन ढूँढ़ेगी ? प्रोफेसर के साथ कैसे संपर्क करेगी ? प्रोफेसर उसकी अंग्रेजी समझ पाएँगे या नहीं ? बस ट्यूब लेकर वह हर दिन लाइब्रेरी कैसे जाएगी ? यही सब सोचते-सोचते पता नहीं, फिर कब उसे नींद आ गई। जब वह उठी तो सुबह के सात बजे थे। अपना नित्यकर्म करने के बाद नए सिलाए सलवार कुरते को पहनकर वह नीचे उतरी।

चाय पीने के लिए केतली में पानी भरकर चूल्हा जलाना चाहा, पर जला नहीं पाई। उसे चाय की तलब लगी थी, इसलिए उसने फिर एक बार कोशिश की, पर असफल होकर डाइनिंग टेबल की चेयर पर जाकर बैठ गई। बाहर हलकी बूँदाबाँदी हो रही थी, जिसे देखकर उसका मन उदास हो गया। रंजना मन में सोचने लगी, काश, कुछ भी न करते हुए उसे इसी घर में ऐसे ही बैठे रहना होता, बाहर जाना न पड़ता ! उसी समय कमरे में एक भारतीय को आते देखकर वह खुश हो गई। युवक ने उसका अभिवादन किया और चाय के लिए पूछा। रंजना ने सिर हिलाकर हामी भरी। चाय बनाकर युवक ने टेबल पर रखी और उसकी सामनेवाली कुरसी खींचकर बैठते हुए अपना परिचय दिया। उसका नाम जावेद अख्तर है और वह पाकिस्तान से तीन महीने का कोर्स करने के लिए आया है। रंजना ने अपना नाम बताया, पर थोड़ी देर पहले अपने देश के व्यक्ति को देखकर जो खुशी उसे हुई थी, वह कहीं बिला गई। मुसलमान ऊपर से पाकिस्तानी; बिल्कुल भी विश्वास करने योग्य नहीं होगा यह आदमी। चाय पीकर युवक से विदा लेकर वह अपने कमरे में चली गई। बाद में मिसेज पटेल से अपने काम के लिए मदद लेगी, उसने सोचा।

एक घंटे बाद जब वह फिर नीचे आई तो देखा कि मिसेज पटेल चाय पी रही थीं और उनके पास एक गोरा युवक बैठा था। मिसेज पटेल ने परिचय करवाते हुए कहा कि डेविड, उनकी बेटी का पति। उनकी बेटी दूसरे शहर में काम करती है, जहाँ डेविड का भी घर है। जब भी डेविड लंदन अपने काम से आता था तो उनके पास ही रुकता था। रंजना को जब घर फोन करने के लिए और प्रोफेसर से संपर्क करने के लिए उनकी मदद माँगी तो मिसेज पटेल ने कहा कि डेविड अपने काम के लिए जब निकलेगा तो रंजना को भी अपने साथ ले जाएगा और

उसे सबकुछ दिखा देगा। मिसेज पटेल ने उसे एक छाता उधार दिया और फिर दोनों साथ घर से बाहर निकले।

घर के बाहर मोड़ पर टेलीफोन बूथ था। रंजना से पैसा लेकर डेविड फोन यूज करने का कार्ड खरीद लाया और रंजना के बताए नंबर को डायल कर दिया। आशुतोष से फोन पर बात करके रंजना का आत्मविश्वास जैसे लौट आया। घर में सभी ठीक थे। आशुतोष ने उसके बारे में चिंता जताई तो रंजना ने उसे आश्वस्त किया और कहा कि चिट्ठी में सब लिखेगी। उसके बाद रंजना के अनुरोध पर डेविड ने प्रोफेसर से फोन पर बात की और उनसे डेढ़ घंटे बाद का समय मुलाकात के लिए तय कर दिया। फिर उनके घर रंजना कैसे जाएगी, उसके बारे में समझाते हुए कहा कि वह रंजना को अंडरग्राउंड स्टेशन में छोड़ देगा और वहाँ से वह कैसे प्रोफेसर के घर जाएगी, बता देगा। पर रंजना ने उसे साथ चलने का दबाव डाला और डेविड मान गया।

स्टेशन में डेविड ने उसके लिए एक हफ्ते का टिकट कटवा दिया। चित्र दिखाकर उसे लाइन में जाकर किस स्टेशन से उसे ट्रेन बदलकर प्रोफेसर के घर जाना होगा, उसके बारे में समझाया। लंदन के मानचित्र में प्रोफेसर का घर और इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी की स्थिति को भी बताया। पर जब ट्रेन पकड़ने के लिए रंजना को एक्सलेटर पर चढ़ना पड़ा तो रंजना के लिए ऐसा कर पाना संभव नहीं हुआ। रंजना ने उस पर पैर रखने से इनकार कर दिया। आखिर में डेविड ने झल्लाकर उसे जबरदस्ती एक्सलेटर पर चढ़ा दिया। सीढ़ी पर खड़े होने के बाद रंजना ने साँस भरी और देखा कि डेविड अभी भी उसे पकड़े हुए था। उसने सीढ़ी पर अपने को उससे मुक्त कर लिया, पर अगले ही पल जैसे ही सीढ़ी से उतरने का समय आया, उसने फिर से अपने को डेविड के आगे समर्पित कर दिया। अब डेविड ने उसे जरूरत से ज्यादा कसकर पकड़ा और उसकी इस हरकत को चुपचाप सहन कर लेने के अलावा रंजना के पास और कोई चारा नहीं था।

प्रोफेसर एक बहुत भले व्यक्ति थे और उन्होंने धैर्य के साथ बैठकर रंजना को उसके काम के बारे में कई तरह के परामर्श दिए। उसे क्या-क्या पढ़ना होगा, उस बारे में बताया। लाइब्रेरी में अपने जान-पहचानवाले को फोन करके उससे रंजना की मदद करने का अनुरोध किया। जब वे दोनों बातचीत कर रहे थे, तब डेविड ऊबकर बार-बार अपनी घड़ी देखे जा रहा था। जब बातचीत खत्म हुई तो रंजना और डेविड घर से बाहर निकले। डेविड ने उससे कहा कि उसको काम है, इसलिए रंजना अकेली घर चली जाए। पर रंजना ने उससे बहुत मनुहार किया साथ चलने के लिए। तब डेविड उसकी बात मान गया, पर कहा कि पहले चलकर कहीं कुछ खाया जाए।

पास के एक पब में पहुँचकर डेविड ने रंजना से पूछा कि वह क्या पिएगी? रंजना ने कुछ भी पीने से मना कर दिया तो डेविड अपने लिए बीयर का एक बड़ा मग ले आया और कुरसी पर जमकर बैठते हुए पीने में मगन हो गया। आधे घंटे बाद उसे याद आया कि वे तो कुछ खाने आए थे! फिर रंजना से पैसा लेकर डेविड उसके लिए कुछ खाने के लिए ले आया। रंजना को वह चीज कुछ अच्छी नहीं लगी, इसलिए बेमन से खाते हुए उसने गौर किया कि डेविड निर्विकार भाव से पिए जा रहा है। जाने का कोई इरादा जैसे नहीं है उसे। काफी समय बाद डेविड उठा और दोनों घर के लिए निकले।

घर पहुँचकर रंजना ने जाना कि मिसेज पटेल घर पर नहीं हैं। उस समय कोई भी नहीं था घर में। रंजना को अब डेविड के साथ इस तरह अकेले रहने में डर सा लगने लगा। वह डेविड से विदा लेकर ऊपर अपने कमरे में आ गई और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया। कुछ देर बाद दरवाजे पर दस्तक की आवाज सुनकर पहले तो रंजना ने सोचा कि वह दरवाजा नहीं खोलेगी, पर क्या पता किसी को किसी चीज की जरूरत हो, सोचकर दरवाजा खोल दिया। बाहर डेविड खड़ा था। उसे कुछ कहने का मौका न देते हुए, डेविड कमरे के अंदर आते हुए बोला कि वह रंजना के लिए एक पुस्तक लाया है, जिसमें शहर के इलाकों के बारे में उसे विस्तृत जानकारी मिल जाएगी। टेबल के पास बैठकर उसने रंजना को एक बार फिर से रास्तों के बारे में बताया। डेविड से जितनी दूरी बनाए रखी जा सकती है, उतनी दूरी रखते हुए रंजना ने उसकी बातों को याद रखने की कोशिश की। इसके बाद डेविड ने पुस्तक को बंद करके उससे बातचीत का सिलसिला शुरू करते हुए भारत के बारे में पूछना शुरू किया। रंजना समझ गई कि इस आदमी की नीयत ठीक नहीं है। इसलिए उसे कम शब्दों में उत्तर देने के बाद अपनी तबीयत खराब होने का बहाना करके आराम करने की इच्छा व्यक्त की। डेविड जाने के लिए उठा, पर जाने से पहले विदा लेने के बहाने दरवाजे के पास उसे एक बार कसकर पकड़ लिया।

बिस्तर पर लेटकर रंजना उसी बारे में सोचने लगी। डेविड का व्यवहार बहुत ही खराब था, पर एक पराए मर्द के उसे छूने पर जितनी नफरत उसे होनी चाहिए थी, वैसा कुछ हुआ नहीं। इन बीते पलों में उसे लगने लगा था कि उसमें नारी सुलभ मोहिनी भाव अब नहीं है, जो किसी पुरुष को आकर्षित करे। डेविड का व्यवहार उसे अच्छा भले न लगा हो, पर अपने ऊपर उसे एक आत्मविश्वास दे गया था। अब चाहे जो हो, रंजना ने तय कर लिया कि वह डेविड पर निर्भर नहीं रहेगी। बिस्तर से उठकर दूसरे दिन कैसे वह लाइब्रेरी जाएगी, इसकी योजना में मन लगाया।

उस दिन शाम के खाने के समय जावेद से फिर उसकी भेंट हुई। इस मित्र-विहीन शहर में इस व्यक्ति के साथ दोस्ती किया जा सकता है या नहीं, परखने के लिए रंजना ने अपनी ओर से बातचीत का सिलसिला शुरू किया। जावेद सिर्फ एक सुपुरुष ही नहीं, बल्कि उसकी बातचीत, चाल-चलन भी काफी सभ्य और सुशील था। वह विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य पढ़ाता था और लंदन शहर से उसका पूर्व परिचय भी था। खाने के बाद विदा लेने से पूर्व रंजना को हर तरह की सहायता करने का आश्वासन देते हुए कहा कि रंजना को जैसी भी जरूरत पड़े, उसे जरूर बताए।

दूसरे दिन सुबह दोनों साथ-साथ निकले और पैदल चलते हुए अंडरग्राउंड स्टेशन तक गए। वहाँ पहुँचकर जावेद ने उसे एक कागज पर चित्र बनाकर लाइब्रेरी जाने का रास्ता बिस्तार से बताया। पर इतने सारे दिशा-निर्देश देखकर रंजना का दिमाग अस्त-व्यस्त हो गया। फिर भी जावेद से कागज लेकर रंजना ट्रेन के इंतजार में खड़ी रही। जावेद बोला, मेरी ट्रेन इसी प्लेटफॉर्म से जाएगी, पर तुम्हें दूसरी तरफ के प्लेटफॉर्म पर जाना होगा। रंजना उसकी तरफ बेवकूफों की तरह देखने लगी तो जावेद अपनी घड़ी पर नजर डालते हुए उससे बोला कि 'चलो, आज मैं तुम्हारे साथ चलकर तुम्हें पहुँचा दूँगा।'

रंजना को याद आया कि घर के सारे कमरे की लाइट जल रही है। ड्रेसिंग टेबल के पास से उठकर वह पास के कमरे में गई। वहाँ की लाइट बंद करते समय दीवार पर लगे दर्पण पर उसकी नजर पड़ी तो उसके सामने जाकर वह कुछ देर खड़ी रही। फिर लाइट बंद करके पास के कमरे में गई, तो अचानक उसकी नजर कमरे की खुली खिड़की पर पड़ी। तो क्या इससे पहले जब वह इस कमरे में आई थी, तब भी यह खिड़की खुली हुई थी? वैसे खिड़की के पास बगीचा था और उसे कोई देख पाएगा, इसकी संभावना नहीं थी। फिर भी वह शरमा गई। फिर उसके मन में आया कि उसे इस वेशभूषा में कोई भला देख ले! वहाँ की लाइट बुझाकर और एक कमरे में गई और बंद खिड़की को खोलकर बाहर झाँकी। यहाँ से रास्ता नजर आ रहा था, पर कोई वहाँ से गुजर नहीं रहा था। सारे कमरों की लाइट बंद करके आँगन के उस तरफ गई, जहाँ गौशाला थी। तब तक उसे गरमी सी लगी तो स्वेटर को खोलकर हाथ में पकड़ लिया। वहाँ की लाइट जलाई तो देखा कि गाय उसकी ओर बड़ी-बड़ी आँखों से देख रही है। उसके सामने खड़ी होकर रंजना मन-ही-मन में बोली, 'बउला, तू ही मुझे ठीक से देख ले।'



लंदन में एक हफ्ता रहने के बाद वहाँ का परिवेश रंजना की आदत में शुमार हो गया। अब वह जींस पहनती थी, अकेले हर जगह चली जाती थी। सभी का अंग्रेजी उच्चारण समझकर उनसे बातचीत करने लगी थी। उसने पटेल परिवार के सभी के साथ अपने को शामिल कर लिया था। उस पहले दिन के बाद डेविड से फिर उसकी मुलाकात नहीं हुई थी। वह शायद चला गया था। उसके पास वाले कमरे में ठहरे हुए निग्रो व्यक्ति के साथ भी उसकी बातचीत होती थी। वह एक खुशमिजाज व्यक्ति था और रंजना की खूबसूरती की प्रशंसा करता था। मजाक में उससे कहता था कि अगर वह शादीशुदा नहीं होता तो रंजना जैसी सुंदर भारतीय नारी को प्रपोज करता! लाइब्रेरी में उसका काम ठीक से चल रहा था और इतवार के दिन जावेद के साथ जाकर लंदन के कुछ दर्शनीय स्थलों पर घूमकर वह आ जाती। वहाँ के चाल-चलन को रंजना स्वीकार कर चुकी थी और सरेराह लड़के-लड़कियों के आपस में प्रेम इजहार करने के दृश्यों को देखकर अब परेशान नहीं होती थी।

जावेद उसे बहुत अच्छा लगता था और रंजना उसके साथ ज्यादा समय बिता रही थी। रंजना के साथ जावेद काफी भद्र और संयमित व्यवहार करता था, पर इससे रंजना को यह लगता था, जैसे उसके प्रति वह ठंडा है और काफी नाप-जोखकर बरताव कर रहा है। रंजना अपने बारे में सबकुछ जावेद को बताती थी, पर जब तक वह न पूछे, तो जावेद अपनी व्यक्तिगत बातें उससे नहीं करता था। रंजना चाहती थी कि दूसरों की तरह जावेद भी उसके साथ हँसी-मजाक करे, रोमांटिक बातें करें। पर जावेद भले दूसरों से बेतकल्लुफ रहता था, पर उसके साथ बहुत संजीदा हो जाता था। एक दिन रंजना बाथरूम में नहा रही थी। शायद दरवाजा ठीक से बंद नहीं था और अचानक जावेद अंदर चला आया। तुरंत ही माफी माँगते हुए जावेद वहाँ से चला गया। बेशक इसमें उसकी कोई गलती नहीं थी, फिर भी जावेद और ज्यादा संयमित हो गया। उस गलती के लिए जावेद अपने को दोषी मान रहा है, यह बात मन में आते ही रंजना अपनी शर्म भूल जाती और जावेद के लिए ज्यादा परेशान हो जाती। इसलिए जावेद के संकोच को दूर करने की कोशिश भी करती।

एक दिन अचानक वह जावेद के कमरे में चली गई। उसे अपने कमरे में देखकर जावेद चौंक सा गया, पर फिर अपने को सहज कर रंजना से बातचीत करने लगा। रंजना से उसने कहा था कि वह कुँवारा है। रंजना ने उस दिन उससे पूछ लिया कि क्या वह किसी लड़की से प्रेम करता है? प्रश्न पूछकर रंजना को खुद पर हैरत हुई कि कैसे इतने कम दिनों के परिचय में भी वह एक व्यक्ति के कमरे में आकर उससे इतना व्यक्तिगत प्रश्न पूछ लिया! जावेद ने थोड़ा सा हतप्रभ होकर 'हाँ' कहा

और एक लड़की की फोटो लाकर उसे दिखाया। रंजना फोटो को हाथ में लेकर काफी देर बैठी रही, पर फिर कोई सवाल उस बारे में नहीं किया। अब उसने जावेद से उसकी पढ़ाई, विश्वविद्यालय, उसके माता-पिता के बारे में पूछा। कुछ देर बाद जावेद ने रंजना से पूछा कि क्या नीचे जाकर वह उसके लिए चाय बना लाए? पर उसके जवाब में उलटे रंजना ने उससे पूछा कि क्या वह शराब पीता है? जावेद के 'हाँ' कहने पर रंजना ने प्रस्ताव रखा कि वे किसी पब में चलें, ताकि शराब चखकर देखें कि शराब चीज होती क्या है? एक तरह से दबाव डालकर जावेद को उसने राजी किया और उसी शाम दोनों पास के एक पब में जा पहुँचे।

पब में रंजना ने जिद किया कि जावेद जो पिएगा, वह भी वही पिएगी। जावेद ने उसे मीठा वाइन पीने के लिए परामर्श दिया, पर रंजना उसके साथ एक मग बीयर लाकर कड़वा लगने के बाद भी उसी को पीने लगी। जब उसका ड्रिंक खत्म हो गया तो रंजना बोली कि अब की बार बीयर का पैसा वह देगी। मजबूरन जावेद जाकर दो और बीयर ले आया। ड्रिंक पीकर काफी देर बाद जब दोनों बाहर निकले तो रंजना को सबकुछ हलका महसूस हो रहा था। घर पहुँचे तो बाकी सब सो गए थे। छह बजे तक जो पहुँच नहीं पाते थे, उनके लिए मिसेज पटेल खाना अलग से रख देती थीं, जिसे वे माइक्रो-ओवन में गरम कर लेते थे। जावेद ने खाना गरम किया और दोनों ने खाना शुरू किया।

रंजना का दिमाग काम नहीं कर रहा था, वह चुपचाप खाना खाती रही। खाना खत्म होने के बाद जावेद उसका हाथ पकड़कर उसे ऊपर ले गया और उसके कमरे के सामने छोड़कर चला गया। कपड़े बिना बदले रंजना वैसे ही बिस्तर पर लेट गई। उसको काफी तेज सिरदर्द हो रहा था। घर से आते समय आशुतोष ने उसे कई तरह की दवाई दी थीं। पर अभी सूटकेस खोलकर दवाई ढूँढ़ने की हिम्मत नहीं थी रंजना में। वह कमरे से बाहर निकली और जावेद के कमरे का दरवाजा खटखटाया। जावेद के दरवाजा आधे खोलने पर उससे सिरदर्द की दवाई माँगी उसने। जावेद ने उसी आधे खुले दरवाजे से ही दवा पकड़ा दी। रंजना दवा लेकर कमरे में लौटी, पर दवा खाने का भी उसे धैर्य नहीं था। वह वैसे ही बिना दवा लिये सो गई।

कुछ दिन बाद रंजना का लाइब्रेरी का काम खत्म हो गया। उसके लौटने का समय अब आ गया था। प्रोफेसर से उसने रुखसत ले लिया था और छुट्टी के दिनों में जावेद के साथ बाकी दर्शनीय स्थलों को वह देख आई थी। अपने लौटने के टिकट को उसने खुद से कंफर्म कर लिया था और आशुतोष को फोन पर इसकी सूचना भी दे दी थी। मिसेज पटेल हिसाब करके अपना सारा पैसा ले चुकी थीं। जो

कुछ सामान उसे लंदन से ले जाना था, उसे खरीदकर नए एक सूटकेस में पैक कर चुकी थी। दो सूटकेस लेकर एयरपोर्ट कैसे जाएगी, इसे लेकर जब वह चिंतित थी तो जावेद ने उससे वादा किया कि वह उसे एयरपोर्ट तक पहुँचा देगा।

जिस दिन भोर में लंदन छोड़ने की बात थी, उसकी पहली शाम को खाने के टेबल पर हर दिन की तरह रंजना और जावेद ही थे। वे खाना खा चुके थे। जावेद उससे उसकी टिकट, पैकिंग के बारे में पूछ रहा था। जावेद दोनों के लिए कॉफी बनाकर ले आया, दोनों चुपचाप कॉफी पीते रहे। इस तरह चुपचाप काफी समय बीत जाने के बाद जावेद बोला कि सुबह जल्दी रंजना को उठना है, इसलिए वह जाकर सो जाए। रंजना बोली कि उसे सुबह तीन बजे उठना होगा, क्योंकि तैयार होने में उसे समय लगेगा। इतनी सुबह कैसे उठेगी, यह भी उसके लिए चिंता की बात थी। जावेद ने कहा कि उसके पास अलार्म घड़ी है। वह उसे रंजना को दे देगा। खाने का टेबल साफ करके दोनों सीढ़ी चढ़ने लगे। रंजना बोली कि घड़ी मेरे काम नहीं आएगी, अगर तुम्हें तकलीफ न हो तो आकर मुझे उठा देना। जावेद ने उसकी बात पर हामी भरा। ऊपर पहुँचकर रंजना अपने कमरे की ओर जाते हुए बोली, "मैं अपने कमरे का दरवाजा खुला रखूँगी।"

शरीर से सारे कपड़े उतारकर रंजना बिस्तर पर लेट गई और जलते हुए शरीर व मन को शांत करने के लिए अपने हाथ में अपने को समर्पित कर दिया। अब वह कल सुबह के बारे में नहीं सोच रही थी। अभी वह अपने अतीत, वर्तमान, भविष्य के बाहर थी; अपने आसपास के परिवेश से विच्छिन्न वह शून्य में तैर रही थी। वह सिर्फ अपनी गहरी साँसों के उतार-चढ़ाव को सुन पा रही थी। वह प्राप्त कर रही थी अपने तन के स्पर्श, गंध, स्वाद को। उसके सारे इंद्रियानुभव जाकर एकनिष्ठ हो गए थे शरीर के स्पंदनशील बिंदु में। तल्लीन होकर रंजना जावेद के चेहरे को याद करने की कोशिश करने लगी, पर उसे साकार नहीं कर पाई। अब उसने अपनी सारी चेतना को लगाकर श्रीमंत का आह्वान किया।



भावमूर्ति

उदय प्रकाश जब हॉस्पिटल छोड़ने लगा, तब डॉक्टर ने उसे दवाई और खान-पान के बारे में विस्तार से निर्देश देने के बाद कहा, "याद रखिएगा, यह आपके लिए यम का पहला विजिटिंग कार्ड है। नहीं, मैं यह बात आपको डराने के लिए नहीं कह रहा हूँ, न ही घबराने की ही कोई बात है। फिर भी इतना ध्यान रखना है कि आप अगर सँभलकर रहेंगे, खाने-पीने में संयम रखेंगे और दिन में आधा मील चलेंगे तो कोई समस्या नहीं आएगी। आपका जीवन फिर पहले जैसा चलने लगेगा।" इतना कहकर डॉक्टर कमरे से बाहर जाने के लिए खड़े हो गए। उदय से हाथ मिलाया और 'बेस्ट ऑफ लक' बोला।

एक महीने बाद घर लौटनेवाला उदय प्रकाश पहले जाकर अपने बिस्तर पर लेटा। इसमें मानो एक अलग आनंद था। अभी स्वस्थ होने से ज्यादा घर लौट आने के आनंद को वह ज्यादा उपभोग कर रहा था। अपना आत्मविश्वास मानो उसे वापस मिल गया हो! अब उसने स्नान-घर में जाकर दर्पण में अपने को देखा और मान लिया कि अब वह पहले जैसा नहीं है। इस एक महीने में उसके चेहरे में काफी बदलाव आ चुका है। वह जानता था कि उसका वजन काफी कम हो गया है, पर चेहरे पर इसका इतना प्रभाव पड़ेगा, उसने सोचा भी नहीं था। उसकी आँखें अंदर की तरफ धँस गई थीं, गालों की हड्डी नजर आ रही थी और उसकी उम्र अचानक जैसे काफी बढ़ गई थी। उसने अपने को आश्वासन दिया कि डॉक्टर की बात मानकर चलने पर कुछ दिन बाद वह पहले जैसा हो जाएगा।

पर सच में क्या ऐसा होगा? अपने आप से उदय प्रकाश ने सवाल किया। उसने इससे पहले कभी इस तरह से मौत के बारे में सोचा नहीं था। वैसे उसने मौत को लेकर कई कविताएँ लिखी जरूर थीं, पर कविता में मौत और डॉक्टर

की कही गई मौत की चेतावनी में जमीन-आसमान का फर्क था। कविता में मौत आती थी एक कोमल, शीतल, घनिष्ठ, दार्शनिक, आध्यात्मिक परिवेश में, दु:खांत संगीत की लहरों पर तैरकर। लेकिन दूसरी तरह की मृत्यु हॉस्पिटल के कीटाणु रहित कमरे में, बिना बाधा-विघ्न के, हाथ में परवाना लेकर घुस आती है। वह ऐसा सोच ही रहा था कि उसी समय हवा के एक ठंडे झोंके ने उसके सीने को छू लिया। नहाने के बाथरूम से निकलकर वह फिर बिस्तर पर जाकर लेट गया।

नहीं, अब उसे अपनी जीवन की शैली को बदलना होगा। अब समय को चकमा देकर बेकार के कामों में खुद को व्यस्त रखने के दिन गए। जब वह कविता लिखने बैठता था तो अचानक उसे याद आ जाता था कि बिजली का बिल नहीं दिया गया है, या फिर म्युनिसिपैलिटी से जो चिट्ठी आई थी, उसका जवाब देना है। कविता लिखना छोड़कर तुरंत वह चेकबुक और म्युनिसिपैलिटी के कागजात लेकर बैठ जाता था। कविता लिखना अवश्य ही एक कठिन काम है, लेकिन उससे प्रतिद्वंद्विता करते हुए वह इन कई तुच्छ घरेलू कामों को हमेशा प्राथमिकता देता आया है। इसके लिए वह अपने मन में तर्क गढ़ता कि कविता तो कल भी लिखी जा सकती है, पर बिल आज न जमा किया जाए तो बिजली कट जाएगी। इस तरह से उसे न लिखने के कई कारण मिल जाते थे। बिल अगर देना नहीं होता था तो उसे याद आ जाता कि अपने बीमार दोस्त को देखने जाना होगा, जबकि जब वह बीमार था तो वही दोस्त उसे देखने नहीं आया था। तब उदय प्रकाश अपने मन को समझाता कि वह अपने दोस्त से ज्यादा उदार है और कविता कभी भी मित्रता से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकती है। पर वह यह बात भी जानता था कि अगर उस पर कविता लिखने का बोझ नहीं होता, तो भी वह कुछ न करके घर में बैठा रहता और अपने मित्र को देखने भी नहीं जाता।

उदय प्रकाश का एक मित्र काफी दिनों से शोध कर रहा था एक पुस्तक लिखने के लिए, पर वह पुस्तक लिख नहीं पा रहा था। इस बारे में उससे पूछने पर वह कहता, "जब मुझे यह पता नहीं है कि मैं कब मरूँगा, तो फिर पुस्तक क्यों लिख लूँ?" उसकी बातों का अर्थ उदय प्रकाश नहीं समझ पाता था, पर जानता था कि उसकी इस उक्ति में कहीं एक खालिस सच छिपा हुआ है। लेकिन उसके पास अब वैसा कोई बहाना नहीं था। डॉक्टर ने भले ही उसे मौत का दिन लिखकर नहीं दिया, पर उसे मौत की चेतावनी जरूरी दे दी है। विजिटिंग कार्ड भेजना और सशरीर आगंतुक के पास पहुँचने के बीच समय का व्यवधान असीमित नहीं होता है, उसके

पास गिनती के दिन बचे थे। उसके पिता कम उम्र में दिल का दौरा पड़ने से चल बसे थे। यह सच भी उसे बार-बार याद आ रहा था।

कोई खास मानसिक या शारीरिक विपदा न पड़ने तक सभी यह मान लेते हैं कि जीवन मानो एक न खत्म होनेवाली यात्रा है! इस यात्रा में परिणाम अच्छा न होने की आशंका होने के बावजूद गलत निर्णय लिया जाता है, क्योंकि भूल को सुधारने की संभावना हमेशा रहती है। पर विपत्ति आने पर जीवन के प्रति अचानक इनसान का दृष्टिकोण बदल जाता है। समय सीमित हो जाता है और आखिरी सीमा-रेखा नजर की जद में आ जाती है। अब उदय प्रकाश कुछ भी नया काम हाथ में नहीं ले रहा था, बल्कि बाकी रह गए कामों को कैसे पूरा करेगा, उसी के बारे में सोच रहा था।

सुव्यवस्थित होने के चलते बहुत पहले से ही अपने जीवन को संगठित कर लिया था उदय प्रकाश ने। पर अब 72 की उम्र में पीछे मुड़कर देखने पर उसे कहीं कोई पूर्णता नजर नहीं आ रही थी। ऐसा क्यों था? कई सालों पहले इंश्योरेंस का काम शुरू करने के समय ही उसने तय कर लिया था कि वह कवि ही बनेगा। कुछ साल तक कोई भी उसे कवि की मान्यता देने के लिए तैयार नहीं हुआ, इसका कारण उसकी कविता कमजोर हो, यह बात नहीं थी, बल्कि उसका पेशा इसका कारण था। किसी अलिखित नियम के तहत कविता लिखने का पूर्ण अधिकार शिक्षक और प्रशासनिक ऑफिसों में काम करनेवालों ने कब्जा लिया था और वे सब अपने इस मोहिनी वृक्ष के भीतर इंश्योरेंस एजेंट जैसे बाहरी व्यक्ति का प्रवेश नहीं चाहते थे। पर आखिर में उसकी जीत हुई और कवि के रूप में उसे स्वीकार कर लिया गया।

अपने घर-परिवार, बच्चों को व्यवस्थित कर लेने के बाद उसने अपना काम छोड़ दिया और पूरी तरह से कवि बन गया। उसके बच्चे बाहर थे और पत्नी के साथ अपने संबंध को बहुत पहले से औपचारिक संपर्क में उसने बदल लिया था। उसकी कमाई और खर्चे नियंत्रण में थे। हुलिया का और कोई भार नहीं था, उसके ऊपर और अपने को कवि के अलावा वह अब और किसी रूप में नहीं देख पा रहा था और यही उसके जीवन की सबसे बड़ी समस्या थी।

उपन्यास का लेखक अपने लिए एक नियम बना सकता है कि हर दिन वह पचास पन्ने लिखेगा-ही-लिखेगा। नाटककार एक दृश्य लिखने के साथ अभिनेता-अभिनेत्री के साथ समय बिताने का नियम बना सकता है। पर एक कवि के लिए पूरा दिन बैठकर कविता लिखना संभव तो नहीं है, पर कविता लिखने से जुड़ी हुई जो बात, जैसे—पुस्तक पढ़ना, कविता पर चर्चा करना, यह सारी सुविधा उसके

शहर में नहीं थी। साहित्यिक मित्रों के साथ बैठने पर उसे दूसरे लेखक-लेखिकाओं के व्यक्तिगत जीवन, चरित्र, बदनामी के बारे में कई रोचक खबर मिल जाती थीं, पर इस सबका कोई भी काव्यात्मक, साहित्यिक महत्त्व नहीं था। वह एक रूखा और असामाजिक जीवन जीनेवालों में शुमार हो गया। इसलिए धीरे-धीरे इस तरह के मित्रों से दूर रहने लगा और लोगों से दूर, निस्संग, बिल्कुल अकेला पड़ गया।

भले ही साहित्यिक दुनिया को वह छोड़ चुका था, फिर भी वे उसे छोड़ नहीं रहे थे। बीच-बीच में सभा-समितियों में उसे बुलाया जाता और कभी-कभार कोई उसका साक्षात्कार लेने पहुँच जाता। साक्षात्कार की प्रक्रिया भी उसी एक लीक पर होती थी, उसकी कोई भी रचना न पढ़नेवाले युवा पत्रकार उन्हीं एक ही जैसे सवालों के साथ पहुँच जाते, जोकि इस तरह से होते—आपकी जन्मतिथि क्या है? आपने कितनी पुस्तकें लिखी हैं? आपकी पहली कविता कहाँ प्रकाशित हुई थी? आपको कौन-कौन सा पुरस्कार मिला है, आदि। साहसी पत्रकार होता तो उसके प्रेम संबंध पर सवाल करते हुए पूछता, आपकी प्रेम कविता की प्रेरणा कौन है? वह शादीशुदा है या कुँवारी? पर यह बात मानना होगा कि किसी ने भी उससे उसकी प्रेरणा का नाम, पता या फोन नंबर नहीं पूछा! हाँ, एक और प्रश्न भी होता था—आप लिखते क्यों है? उदय प्रकाश को इस प्रश्न की प्रासंगिकता बिल्कुल भी समझ नहीं आती थी, क्योंकि नाटक करनेवाले, चित्र आँकनेवाले या फिर नृत्य करनेवाले से कोई नहीं पूछता था कि आप क्यों अभिनय करते हैं? चित्र क्यों आँकते हैं या नाचते क्यों हैं? इसी तरह उससे पूछा जाता कि आपके पेशे के साथ आपकी कविता का क्या संबंध है? ऐसे सवाल उदय प्रकाश के लिए बिल्कुल भी बेमानी थे। दफ्तर में काम करनेवाले कवियों की कविता पढ़ते समय यह जानना जरूरी क्यों है कि कविता लिखते समय वह कृषि विभाग में थे या पशुपालन विभाग में?

साक्षात्कार के समय पूछे जानेवाले इस तरह के अप्रासंगिक सवालों से पहले-पहल वह खीझ जाता था। पर बाद में इस तरह के प्रश्नों को हरसंभव टाल देता था और गोल-मोल जवाब देना सीख लिया था। लेकिन जब पत्रकार इस बात से नाराज होने लगे और शिकायत करने लगे कि वह उनके साथ सहयोग नहीं कर रहा है, तो उसने साक्षात्कार देना बंद कर दिया।

इसी तरह से साहित्यिक सभा का उसका अनुभव भी काफी कड़वा था। उसे कभी कोई किसी विषय पर बोलने के लिए निमंत्रित करता था तो वह समय देकर पढ़ाई करता और एक लेख तैयार कर लेता। पर उसकी इतनी मेहनत साहित्य सभा के अद्‌भुत संचालन में बेकार हो जाती। नियम मानने में पक्का था वह, इसलिए

कार्यक्रम में ठीक समय पर पहुँच जाता, पर वहाँ उसे एक भी आदमी नहीं मिलता। उसने अब तक किसी भी सभा को ठीक समय पर शुरू होते हुए नहीं देखा था। सभा की शुरुआत में होनेवाले संगीत, स्वागत भाषण, वक्ता-परिचय में ही इतना समय बीत जाता कि मूल साहित्य चर्चा के लिए किसी में आग्रह नहीं रह जाता। जो वक्ता आखिरी में रह जाता, उस समय तक सभागृह में श्रोता गायब रहते। कई बार श्रोताओं के अनाग्रह को देखकर उदय प्रकाश अपने संक्षिप्त भाषण को और भी संक्षिप्त कर देता था। इस तरह के बार-बार के अजीब अनुभव के बाद धीरे-धीरे उदय प्रकाश ने सभा-समिति से भी अपने को दूर रखने लगा।

तब तक एक प्रतिष्ठित कवि की स्वीकृति उसे मिल चुकी थी और वह सचेतन था कि पाठक और जनता के लिए अपना एक निर्दिष्ट व्यक्तित्व वह तैयार करेगा। वह चाहता था कि उसकी पहचान, उसकी भावमूर्ति एक कवि की हो, कवि, सिर्फ कवि! पर लोगों की कवि के बारे में एक अलग धारणा होती है। कवि कहने से समझते हैं—एक ऐसा व्यक्ति, जो पूरी तरह से अनियंत्रित, लंपट, शराबी, व्यभिचारी जीव है, जिसे सिर्फ उसकी कविता के लिए सहन किया जा सकता है। पर उदय प्रकाश इन सब व्यसनों से दूर था, इसलिए उसे एक विकल्प भावमूर्ति बनाकर लोगों तक पहुँचना था; पर यह काम काफी कठिन था। साहित्यिक गोष्ठी और मित्रों के जमघट में जब वह शराब पीने से इनकार करता था तो कोई भी विश्वास नहीं करता था कि वह पीता नहीं है; बल्कि लोगों को मन में यह धारणा बन जाती कि वह एक कपटी है, जो घर में तो रोज शराब पीता है, पर बाहर दिखाना चाहता है कि वह साधु-संत है! उसकी वेशभूषा भी बिल्कुल कवि जैसी नहीं थी।

भारत ही शायद एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ अलग-अलग पेशे के लिए अलग-अलग वेशभूषा है। जैसेकि गांधी टोपी पहना हो तो पता चला जाएगा कि वह व्यक्ति कोई राजनीतिक नेता होगा, लंबे बाल हों तो नर्तक और झोला लिये, बिखरे बाल, अस्त-व्यस्त कपड़े से पता चलता कि कोई बुद्धिजीवी होगा। कवि के लिए कोई तय किया हुई पोशाक नहीं है, फिर भी दाढ़ी एक सहायक भूषण की तरह माना जाता है। बदकिस्मती से उदय प्रकाश मूँछ भी नहीं रखता था। चरित्र की दृष्टि से वह एक पत्नीव्रती था और किसी दूसरी औरत के साथ उसने कोई अपवाद भरा संबंध बनने नहीं दिया। चाहे लोग उसे लेकर गलत धारण क्यों न बना लें, पर उसने तय कर लिया था कि उसका साहित्यिक परिचय उसके चरित्र को लेकर नहीं होगा, उसकी वेशभूषा से नहीं होगा, बल्कि उसकी कविता और सिर्फ कविता के माध्यम से होगा। अपनी एक छवि बनाने में एक और बड़ी समस्या थी, कविता की

व्याख्या को लेकर। कविता में वह क्या कहना चाहता है? कुछ कवियों को प्रेमी कवि, विद्रोही कवि या फिर मृत्यु के कवि की आख्या दिया गया था। पर उसके प्रति ऐसा कोई विशेषण प्रयोग किसी ने नहीं किया था। वह अलग-अलग विषय पर कविता लिखता था और मानता था कि यही उसकी विशेषता है। पर आलोचक उसे आसानी से छोड़नेवाले नहीं था, वे उसे खींचतान कर एक साँचे में डालने की कोशिश कर रहे थे। एक बार एक आलोचक ने उसकी कविता की समीक्षा करते हुए उसका एक विकृत अर्थ निकाला था, जबकि उदय प्रकाश ने वैसा कुछ लिखा नहीं थे। उस लेख के प्रकाशित होने के बाद उदय प्रकाश ने पत्रिका के संपादक को एक लंबा पत्र लिखा, जिसमें उसने स्पष्ट किया कि उसने क्यों उस कविता को लिखा था और उस कविता में वह क्या कहना चाहता था, पर वह नहीं जानता था कि साहित्य की लड़ाई में समालोचक हमेशा भयंकर, अजेय और अमर होते हैं। उसका पत्र प्रकाशित होने के बाद उक्त समालोचक ने और भी बड़ा लंबा पत्र लिखकर कुछ और सत्य प्रतिपादित किया। जैसे—कवि ने क्यों इस कविता को लिखा, यह उस कविता के मूल्यांकन करने के समय बिल्कुल भी अप्रासंगिक है। कविता ही समालोचक के लिए सबकुछ है। रचना एक बार प्रकाशित हो जाए तो वह पूरी जनता की संपदा हो जाती है। उस पर लेखक का फिर कोई स्वाधिकार नहीं रहता। आखिरी में समालोचक ने व्यंग्य सा करते हुए लिखा था कि 'कवि ने हमें एक सुंदर कविता दी जरूर, पर वह खुद नहीं जानते कि उन्होंने लिखा क्या है?'

इस घटना के बाद उदय प्रकाश ने समालोचकों के साथ तर्क करना छोड़ दिया और यह तय कर लिया कि हर कविता का एक प्राक्कथन तैयार करेगा, जिसमें बताएगा कि उसने उस कविता को क्यों लिखा और उसमें वह क्या कहना चाहता है? इस काम को शुरू करने के बाद उसने देखा कि इसमें भी कई समस्याएँ हैं। कभी उसे यह याद नहीं आता कि उसने कविता क्यों लिखा, तो कभी समालोचक के कहे अनुसार, वह खुद जान नहीं पाता था कि कविता में वह क्या कहना चाहता है? फिर भी उसने इस काम को जारी रखा, जबकि वह जानता था कि वह जो कर रहा है, वह न्यायसंगत नहीं है और न ही सत्य आधारित है।

इसी तरह से अपने परिपक्व साहित्यिक जीवन में आ रहे संकटों का समाधान करते हुए वह बीमार पड़ गया और उसे अस्पताल में भरती होना पड़ा। अब अस्पताल से बाहर आते समय डॉक्टर ने जो समय-सीमा खींच दी थी, उसकी तरफ देखते हुए उसे लगा कि उसके जीवन की सारी दिशाएँ बदल गई हैं। अपने विषय में, साहित्यिक विषय में और भविष्य के बारे में उसने जो नीति-नियम तय किया

था, उसे लगा कि वह अंतिम नहीं था, बल्कि उसमें सुधार की गुंजाइश थी। इसलिए उसने एक अलग तरह की जीवन प्रणाली में अपने को समर्पित कर दिया।

सभा-समिति में पहले कभी न जानेवाला उदय प्रकाश अब हर निमंत्रण को सिर्फ स्वीकार ही नहीं करने लगा, बल्कि ऐसी कौन सी और संस्थाएँ हैं, जो उसे भाषण देने के लिए बुला सकते हैं, उन्हें भी ढूँढ़ता रहता। खूब कम दिनों के भीतर ही वह राज्य की विभिन्न आलोचना सभा, साहित्यिक गोष्ठी, पुस्तक विमोचन, पुरस्कार वितरण, वार्षिक उत्सव आदि में शिरकत करता नजर आने लगा। भाषण देते-देते वह एक दक्ष वक्ता भी बन गया और उसके कानों को उसकी खुद की आवाज मीठी लगने लगी। इसके अलावा, उसने अपने अध्यापक मित्रों से अनुरोध करके कैसे उसकी रचना पर शोध होगा और उसकी कविता कैसे पाठ्यक्रम में शामिल की जाएगी, इसकी व्यवस्था भी की। यहाँ तक कि काफी प्रयास करके 'कविता भित्तिक' एक कार्यक्रम दूरदर्शन में भी प्रसारित करने में वह सफल हो गया।

इन सबका परिणाम यह था कि अखबारों में उसका नाम और फोटो छपने लगे। इसी क्रम में उदय प्रकाश साक्षात्कार भी देने लगा। पहले साक्षात्कार के लिए आनेवाले युवा पत्रकारों को उपेक्षा करनेवाला उदय प्रकाश अब उनसे अदब से मिलता और उनका सत्कार भी करने लगा। साक्षात्कार को अखबार में भेजने से पहले खुद देखकर उसमें संशोधन करने का परामर्श देने के साथ विषय-वस्तु से मिलता-जुलता फोटो भी उन्हें मुहैया करवा देता। धीरे-धीरे साक्षात्कार में सिर्फ साहित्य पर चर्चा न होकर कई और विषयों पर भी उसकी राय ली जाने लगी। यहाँ तक कि एक पत्रकार ने उसके खान-पान की रुचि के बारे में एक लेख लिखकर उसके साथ उदय प्रकाश की व्यंजन बनाते समय की एक फोटो भी प्रकाशित की। सभा में अपनी आवाज में जिस तरह उदय प्रकाश खुद मुग्ध रहता था, उसी तरह से अखबारों में प्रकाशित अपनी प्रतिकृति भी उसे आनंद देने लगी।

उदय प्रकाश उक्त कामों को करते हुए कविता भी निरंतर लिखता रहा। कम समय में वह कितना ज्यादा लिख पाएगा, यह उसके लिए एक अग्निपरीक्षा बन गया और अब तक खूब सतर्क रहकर, सुचिंतित रूप से कविता लिखनेवाला उदय प्रकाश आशु लेखक बन गया। कहना नहीं होगा कि इससे रचना के स्तर पर प्रभाव पड़ने लगा और पाठकों ने उसकी कविता को महत्त्व देना बंद कर दिया। पर चूँकि अब तक वह एक प्रतिष्ठित कवि बन चुका था, इसलिए उसकी कविताएँ पत्र-पत्रिका के पन्नों को अलंकृत करती रहीं, भले ही उसका कोई पाठक नहीं रहा।

इस तरह से तीव्र गति से लिखने के साथ-साथ वह अपनी हर पुरानी कविता का आमुख भी लिखता रहा, ताकि भविष्य में उसकी रचना का उपयुक्त मूल्यांकन होगा और कोई व्याख्याकार उसकी कविता को खींचतान कर गलत अर्थ नहीं निकला पाएगा। उसको इस बात का दुःख था कि उसकी कविता के गुण को लेकर अब तक उसे कोई उपनाम नहीं दिया गया था। अपनी पुरानी कविताओं को पढ़ने के बाद उदय प्रकाश को लगा कि उसे अस्तित्ववादी कवि कहा जा सकता है। इसलिए अपनी कविताओं की भूमिका लिखते समय लेखों को अस्तित्ववादी साँचे में डालने का प्रयास करने लगा और साक्षात्कार में इस बात की ओर स्पष्ट इशारा करने लगा। अपनी बातों में वह बताना चाहता था कि वह खुद एक नास्तिक था, इसलिए उसकी कविताएँ वस्तुवादी थीं और उसमें किसी भी तरह का कोई धार्मिक या आध्यात्मिक भाव नहीं था। उसने कविता की भूमिका में भी इस बात की ओर इशारा किया।

साहित्यिक कार्य के साथ-साथ वह अपने स्वास्थ्य की चिंता करता था, पर अपनी देखभाल करने में पूरी तरह निकम्मा और बेकार था। वह सुबह की सैर करने में आलस करता था, खाने-पीने में भी संयम नहीं रखता था और नियम से दवाई भी नहीं लेता था। हर बार जब भी अपना चेकअप के लिए अस्पताल जाता था तो डॉक्टर उसकी इस लापरवाही को लेकर नाराज हो जाते थे और उसकी उम्र को कुछ और घटा देते थे। आखिरी में डॉक्टर पर नाराज होकर उसने मान लिया कि वह अब ज्यादा दिन नहीं बचेगा और इस बात को स्वीकार कर लेने के बाद उसने कसरत करना, दवाई खाना और खान-पान में संयम बरतने को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया। अब उसने अपना सारा समय और शक्ति अपनी मौत की तैयारी में लगा दिया।

पहला काम उसने यह किया कि अपनी सारी चल-अचल संपत्ति के कागजात को इकट्ठा किया और पत्नी को सारा विस्तार से समझाया। पर पीले पड़ गए उन कागजातों में उसकी पत्नी का कोई आग्रह नहीं था। हर कागजात के महत्त्व और उसकी जरूरत पर, उदय प्रकाश के दिए गए भाषण पर, बस 'ठीक है', कहकर वह चुप रह जाती थी। सारे कागजात को अलमारी के एक खाने में रखकर उदय प्रकाश ने उसके ऊपर 'जमीन और रुपया-पैसा की जरूरत का कागजात' लिखकर रख दिया।

पर संपत्ति की तरह उसकी कविता का हिसाब-किताब कर किसी को समझा देना आसान नहीं था। अलमारी के बाकी खानों को खाली करके उसमें अपनी सारी साहित्यिक कृति को सुव्यवस्थित रखने में लग गया उदय प्रकाश। उसने अब नई

कविता लिखना बंद कर दिया। यहाँ तक कि सभा-समिति में जाना भी कम कर दिया और भविष्य में कैसे उसका समग्र साहित्य पाठक तक पहुँचे, इस काम में जुट गया।

इसके लिए जब वह अपना कवि-परिचय तैयार करने लगा तो उसे याद आया कि अनेक पुरस्कार उसे मिले तो हैं, पर देश का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान उसे अब तक नहीं मिला है। एक बार दिमाग में यह बात आते ही उसका दिमाग उक्त पुरस्कार की चिंता का केंद्रस्थल बन गया। उसे लगा कि जरूर किसी गहरी साजिश के तहत उसे इस सारस्वत सम्मान से वंचित किया गया है और उसी पल से वह जुट गया कि किसी भी तरह से, मरने से पहले उसे इस पुरस्कार को पाना होगा।

पर पुरस्कार पाने की प्रक्रिया आसान नहीं थी। कई स्तर में अनेक लेखकों की सिफारिश का सोपान पार कर आखिर में एक शीर्ष विचारक मंडली इसका फैसला करती थी। उदय प्रकाश प्रयास करने लगा कि कैसे हर स्तर पर उसी के नाम की सिफारिश की जाए! इसके लिए कई परिचित-अपरिचित लेखकों से भेंट करके उनकी खुशामद करना होगा। उदय प्रकाश इस काम में तन-मन से जुट गया। लेखकों को संतुष्ट करने का हर उपाय वह करने लगा, जैसे—युवा लेखकों की पुस्तकों की अतिरंजित और अतिशयोक्तिपूर्ण समीक्षा लिखना, पुस्तक विमोचन करना और वहाँ लेखकों की खूब प्रशंसा करना, लेखकों के जन्मदिन की तारीख ढूँढ़कर उन्हें शुभकामना भेजना, बुजुर्ग लेखकों के घर जाकर उनकी स्तुति करना, अपने बारे में तारीफ से भरे लेख, जहाँ भी प्रकाशित हुए थे, उसकी नकल सभी के पास भेजना, अपनी ताजी प्रकाशित पुस्तक में चाटुकारिता भरे शब्दों में संबंधित लेखक के नाम समर्पण कर उदारता के साथ सभी को बाँटना।

पर सारे प्रयासों के बाद भी जब उस साल पुरस्कार उसे हाशिए पर रखकर किसी और को दे दिया गया तो उदय प्रकाश कुछ दिन उदास रहा। उसका इतने दिनों से किया गया परिश्रम सिर्फ बेकार ही नहीं गया, बल्कि उसे महसूस हुआ कि सभी की नजर में अपने को सस्ता और उपहास का पात्र बना दिया था उसने। इतने दिनों से मेहनत कर बनाई गई उसकी भावमूर्ति अब नहीं थी। तबीयत खराब होने से पहले उसका जो एक नाम था, उसे अस्पताल से लौटकर आने के बाद से उसने खुद ही तोड़-फोड़कर एक अलग परिचय बना दिया था। वह जानता था कि पुरस्कार के पीछे दौड़ने के बाद उसकी ख्याति अब काफी निम्न स्तर की हो गई थी। खिन्नता से भरकर पुरस्कार देनेवाले विचारक मंडली को गाली दिया उसने और तय किया कि वह इसमें अपना ध्यान नहीं देगा वह।

पर अगले साल जब पुरस्कार दिए जाने की प्रक्रिया शुरू हुई तो उदय प्रकाश ने पिछली बातों को भूलकर, फिर एक बार जी-जान से उन लोगों की सेवा में अपने को लगा दिया, जो उसे पुरस्कार दिलवाने में सहायक हो सकते थे। छह महीने तक मशक्कत करने के बाद उदय प्रकाश एक तरह से निश्चित हो गया कि इस साल पुरस्कार उसे ही मिलेगा। यहाँ तक कि पुरस्कार मिलने पर वह क्या भाषण देगा, उसका एक प्रारूप भी उसने लगभग तैयार कर लिया।

इस तरह से मन-ही-मन पुरस्कार पा लेने के बाद मृत्यु के बाद उसकी स्मृति को कैसे बनाए रखा जाएगा, उस पर विचार करने लगा। उसके बच्चे विदेश में हैं और साहित्य में उनकी कोई रुचि नहीं थी। उसकी पत्नी की भी न तो उसमें और न ही उसकी कविता में कोई रुचि थी। इसलिए इन सब पर निर्भर करना बेकार था। उसे याद आया कि किसी लेखक ने, कहीं भविष्य में लोग उसे भूल न जाएँ, इसलिए मरने से पहले अपनी एक आदमकद मूर्ति बनवाकर रखवा दी थी। बहुत सोच-विचार करने के बाद उसने तय किया कि वह एक बेनामी संस्था तैयार करेगा, जो उसके मरने के बाद उसके साहित्य और स्मृति को सुरक्षित रखेगी। काफी मगजमारी के बाद उसने इस काम के लिए शांति, शिष्ट, डरपोक, धर्मभीरू युवक शुभाशीष को चुना और 'प्रतिमा पूजा परिषद् ट्रस्ट' बनाया, जिसका मुख्य और एकमात्र ध्येय होगा, उसकी मृत्यु के बाद उसकी कविता का प्रकाशन, प्रचार-प्रसार और उसकी वार्षिकी, वैचारिकी का पालन करना।

इस तरह से अपने जीवन को हर तरह से सुव्यवस्थित कर, भविष्य के लिए कार्यनीति और संस्थान की योजना बनाकर उदय प्रकाश ने शांति की साँस ली, साथ ही यह भी समझ लिया कि उसने एक सफल जीवन जीने के साथ-साथ भविष्य में लोग उसे किस नजरिए से देखेंगे और जानेंगे, उसकी भी व्यवस्था कर दी है। अब बस इंतजार था उस सर्वोच्च पुरस्कार को हासिल करने का! पर उदय प्रकाश के जीवन में यही एक अफसोस रह गया। पुरस्कार की घोषणा होने के एक दिन पहले ही उन गरमी भरे दिनों की उस दोपहरी में सो रहे उदय प्रकाश का देहांत हो गया।

उदय प्रकाश को सबकुछ हलका लग रहा था। छत पर तैरने की अवस्था में नीचे बिस्तर पर लेटे हुए अपने शव को वह देख रहा था, पर बिल्कुल भी भारीपन महसूस नहीं कर रहा था। वह देख रहा था, सुन रहा था, मनमाफिक घूम-फिर पा रहा था और सारी बातों का आभास हो रहा था उसे। उसके पास विचार करने की शक्ति भी बची थी। अपनी तरफ देखकर वह जान गया कि उसका कोई आकार नहीं और वह संपूर्ण अदृश्य है। फिर भी उसके लिए यह एक आनंददायक अनुभूति थी।

शव के चेहरे को देखकर उसने अनुमान लगाया कि चेहरा शांत, विचारमग्न और पूरी तरह से एक कवि जैसा है। इस बात ने उसके मन में संतोष भर दिया। अब उसकी नजर पड़ी शव के चेहरे पर उड़ रही एक मक्खी पर। उसने नीचे आकर मक्खी को भगाने की कोशिश की, पर मक्खी उसके भीतर से होकर गुजर जा रही थी, इसलिए मक्खी को वह भगा नहीं पाया। इस बात से खीझकर वह फिर ऊपर चला गया और बाकी लोगों की तरफ देखने लगा।

उसने सोचा था कि लोग ऊँची आवाज में रो रहे होंगे, पर ऐसा कुछ नहीं हो रहा था। मौत की खबर पाकर आस-पड़ोस के जो लोग उसके घर पहुँच रहे थे, उनके चेहरे पर दु:ख नहीं, बल्कि ऐसे असमय में शव की जिम्मेदारी आन पड़ने की खीज साफ नजर आ रही थी। उसकी पत्नी शव को छोड़कर रसोई की ओर चली गई, अतिथियों के लिए चाय बनाने की खातिर। लब्बोलुआब यह कि एक प्रसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर जो होना चाहिए, उसने जो-जो कल्पना की थी कि उसकी मौत पर फूलों का ढेर लग जाएगा, टेलीविजन का कैमरा उस पर घूम रहा होगा, ऐसा कुछ नहीं हुआ था। उदय प्रकाश उद्विग्न होकर इंतजार करता रहा कि लोगों की भीड़ कब शुरू होगी? पर समय बीतने के साथ जो कुछ हुआ, उसके बारे में उदय प्रकाश ने बिल्कुल भी कल्पना नहीं की थी। उसने सोचा था कि बच्चों को तार भेजा जाएगा और उनके आने तक उसके शव को फूलों से सजाकर बर्फ की सिल्ली पर लिटाकर रखा जाएगा, ताकि दूर-दराज से आनेवाले उसके प्रशंसकों को उसका आखिरी दर्शन करने का मौका मिल जाए। उसने एक कागज में अपने शव-सत्कार का विस्तृत निर्देश लिखकर रखा था। नास्तिक होने के चलते वह चाहता था कि उसके शव को विद्युत् दाहगृह में जला दिया जाए, किसी भी तरह का कोई धार्मिक कृत्य और कर्मकांड न हो। पर उसकी पत्नी पूजा-पाठ में विश्वास करती थीं। पत्नी से जब किसी ने उदय प्रकाश की अंतिम इच्छा के बारे में बताया, तो 'ऐसे कैसे होगा? वे आस्तिक थे या नास्तिक थे, यह एक अलग विषय है, पर वे हिंदू तो थे न! इसलिए सबकुछ विधि के अनुसार ही होगा, चाहे वे कुछ भी लिखे हों।' इतना कहकर उदय प्रकाश की पत्नी ने टेप रिकॉर्डर लाकर गीता का श्लोक लगा दिया।

शुभाशीष अपने दल के साथ वहाँ पहुँचा तो उदय प्रकाश आश्वस्त हुआ। उनके साथ फोटोग्राफर और अखबारवाले थे। वे टेलीविजन के प्रतिनिधियों का इंतजार कर रहे थे। उसी समय उसकी पत्नी आकर बोली कि जितनी जल्दी हो सके, शव को घर से बाहर ले जाना होगा। उदय प्रकाश की इच्छा हुई कि चिल्लाकर बोले कि यह उसकी इच्छा के विरुद्ध है! पर कितना भी प्रयास किया, लेकिन अपनी बात

किसी के पास वह पहुँचा नहीं पाया और पड़ोसियों की मदद से उसकी पत्नी ने जितना जल्दी हो पाया, उसके शव को ले जाकर हिंदू श्मशान घाट में विधि अनुसार कर्मकांड पूरा कराकर उसका क्रिया-कर्म संपन्न करवा दिया। यह सब देखकर उदय प्रकाश का मन पूरी तरह से टूट गया और उसने पत्नी से मन हटाकर शुभाशीष के कार्यक्रम पर ध्यान दिया।

वह खुश था कि उसकी मौत की खबर को रेडियो और टेलीविजन पर प्रसारित किया गया और दूसरे दिन अखबारों ने भी फोटो के साथ उसकी मौत की खबर को प्रकाशित किया गया। शुभाशीष पूरे दिन शोकसभा के आयोजन में व्यस्त रहा और शाम को दूर से उदय प्रकाश यह देखकर संतुष्ट हुआ कि उस शोकसभा में शहर के नामी-गिरामी लोग आए थे और कइयों ने शोक संदेश भी भेजा था। सभा में सभी ने उसका गुणगान किया। यहाँ तक कि कुछ लेखक, जिनसे उसकी अनबन थी, उन्होंने भी उसके विरोध में कोई बात नहीं कही। पर उसके साहित्यिक कर्म के बारे में वहाँ उपस्थित लोगों ने अपना जो मत रखा, वह उदय प्रकाश के मनमाफिक तो नहीं था, फिर भी पूरी व्यवस्था काफी संतोषजनक थी। यद्यपि शुभाशीष मुख्यमंत्री से शोक संदेश लाने में सफल नहीं हो पाया, फिर भी उदय प्रकाश को लगा कि अपनी स्मृति की रक्षा करने के लिए उसने एक उपयुक्त आदमी को नियुक्त किया है।

उसके दूसरे दिन वकील उसके घर गया, उसकी वसीयत के बारे में पत्नी से बात करने। उदय प्रकाश ने सोचा था कि खबर पाकर उसके बच्चे भी आ गए होंगे! पर पत्नी की बातचीत से पता चला कि उसने उन्हें आने से इसलिए मना कर दिया था, क्योंकि दाह-संस्कार के समय तक वे पहुँच नहीं पाएँगे। वसीयत पढ़ने पर जब पत्नी को पता चला कि कुछ रुपया एक ट्रस्ट को दे दिया गया है तो उसने फिर वकील से ठीक से बातचीत नहीं की और वकील के लिए मँगाई गई चाय के आने से पहले ही उसे विदा कर दिया। घर के कोने से उदय प्रकाश ने इस दृश्य को भी देखा, पर उसे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि उसे अपनी पत्नी का स्वभाव कैसा है, यह पता था।

जिस दिन शुभाशीष, उदय प्रकाश के घर पहुँचा, उस दिन उसकी पत्नी का गुस्सा चरम पर था। शुभाशीष कुछ कहता, उससे पहले ही पत्नी ने शिकायत किया कि उदय प्रकाश की शारीरिक, मानसिक कमजोरी का फायदा उठाकर उसने उसकी संपत्ति में अपना हिस्सा बना लिया। शुभाशीष ने बहुत समझाया कि इसमें उसका कोई भी स्वार्थ नहीं है और सारा पैसा उदय प्रकाश की स्मृति को बनाए रखने में खर्च होगा, फिर भी पत्नी संतुष्ट नहीं हुई। शुभाशीष ने जब उदय प्रकाश का गुणगान

करना शुरू किया तो उदय प्रकाश को खुशी हुई, पर उसकी पत्नी खिन्नता से भरकर बोली, "रहने दो। इतना भला बनने की जरूरत नहीं है। तुम लोगों के लिए वे बड़े कवि होंगे, उन्हीं के रुपए से उनकी पूजा करते रहो। मैं उनके सारे कागजात तुम्हें दे दूँगी, इसके बाद इस घर के दरवाजे पर कदम मत रखना।" इतना कहकर उसने अलमारी में करीने से सजाकर रखी गई उदय प्रकाश की रचनाओं को बड़ी बेदर्दी से खींचकर निकाला और लाकर शुभाशीष के सामने पटक दिया।

उदय प्रकाश ने उसी समय तय किया कि उसके साहित्य के प्रति इस तरह से संपूर्ण विमुख और उदासीन पत्नी के साथ अब वह और कोई संबंध नहीं रखेगा। पर दो दिन बाद जब टेलीविजनवाले उसकी पत्नी का साक्षात्कार लेने आए, तब उदय प्रकाश वहाँ उपस्थित रहने के लोभ से बच नहीं सका। इस अवसर के लिए उसकी पत्नी ने अपनी सबसे सुंदर पोशाक पहनी, अपना खूब श्रृंगार किया और अतिथियों के लिए जलपान की व्यवस्था भी की। बैठक में सबसे आरामदायक सोफे पर चैठकर, चेहरे पर पड़े रहे तेज प्रकाश की तरफ देखते हुए बहुत ही आत्मविश्वास के साथ वह प्रश्नकर्ता को उदय प्रकाश के बारे में बताने लगी। कैमरे की तरफ देखते हुए उसने कहा, "हर कविता लिखने के बाद सबसे पहले वे मुझे ही पढ़ने के लिए देते थे और जब तक मैं सम्मति नहीं दे देती, कविता को कहीं छपने के के लिए नहीं थे। मैं उनकी कविताओं की पहली पाठिका थी और समालोचक भी।" पत्नी की सुनकर उदय प्रकाश अवाक् रह गया, पर आगे जो भी बातें पत्नी ने कहीं, वे ... भी अचरज से भरी थीं। उसने कहा, "उन्होंने जो भी प्रेम कविताएँ लिखी थीं, वे सब मुझे लेकर लिखी थीं।" उसने यह भी कहा, "मेरे पति हमेशा ही एक पत्नीव्रती थे। सिर्फ कुछ साल जाने किस मायाविनी के जाल में फँसकर मुझसे दूर हो गए थे, पर बाद में अपनी गलती का अहसास करके मेरे पास वापस लौट आए। पर उदय प्रकाशजी ने उस औरत को लेकर कोई कविता नहीं लिखी थी।" बहुत सहजता से उसकी पत्नी इस तरह की संपूर्ण मनगढ़ंत बातें कहती जा रही थीं और उदय प्रकाश उसके कथन का प्रतिवाद न कर पाकर छटपटा रहा था। जब उसकी पत्नी से उदय प्रकाश के धार्मिक होने-न होने के बारे में पूछा गया तो पत्नी तटस्थता के साथ बोली, "वे बाहर यह दिखाना चाहते थे कि वे नास्तिक हैं, पर असल में वे पूरी तरह से एक आस्तिक थे। सुबह पूजा-पाठ किए बिना कोई काम शुरू नहीं करते थे।"

इस तरह की अनवरत झूठी बातें सुनकर उदय प्रकाश का मन टूट गया और वह वहाँ से उठकर शुभाशीष क्या कर रहा है, देखने चला गया। उसी दिन शुभाशीष ने ट्रस्ट के फंड से कुछ रुपया निकाला था और उसका उपयोग शराब खरीदने में

किया था। उसके साथ पाँच और युवा लेखक शराब की बोतल को घेरकर बैठे थे। उदय प्रकाश के घर से वह जो कागजों का पुलिंदा लेकर आया था, वह घर के एक कोने में पड़ा था। उदय प्रकाश को वहाँ का परिवेश बहुत ही अशिष्ट और बदसूरत लगा। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि शुभाशीष शराब पीता होगा। सबने गिलास में शराब डालकर जब उसका नाम लेते हुए पहला घूँट लिया, उससे उदय प्रकाश का मन कुछ आश्वस्त हुआ।

शराब पीकर हलके नशे में सब उदय प्रकाश के लिए प्रशंसा भरी बातें करते रहे, पर बोतल के खत्म होते ही सबके उत्साह का जैसे भट्ठा बैठ गया। एक ने कहा, "शुभाशीष सोच रहा है, जैसे उसकी यह खून-पसीने की कमाई है। जिसका पैसा है, वह साला तो मर-खप गया। अंततः उसके जैसों के पैसे का सद्व्यवहार तो हो!" शुभाशीष बोला, "मेरा पहला दायित्व है, संपूर्ण कविता संचयन प्रकाशित करवाना, फिर बाकी बातें।" दूसरे ने कहा, "पुस्तक के लिए तो हमें काम करना होगा, उसके लिए हमें हर रोज मिलना होगा और शराब के बिना काम कैसे हो भला! तू एक काम कर, एक दर्जन बोतल खरीदकर रख ले। पास में बोतल होगी तो साथ-साथ पुस्तक का काम भी तेजी से चलता रहेगा।"

शुभाशीष से पैसा लेकर उनमें से एक स्कूटर से बाजार चला गया, शराब और भोजन लाने के लिए। अब वे सब पुस्तक छपवाने के बारे में बातें करने लगे। हर कविता के लिए उदय प्रकाश ने आमुख लिखा था, उसके बारे में आपस में चर्चा करने लगे। काफी तर्क-वितर्क करने के बाद यह तय किया गया कि पुस्तक में इन आमुखों को नहीं रखा जाएगा, क्योंकि कविता-संग्रह में इस तरह का कोई प्रचलन नहीं है। उसकी इतनी मेहनत को इस कदर आसानी से खारिज कर देने से उदय प्रकाश दुःखी हो गया।

उसे और ज्यादा धक्का तब लगा, जब दूसरी बोतल में से शराब पीते-पीते सबका हाव-भाव बदल गया और बातचीत एक अलग रंग लेने लगी। शांत-शिष्ट, डरपोक स्वभाव का शुभाशीष अब सबसे ज्यादा उग्र नजर आने लगा और उसकी बातचीत में संयम का अभाव दिखने लगा। वह ऊँची आवाज में बोलने लगा, "मेरे पास क्या इस काम के लिए समय था? पर बुड्ढे ने विनती की तो मैं मान गया। उनसे ज्यादा अच्छे कई और कवि हैं। पर क्या किया जाए? जिम्मेदारी जब लिया हूँ तो पूरा करना ही होगा।" इसके बाद सब उदय प्रकाश की कविताओं की आलोचना करने लगे। कुछ देर पहले जो लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे, वही अब उसकी कविताओं में नुक्स निकालकर उसे नीचा दिखा रहे थे। उदय प्रकाश इस बात से

और ज्यादा आहत हुआ कि उसका सबसे बड़ा समालोचक था शुभाशीष। खिन्न होकर उदय प्रकाश वहाँ से हट गया।

उसके दूसरे दिन, शुभाशीष के घर जाकर उदय प्रकाश खुश हो गया, यह देखकर कि शुभाशीष पहले जैसा शांत था और उसके कविता-संग्रह को प्रेस में भेजने के लिए तैयारी कर रहा था। उदय प्रकाश ने उसके पीछे खड़े होकर पुस्तक के खुले पन्नों पर नजर डाली। एक पुरानी कविता की पंक्ति उसे नजर आई, जिसकी पहली पंक्ति थी—'हे ईश्वर, उन्हें माफ करो।' इस कविता के आमुख में उसने लिखा था कि इसमें ईश्वर बस एक शब्द है और उनके अस्तित्व को वह मान रहा है, यह बात बिल्कुल भी नहीं है। शुभाशीष की पेंसिल इसी पंक्ति पर रुक गई थी। उदय प्रकाश जानता था कि शुभाशीष बहुत धार्मिक स्वभाव का है, पर यह नहीं जानता था कि वह जगन्नाथ का परम भक्त है। शुभाशीष उस पंक्ति को पेंसिल से काटने लगा। उदय प्रकाश ने उसे ऐसा न करने देने के लिए पूरा प्रयास किया, पर शुभाशीष ने लिख दिया—'हे जगन्नाथ, अपनी श्रद्धा के बालू में से कुछ दे दें।'

उदय प्रकाश ने तय कर लिया कि भविष्य के लिए और चिंता किए बिना वह इन ठगों को छोड़कर अपनी आत्मा के लिए स्वर्ग या नरक में जगह ढूँढ़ने के लिए चला जाएगा। पर उसके मन में उस पुरस्कार के बारे में जानने का लालच आ गया। उस बारे में जानकारी हासिल करने के लिए सटीक दिन चयन परिषद् की सभा में जब पहुँचा तो वहाँ पुरस्कार को लेकर गहमागहमी के साथ ही खूब गरम बहस चल रही थी। पर आश्चर्यजनक रूप से इस गरमा-गरमी का प्रसंग पुरस्कार के लिए प्रस्तावित प्रतिद्वंद्वी लेखकों की कृति पर नहीं था, बल्कि तर्क-वितर्क का विषय था कि एक मृत व्यक्ति को पुरस्कार दिया जाए या नहीं? उनमें से एक ने मरणोपरांत पुरस्कार पानेवालों के नाम गिनाए। पर दूसरे एक सदस्य का मत था कि मृत व्यक्ति को पुरस्कार देने से लाभ कुछ नहीं होता है, पर जो जीवित हैं, उसका नुकसान जरूर हो जाता है। इस तरह से देर तक बहस चलती रही। जो उद्योगपति इस पुरस्कार को दे रहे थे और जो अभी की सभा की अध्यक्षता कर रहे थे, उन्हें अपनी दूसरी एक सभा में जाने की हड़बड़ी थी। साहित्यकारों को किसी निर्णय पर न पहुँचते देखकर आलोचना का उपसंहार करते हुए उन्होंने निर्णय सुना दिया कि पुरस्कार दोनों लेखकों में बाँट दिया जाए। आधे पुरस्कार की आधी खुशी लेकर उदय प्रकाश वहाँ से लौट आया।

इस लोक से पूरी तरह से विदा लेकर चले जाने से पहले उदय प्रकाश चाहता था कि अपनी संपूर्ण कविताओं के संचयन को एक पुस्तक के रूप में वह देख ले

और उसकी मौत की वार्षिकी में लोग उसे किस रूप में याद रखे हैं, यह जान ले। शुभाशीष के घर पर शराब की महफिल के बीच तैयार अपने जिस कविता-संग्रह को उसने देखा, उसका आकार-प्रकार, कागज, मुखपृष्ठ, अक्षर कुछ भी उसके मनमाफिक नहीं था। पुस्तक खोलकर जब वहाँ उपस्थित कवियों ने पन्ना पलटा तो उदय प्रकाश ने देखा कि शुभाशीष ने उसमें कई जगह अपनी इच्छानुसार काफी काट-छाँट कर रखा था। उदय प्रकाश ने उम्मीद बाँधी कि शायद भविष्य में कोई उसकी कविता के साथ लिखे गए आमुख को भी जोड़कर एक शुद्ध संस्करण तैयार करेगा। पर दीवार के पास जिस जगह उसके कागजात रखे हुए थे, उदय प्रकाश ने देखा कि वह जगह खाली थी। शुभाशीष की बातचीत से उसे पता चला कि चूँकि पुस्तक छपने के लिए प्रेस में जा चुकी थी, इसलिए उन पुराने कागजात को रद्दी में बेच दिया गया।

अब बस बाकी रह गई थी उसके बरसी के दिन की बात। बहुत ही निस्पृह भाव से उदय प्रकाश ने मंच पर नजर डाली। संस्कृति विभाग के मंत्री के साथ मंच पर उसकी पत्नी, शुभाशीष और उस सभा में गानेवाले कलाकार और संगीतज्ञ विराजमान थे। सभा में काफी भीड़ थी। पर बाद में पता चला कि भीड़ बस गीत सुनने के लिए जुटी थी, क्योंकि गीत के बाद सभागार लगभग खाली हो गया था। उसके बाद जो कुछ मंच पर से कहा गया, उसमें उदय प्रकाश का मन नहीं लगा, क्योंकि ऐसा लग रहा था, मानो वे किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में बता रहे थे, व्याख्यान दे रहे थे! उसके व्यक्तित्व, स्वभाव, गुण के बारे में जो कुछ भी वर्णन किया गया, उससे उदय प्रकाश के चरित्र का कोई सामंजस्य नहीं था और उसकी कृतियों का जो विश्लेषण किया गया, वह बिल्कुल ही अलग था। जिन दो व्यक्तियों से वह बहुत ज्यादा असंतुष्ट था, वे थे—शुभाशीष और उसकी पत्नी, पर वे ही सभा के मुख्य आकर्षण थे और वक्ताओं के भाषण का वे काफी उपभोग कर रहे थे। खिन्न होकर मंच के दाहिनी तरफ कुरसी पर फूलमालाओं से सजी अपनी तसवीर की तरफ देखा उदय प्रकाश ने। किसी सस्ते, बेनाम चित्रकार से तैयार करवाई गई थी उसकी तसवीर। उदय प्रकाश को लगा कि यह तथाकथित चित्र बिल्कुल भी उसके जैसा नजर नहीं आ रहा था।

□

शब्द भेद

जब हम कॉलेज में पढ़ रहे थे, तभी से जानते थे कि भवनाथ एक-न-एक दिन पागल हो जाएगा। वह तब कविता लिखता था और मानता था कि जुनून की हद तक प्रेम में पड़ा हुआ है। वैसे कॉलेज में पढ़ाई करते समय सभी कविता लिखते थे और सोचते थे कि वे सभी प्रेम में हैं। पर भवनाथ हम सभी में से अपने को कुछ ज्यादा गंभीरता से लेता था और बहुत ज्यादा बात करता था। कॉलेज के पास की उस छोटी सी चाय की दुकान पर उसकी बकवास सुनकर, खीजकर वहाँ से सभी चले जाते, तो भी वह चुप नहीं रहता और दुकान के मालिक को अपनी कहानी सुनाता रहता। कॉलेज में उसका कोई खास मित्र नहीं था, पर सभी से वह औपचारिक संबंध बनाए हुए था।

कॉलेज के दिनों में भवनाथ के कविता लिखने की सामर्थ्य को लेकर हमारी विशेष आस्था नहीं थी। भवनाथ बहुत अद्भुत किस्म की कविता लिखता था, इसलिए उसकी कविताएँ कहीं प्रकाशित नहीं होती थीं; और इसमें अचरज करने जैसी कोई बात नहीं थी। मुझे याद है वह दिन, जब हाथ में एक पत्रिका लेकर तूफान की तरह चाय की दुकान पर पहुँचा वह। उस समय दुकान में ज्यादा भीड़ नहीं थी। हम चारों जिस टेबल को घेरकर बैठे थे, वहीं एक कुरसी खींचकर भवनाथ बैठ गया और अपनी पहली प्रकाशित कविता को पढ़कर सुनाने लगा। कविता का शीर्षक था—'आरोह-अवरोह' और उसमें बस छह पंक्तियाँ थीं—

"दूबघास बरगद
चींटी हाथी
मनुष्य ईश्वर
ईश्वर मनुष्य

हाथी चींटी

बरगद दूबघास।"

कविता अगर एक जानी-मानी पत्रिका में प्रकाशित नहीं होती तो भवनाथ के इस काव्यिक प्रयास को हम उसकी बाकी बातों की तरह हँसकर उड़ा देते। पर वह कॉलेज का एकमात्र प्रकाशित कवि था, इसलिए हमें उसका भाषण सुनना पड़ा। उस छोटी सी कविता की आड़ में वह हमें समझाने लगा कि एक कविता लिखने के पीछे साधना की जरूरत है। उदाहरणस्वरूप, भवनाथ ने हमें समझाया कि इस छह पंक्ति की कविता लिखने के पीछे कैसे उसे छह महीने का समय लग गया! यह आरोह कैसे सिर्फ दूबघास से बरगद और चींटी से हाथी तक ही नहीं, बल्कि दूबघास से चींटी और चींटी से मनुष्य तक है। इस आरोह के साथ डार्विन के नेचुरल सलेक्शन के सभी सिद्धांत भी कैसे आंगिक रूप से जुड़े हुए हैं, इस बात को भी कहना वह नहीं भूला। आखिरी में भवनाथ ने इलियट, पाउंड जैसे कवियों का उदाहरण देते हुए अच्छी कविता क्या है, इस विषय पर छोटा सा एक भाषण दिया।

इस बार किसी ने भी उसकी बात को हँसी में नहीं उड़ाया; बल्कि मुझे लगा कि हम में से जो भी एक प्रतिष्ठित कवि होने का सपना देख रहा था, वह मन-ही-मन उससे ईर्ष्या कर कर रहा था। हम सब चाय पीकर जाने के लिए उठ ही रहे थे कि किसी ने दुर्भाग्य से पूछ लिया कि चींटी में बड़ी 'ई' की मात्रा होनी चाहिए या छोटी 'इ' की मात्रा ? भवनाथ जैसे इस प्रश्न के लिए तैयार था। अपने झोले में से—यहाँ मैं बता दूँ कि हम में से भवनाथ ही एकमात्र ऐसा था, जो कवि की ही तरह कपड़े पहनता था और कंधे पर झोला लटकाए रखता था—एक शब्दकोश निकालकर दिखाया और प्रमाणित किया कि उसने जो वर्तनी लिखी है, वही शुद्ध है। इसके अलावा, उसने यह भी बयान दिया कि उस पर एक साधारण कवि होने का आरोप लग सकता है; यह जानते हुए भी उसने क्यों 'पिपीलिक' या 'पिपीलिका' शब्द का व्यवहार न करते हुए 'चींटी' शब्द का ही उपयोग किया।

इस कविता को प्रकाशित होने के बाद से भवनाथ अपने को एक प्रतिष्ठित लेखक मानने लगा; और दाढ़ी बढ़ाने लगा। वैसे तो उसके बाद बहुत दिनों तक उसकी दूसरी कोई कविता प्रकाशित नहीं हुई, फिर भी कॉलेज में एक कवि के रूप में उसे स्वीकृति मिल गई थी। अब वह बात-बात पर अपने झोले से शब्दकोश बाहर निकालकर विभिन्न शब्दों के अर्थ और उनके प्रयोग को लेकर तर्क-वितर्क करने लगा था। कोई इस पर उससे सवाल करता तो उलटे तर्क करते हुए कहता, "शब्द

तो ब्रह्म हैं!" फिर बाइबल के किसी वचन का उदाहरण देकर कहता, "प्रारंभ में सिर्फ शब्द था और वही ईश्वर में तब्दील हुआ।"

परीक्षा खत्म होने के बाद कॉलेज के अंतिम दिन हम सभी ने आपस में अपने-अपने पते का आदान-प्रदान किया। पर बहुत दिन तक आपस में संपर्क रखना किसी के लिए संभव नहीं हो पाया। फिर नौकरी पाकर सभी इधर-उधर चले गए। मेरी भी नौकरी एक दूसरे शहर में हो गई। कभी-कभार पत्र-पत्रिकाओं में भवनाथ की कविता देखता तो सोचता कि वह भी नौकरी कर रहा होगा कहीं और शौक के कारण बीच-बीच में कविता लिख रहा होगा। उसकी कविताओं को समझना मेरे लिए कठिन होता था। चूँकि मैं भवनाथ को पहले से जानता था, इसलिए मेरे मन में कभी-कभी यह बात आती थी कि पाठक को मूर्ख प्रमाणित करने के लिए ही शायद वह ऐसी कविताएँ लिख रहा था।

छुट्टी में जब मैं घर आता था तो कभी-कभार किसी पुराने मित्र से मेरी मुलाकात हो जाती थी और उनसे बातचीत के क्रम में पता चलता कि भवनाथ उस समय किसी अखबार में काम कर रहा था और वहाँ उसे सभी कवि के तौर पर जानते थे। एक बार कौतूहलवश मैंने उसके ऑफिस में फोन किया। भवनाथ मुझसे बात करके खुश हुआ। और तय हुआ कि शाम को उसी पुरानी चाय की दुकान में हम मिलेंगे।

चाय की दुकान पर जब मैं पहुँचा तो भवनाथ वहाँ नहीं पहुँचा था। चाय की दुकान ठीक पहले जैसी ही थी। पर मुझे वह पहले से कुछ ज्यादा सँकरी और गंदी सी लगी। ऐसा अनुभव अपने बदले हुए दृष्टिकोण के चलते हो रहा है या कोई और बात है, मैं इस पर सोच ही रहा था कि उसी समय भवनाथ आ गया। चाय का ऑर्डर देने के बाद अपने देर से आने का कारण बताते हुए वह बोला कि एक शब्द को लेकर उसका संपादक के साथ झगड़ा हो गया। उसकी बात सुनकर मैं समझ गया कि अब वह शब्द के तात्पर्य पर एक भाषण देगा। पर उस समय तक संपादक के साथ अपने झगड़े की बात को वह भूल नहीं पाया था शायद, इसलिए कुछ देर चुप बैठा रहा वह। उसी बीच मैंने उसे कुछ गौर से देखा। भवनाथ पहले जैसा ही था, ठीक पहले जैसा पागल कवि सा! मेरे जो बाकी पुराने मित्र हैं, उन सभी से जब भी मुलाकात होती थी, तो हम सब अपने बच्चे, उनकी पढ़ाई, बढ़ती महँगाई और खुद के स्वास्थ्य के बारे में बात करते थे। पर मैंने पाया कि भवनाथ पहले जैसा ही था। वही अकेला ऐसा था, जिसकी मानसिकता में परिवर्तन नहीं हुआ था, उसने पुरानी बातों से अपने संबंध को काट नहीं दिया था।

चाय की दुकान का मालिक, जिसे मैंने तो आठ साल बाद भी पहचान लिया था; पर उसने मुझे नहीं पहचाना, भवनाथ के पास आकर उसकी कुशलता के बारे में पूछने लगा। भवनाथ अफसोस जताते हुए उससे बोला कि उसका तो चाय की दुकान पर हर दिन आने का मन करता है, पर ऑफिस के काम के चलते उसे हर दिन देर हो जाती है। उसकी बात सुनकर मुझे लगा कि वह किसी जिम्मेदारी भरे काम में व्यस्त है। जब मैंने उसके काम के बारे में पूछा तो उसने अपनी जेब से एक मैग्नीफाइंग ग्लास निकालकर मुझे दिखाया। मैं उसकी आँखों के बारे में पूछने ही जा रहा था कि भवनाथ ने काँच को वापस जेब में रखते हुए, झोले में से एक शब्दकोश बाहर निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिया। अक्षर बहुत छोटे-छोटे थे, इसलिए पढ़ने में कठिनाई हो रही थी। पर मैंने देखा कि भवनाथ आसानी से पढ़ ले रहा था। फिर उसने मुझे बताया कि उसका मुख्य काम प्रूफ रीडिंग का है। और यह भी बताया कि हर शब्द को ठीक से देखने के लिए सिर्फ दृष्टि शक्ति ही पर्याप्त नहीं होती है, बल्कि हर शब्द को दूसरे शब्द से अलग कर उसकी बारीकी से जाँच करनी पड़ती है।

चाय पीने के बाद हम अपने वही पुराने कॉलेज के लॉन में जाकर बैठ गए। मुझे लगा कि मैं अपने आपको इस पुराने परिवेश से जोड़ नहीं पा रहा था। पर भवनाथ बहुत ही आराम से घास पर पालथी मारकर बैठ गया। फिर मुझसे वह मेरे बारे में सारी बातें पूछने लगा। मैंने उसे पत्नी, परिवार और नौकरी में अपनी प्रगति के बारे में बताया। अपनी बात कह लेने के बाद मैंने उसके बारे में जानना चाहा। वह बहुत ही संक्षेप में अपने बारे में बताते हुए बोला कि कॉलेज के दिनों में जैसे वह अकेला रहता था, अभी भी वैसे ही अकेला रहता है। और जब भी समय मिलता है, तब कविता लिखता है। उसने अपनी कविता की कॉपी मुझे देखने के लिए दी। अपनी उन पुरानी आरोह-अवरोह वाली कविताओं के बाद वह बहुत सारी कविताएँ लिख चुका था। वैसे तो उसके कवित्व को लेकर मेरे मन में अच्छी धारण नहीं थी, फिर भी बोला, "अच्छी बात है कि तूने लिखने का सिलसिला जारी रखा है।" उसने मुझसे पलटकर सवाल किया, "आजकल कविता-वविता पढ़ता है कि नहीं?" मैं बोला, "हाँ, कभी-कभार नजर डाल लेता हूँ।" भवनाथ ने अपनी कविता की कॉपी लेकर बहुत ही सँभालकर अपने झोले में रखी और 'ओहो!' कहकर अफसोस सा जाहिर किया। मैं समझ गया कि भवनाथ का भाषण अब शुरू हो जाएगा और वही हुआ भी।

थोड़ा और अच्छे से आलथी-पालथी मारकर बैठते हुए भवनाथ बोला, "सिर्फ नजर डाल लेने से कविता पढ़ लिया है, ऐसा नहीं होता है। कविता पढ़ते समय

हर शब्द को बारीकी से देखना होता है।" अपनी बात पर जोर देने के लिए हाथ में पकड़े, मैग्नीफाइंग ग्लास को दिखाते हुए बोला, "हर शब्द को, पूरे वाक्य को पढ़ने भर से कुछ लाभ नहीं होता है। जैसे इस वाक्य को लो, हेमलेट अपनी माँ से कहता है—'यू आर यूअर हसबैंड्स ब्रदर्स वाइफ' (You are your husband's brother's wife), बहुत ही साधारण सी बात है, जिसमें हरेक शब्द साधारण है—तुम अपने पति के भाई की पत्नी हो। पर आपसी संगत में ये सारे शब्द कैसे खतरनाक हो सकते हैं, देखा न? यही कुछ शब्द उसकी माँ को, उसकी अपनी आत्मा को देखने के लिए कह रहे हैं; और उसे उसकी नासमझी, पाप और उसके घिनौने व्यवहार के बारे में सावधान कर रहे हैं।" इतना कहने के बाद थोड़ी देर चुप रहा भवनाथ, फिर बोला, "अर्थ के लिए हमें बहुत बार शब्द के भीतर से होते हुए बाहर की दुनिया में भी जाना पड़ेगा।"

अपनी बात कहकर भवनाथ फिर चुप हो गया। मैं तब उसके दार्शनिक भाषण को हृदयंगम करने की कोशिश करने लगा। आखिरी में, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि हो सकता है, शेक्सपियर जैसे लेखक की रचना में शब्द के बाहर भी उसका कोई अर्थ निहित हो सकता है! पर मामूली कविता, जैसे भवनाथ की 'आरोह-अवरोह' कविता में क्या गूढ़ अर्थ हो सकता है?

पर मेरी यह धारणा गलत थी, यह बात बहुत दिनों बाद समझ पाया मैं। बातों-बातों में भवनाथ बोला था, "यही शब्द ही एक दिन आग बनकर सबकुछ जला देगा।" लेकिन भवनाथ की कविता में से स्कुलिंग निकलकर समाज के अन्याय-अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिए ईंधन का इंतजाम करेगा, इस बारे में मेरे मन में बहुत संदेह था। भवनाथ अपनी कविता के लिए जेल गया, यह खबर जब मैंने सुनी तो समझ गया कि जरूर कहीं-न-कहीं बड़ी गलती हो गई है! बाद में मुझे पता चला कि अपनी कविता 'आरोह-अवरोह' के लिए या ठीक से कहा जाए तो कविता के आधे हिस्से के लिए, उसे जेल जाना पड़ा। मैं तब बहुत दूर था, इसलिए विस्तृत जानकारी नहीं मिली थी।

दस-बारह साल पहले उस कविता को लिखते समय भवनाथ को पता नहीं था कि हाथी निशान पर एक प्रार्थी निर्वाचन में खड़े होंगे और उनके विरोधी दल के उम्मीदवार उनकी इस बुलंद इच्छा के पूरा होने में अड़चन डालने और कठिनाई खड़ा करने के लिए 'आरोह' कविता का उपयोग करेंगे! इसी वाद-विवाद में भवनाथ का नाम भी आया। हाथी निशान को अपना चुनाव चिह्न बनानेवाले प्रार्थी ने सोचा कि अगर भवनाथ उनके पक्ष में एक इश्तिहार लिखें तो उनके लिए चुनाव

लड़ना आसान हो जाएगा। पर उनके अनुरोध को भवनाथ ने ठुकरा दिया और विरक्त होकर उस उम्मीदवार को साफ शब्दों में पत्र लिखकर बता दिया कि उसे जो कुछ कहना था, कविता में उसने कह दिया है और इस विषय पर उसे अब कुछ और नहीं कहना है। भवनाथ के लिए यह दुर्भाग्य की बात थी कि हाथी निशानवाला उम्मीदवार चुनाव जीत गया और उसके कुछ दिन बाद आपातकालीन परिस्थिति की आड़ में भवनाथ को जेल भेज दिया गया।

भवनाथ के साथ दुबारा मेरी मुलाकात उस समय हुई, जब उसी पुराने शहर में मेरा तबादला हुआ। भवनाथ अपना केस जीत गया था और जेल से रिहा हो गया था। उसके रिहा होने पर विरोधी दल ने जब भवनाथ की कविता के दूसरे हिस्से का अपने हित में उपयोग करना चाहा तो भवनाथ ने उन्हें भी सीधे-सीधे मना कर दिया।

भवनाथ जब जेल गया तो उसकी नौकरी चली गई। जेल से बाहर आने के बाद बहुत मुश्किल से उसे फिर अपनी वही पुरानी नौकरी मिल गई। हालाँकि, जेल जाने और जेल से बाहर आने तक भवनाथ बहुत प्रसिद्ध हो गया। उसकी कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। चर्चित कवियों में उसका नाम गिना जाने लगा।

मैंने उसे फोन किया तो कॉलेज की उसी चाय की दुकान पर मिलने की बात उसने कही। पर तब तक मैं नौकरी में कुछ और तरक्की कर चुका था, इसलिए उस चाय की दुकान पर जाने में संकोच का अनुभव करने लगा। बहुत सोच-समझकर आखिर में मैंने उसे अपने घर पर बुलाया। पर भवनाथ बोला, चूँकि वह अपने घर में अकेला रहता है तो वहीं बातचीत आसानी से हो सकती है, इसलिए मैं उसके घर आ जाऊँ। शाम को अपनी गाड़ी उसके घर की गली से काफी दूर खड़ी करके, मैं पैदल उसके घर पहुँचा। भवनाथ मेरा इंतजार कर रहा था। एक कमरे वाले उस मकान में पुस्तकों का जखीरा था। खाट के एक कोने से पुस्तकों को हटाकर मेरे बैठने के लिए जगह बनाई भवनाथ ने। मैंने जब उससे जेल जाने के बारे में पूछा तो बोला कि जेल जाने की बात को लेकर उसके मन में कोई ग्लानि नहीं है; बल्कि उसका कहना था कि जेल के भीतर उसे अपनी मानसिक स्थिति को सँभालने का मौका मिला; और उसके चलते उसे लगता है कि अब वह और भी अच्छी कविताएँ लिख पाएगा।

मेरे लिए चाय बनाने के लिए भवनाथ उठकर कोने में रखे स्टोव के पास गया। मुझे समझ में आया कि अपने कामों के लिए वह पूरी तरह से आत्मनिर्भर है। मैंने गौर किया कि अब बहुत गंभीर हो गया है वह। उसका चेहरा, चाल-चलन, बातचीत, हाव-भाव सबकुछ देखकर लग रहा था कि वह उच्च बौद्धिक स्तर पर

पहुँच गया है। कॉलेज में पढ़ते समय उपहास का पात्र बननेवाला भवनाथ वर्तमान के इस भवनाथ से बिल्कुल अलग था। अब मुझे उसकी 'आरोह-अवरोह' कविता हास्यास्पद नहीं लग रही थी। भवनाथ के इस नए व्यक्तित्व ने मानो उसके पूरे अतीत को भी एक नया रंग दे दिया था!

चाय का पानी जब उबलना शुरू किया तो मैंने भवनाथ से पूछा, "क्या तुम सच में सोचते हो कि शब्द के जरिए विप्लव संभव हो सकता है?"

गिलास में चाय छानते हुए भवनाथ बोला, "तू तो साला एस्टेब्लिशमेंट का एक कुत्ता है, तू क्या समझेगा?" मेरी सरकारी नौकरी को लेकर भवनाथ के इस तरह के आक्षेप के लिए मैं तैयार नहीं था। मैं गुस्से से हाथ में पकड़ी पुस्तक को फेंकते हुए उठकर खड़ा हो गया। भवनाथ ने एक गिलास चाय लाकर मेरे पास रखा और मेरा हाथ पकड़कर खाट पर बैठाते हुए निर्लिप्त मुसकान के साथ बोला, "देखा, दो-चार असंलग्न शब्द कैसे किसी को गुस्सा दिला सकते हैं।" भले ही मुझे सँभलने में कुछ समय लग गया, पर भवनाथ अपनी बात बहुत सटीक और तीखे रूप में मुझ तक पहुँचाने में सक्षम हुआ था। फिर वह शब्दों की क्षमता के बारे में जब मुझे समझाने लगा तो कुछ मिनट पहले की सारी बातों को मैं भूल गया और भवनाथ के प्रति मेरे मन में श्रद्धा का भाव उपजने लगा।

"शब्द एक अस्त्र है," भवनाथ मुझे समझाते हुए बोला, "उसका जो जितनी सफलता के साथ व्यवहार कर सकता है, वह उतना क्षमतावान होता है। 'एलिस इन द वंडरलैंड' में हम्प्टी-डम्पटी ने क्या कहा था? 'मैं जब एक शब्द को व्यवहार करता हूँ तो मैं जो चाहता हूँ, शब्द वही बयान करता है। न कम, न ज्यादा।' पर कितने लेखक हैं, जो यह बात कह सकेंगे? मैं किसी लड़की से प्रेम करता हूँ और अपना प्रेम निवेदन करते हुए उसे पत्र लिखता हूँ। पर मेरे सारे प्रयासों के बावजूद अगर वह यह मानने को तैयार नहीं कि मैं उससे प्रेम करता हूँ तो बताओ, इससे क्या पता चलता है? इससे यही पता चलता है कि मेरा शब्दों पर कोई नियंत्रण नहीं है।"

बात के इस क्रम को मैंने उससे पूछा, "कॉलेज के दिनों में तू जिस लड़की से प्रेम करता था, उसका क्या हुआ?" मेरा प्रश्न सुनकर अचानक गंभीर हो गया भवनाथ। फिर बोला, "हाँ, तुझे सारी बातें बताऊँगा, पर आज नहीं, किसी और दिन। वैसे अच्छा किया कि पुरानी बात याद दिला दी। नहीं तो आजकल पुरानी बातें याद नहीं आती हैं। मेरी प्रेम कविताओं में उसकी अमूर्त छाया जरूर होती है, पर अब वह याद नहीं आती है।"

उसके बाद वहाँ से मैं घर चला आया। पता नहीं, मेरा उस तरह से उससे प्रश्न पूछना उचित था या नहीं? मुझे लगा, भवनाथ ने उस दिन बिना खाए-पिए अनिद्रा में रहकर पुरानी बातों को याद किया होगा। कारण, जब वहाँ से मैं चला तो भवनाथ बहुत अनमना सा हो गया था। मैंने गौर किया कि धीरे-धीरे मैं भवनाथ के प्रति श्रद्धालु होता जा रहा था। इस बीच भवनाथ के एक प्रकाशित कविता-संकलन को लाकर भी पढ़ा। उसमें से शुरुआती कुछ कविताओं को मैं समझ पाया, पर बाद की कविताएँ मेरी समझ से परे थीं।

कुछ दिन बाद उससे मिलने उसके घर गया और उसकी कविताओं की जटिलता के बारे में उसे बताया। उस दिन उसका मिजाज बहुत अच्छा था। मुझसे पूछा, "अगर तेरे पास समय हो तो दो-चार घंटे रुको, सब समझा दूँगा।" मैं बैठने जा रहा था तो मुझे रोकते हुए बोला, "नहीं, आज यहाँ नहीं, चल बाहर कहीं चलते हैं।" उसके घर में ताला लगाने के बाद दो-चार अँधेरी गलियों से गुजरते हुए हम जिस जगह पहुँचे, वह एक निर्जन इलाका था। पास में एक तालाब नजर आया। चारों तरफ इतने पेड़ थे कि बाहर की रोशनी अंदर नहीं आ पा रही थी। टॉर्च जलाकर तालाब के किनारे-किनारे चले तो एक टूटा सीमेंट का बेंच दिखाई दिया। हम दोनों उस पर जाकर बैठ गए। भवनाथ ने अब टॉर्च बंद कर दी। चारों तरफ फिर अँधेरा छा गया। भवनाथ बोला, "परेशान मत हो, थोड़ी देर में चाँद उग आएगा।"

फिर हम दोनों कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। मेरे कर्ममय जीवन की व्यस्तता में मेरे लिए यह एक नया अनुभव था। एक मील दूर अपनी कार को रखकर एक कवि के साथ पैदल चलते हुए निर्जन तालाब के किनारे चाँद के उगने का इंतजार! सच में अद्भुत अनुभूति थी। उस सन्नाटे से भरे परिवेश में बैठकर मैं भवनाथ की कविताओं के बारे में सोचने लगा। उन कविताओं की असंलग्न पंक्तियाँ मेरे दिमाग में घुसने लगीं। मुझे लगा, मानो जैसे वे पूरी तरह असंलग्न नहीं थीं, बल्कि एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं और उनमें गंभीर अर्थ निहित हैं। मैं ऐसी एक स्थिति में था, जहाँ दूबघास, बरगद, चींटी, हाथी सभी अपने आप में संपूर्ण और सार्थक थे।

चुप्पी को तोड़ते हुए भवनाथ ने बात करना शुरू किया। अपनी कविता की जटिलता के बारे में बात न करते हुए अपनी पुरानी प्रेम-कथा के बारे में बोलने लगा वह। "उस लड़की की बात याद है तुझे? साइंस की छात्रा थी!" मैं याद करने लगा, पर मुझे ठीक से याद नहीं आया, इसलिए कॉलेज की एक लड़की के बारे में पूछा था। पर अब उसके इस विवरण को उस लड़की के चेहरे पर चिपकाकर उसकी बात सुनने लगा। उसी समय ऊपर आसमान में चाँद उग आया। पत्तों की ओट में

चाँद का कुछ हिस्सा नजर आने लगा और तालाब के पानी का कुछ हिस्सा चाँदनी से जगमगाने लगा।

"कॉलेज में पढ़ते समय उन चार साल में हमने एक-दूसरे को जाने कितने खत लिखे, इसका कोई हिसाब नहीं है। कई बार तो दिन में दो-दो खत भी लिखे। छुट्टी में जब वह घर चली जाती थी और दो-चार दिन उसकी चिट्ठी नहीं आती थी तो मुझे ऐसा लगता था कि मेरी साँसें बंद हो जाएँगी और मैं मर जाऊँगा। कॉलेज की आखिरी परीक्षा के बाद वह घर चली गई और कुछ दिन तक उसकी कोई चिट्ठी नहीं आई। मैं उसके घर जाकर उसकी खोज-खबर लूँ या नहीं, यही सोचता रहा कि तभी उसका खत आया, जिसमें लिखा था कि उसकी शादी तय हो गई है। खत पढ़कर लगा कि मेरे सिर पर जैसे आसमान टूट पड़ा हो! मैं खाना-पीना छोड़कर बिस्तर पर लेटकर बस सोचता रहा। कई बार मन में आया कि वहाँ पहुँचकर शादी तोड़ दूँ! फिर सोचा कि जब उसने मुझे बस अपनी शादी की सूचना देते हुए पत्र लिखा है तो फिर उसका विवाह हो जाना ही ठीक रहेगा। मैं चुप रहा और उसकी शादी हो गई।"

भवनाथ ने आगे बताया कि छह महीने बाद उसने खत लिखा कि वह अब ऐसे जी नहीं पाएगी। भवनाथ आकर उसे कहीं और ले जाए। पहले तो भवनाथ कुछ समझ नहीं पाया कि उसे क्या करना चाहिए? उसका खत किसी के हाथ लग सकता है, यह जानते हुए भी बहुत सावधानी बरतते हुए उसने उसे खत लिखा। उसका जवाब भी बहुत जल्द उसे मिल गया। फिर वे दोनों पहले की तरह एक-दूसरे को पत्र लिखे लगे। वह हर खत में लिखती कि भवनाथ जाकर उसे अपने पास ले आए। भवनाथ पत्र में ही उसे समझाता। सोच-समझकर कदम उठाने की बात करता, पर वह अपनी बात पर अड़ी रहती।

आखिर में भवनाथ ने तय किया कि वह जैसे भी हो, लड़की के पास जाएगा। उसने यह बात खत में लिखकर बताया। पर जवाब में लड़की ने लिखा कि इस समय वह बहुत परेशान है, क्योंकि उसका पति बीमार है। भवनाथ ने सोचा कि अगर वह आदमी मर जाए तो सारी समस्या का समाधान हो जाएगा। यह बात उसने खत में भी लिख दी। उसके कुछ ही दिन बाद लड़की का खत आया कि गलत दवाई खाने के चलते उसके पति का देहांत हो गया। और खत में यह भी लिखा कि उससे कई गुप्त बातें भी उसे कहनी हैं, इसलिए जितना जल्दी हो सके, उससे मिलने आ जाए।

भवनाथ ने इस खत का बहुत दिनों तक कोई जवाब नहीं दिया। और न ही लड़की से मिलने का कोई प्रयास ही किया। वह हर दिन यही उम्मीद करता रहा कि

लड़की की तरफ से और एक खत आएगा। पर इंतजार करने के बाद भी कोई खत नहीं आया तो भवनाथ उससे मिलने निकल पड़ा। लेकिन उसे यह पता नहीं था कि इतने दिनों से जिससे उसका कोई संबंध नहीं रह गया था, उसके साथ यह मुलाकात कैसी होगी? अपरिचित शहर के उस अज्ञात घर के सामने पहुँचकर एक बच्चे के हाथों उस लड़की को खबर पहुँचाई।

उस बच्चे ने आकर खबर दी कि भवनाथ से मिलने वह नहीं आ पाएगी। पर कहीं यह खबर गलत हो, यही सोचकर वह उम्मीद लगाकर वहीं खड़ा रहा। फिर लड़की का नाम लेकर उसे पुकारा। कुछ देर बाद लड़की बाहर आई। भवनाथ ने सोचा था कि वह विधवा के वेश में होगी। पर वह गहनों से सजी लाल रंग की साड़ी पहनकर दरवाजे पर खड़ी थी। भवनाथ ने घर के भीतर जाने के लिए जैसे ही पाँव बढ़ाया, उसकी तरफ देखते हुए लड़की ने तेज आवाज में 'नहीं' कहते हुए उसके मुँह पर दरवाजा बंद कर दिया।

इतना कहकर भवनाथ चुप हो गया। तब तक चाँद ऊपर उठ चुका था। वह निर्जन, अँधेरों से घिरी हुई जगह तब तक चाँदनी की रोशनी में नहा गई थी। इस परिवेश के साथ भवनाथ की कहानी एक ऐंद्रजालिक वातावरण की सृष्टि कर रही थी। उस कहानी की चरित्रों के साथ भवनाथ और मुझे याद आनेवाली उस लड़की का मानो कोई संबंध नहीं था। मैं जैसे मन के भीतर एक काल्पनिक कहानी की पुनरावृत्ति को ही देख रहा था।

उस इंद्रजाल को काटते हुए अचानक भवनाथ बोला, "तू मुझसे कविता की जटिलता के बारे में पूछ रहा था न? चलो, अभी जो कहानी मैंने तुम्हें सुनाई, उनमें से सारे चरित्रों को हटा दिया जाए।" कोई और समय होता तो भवनाथ की यह बात मुझे असंगत और अतार्किक लगती, पर मुझ इस समय लगा कि यह संभव है। मैंने भवनाथ, वह लड़की, उसका पति, उसकी दुनिया को इस कथा से अलग कर दिया।

भवनाथ बोला, "ठीक है, अब उसमें से सारे संवाद, सारी भावनाओं को अलग कर दो।" मैं आँखें बंद करके उन सारी चीजों को भूल गया।

भवनाथ ने पूछा, "अब बाकी क्या रह गया? कुछ दु:ख, कुछ अंतर्दाह, कुछ समझ?"

भवनाथ अब उठकर खड़ा होते हुए बोला, "चल, अब चलते हैं।" हम जब चाँदनी रात में उस निर्जन इलाके से बाहर निकलने लगे, तब अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए भवनाथ बोला, "अब समझा कविता क्या है? जो कुछ बाकी रह गया, वही कविता है।"

गाड़ी चलाते हुए जब मैं घर की ओर लौट रहा था तो यह तय नहीं कर पाया कि भवनाथ ने जो कहानी मुझे सुनाई, वह उसकी जीवन में घटी थी या मुझे कविता की जटिलता को समझाने के लिए, उदाहरण के रूप में गढ़कर वह कहानी सुनाई थी? उस रात भवनाथ की कविता की पुस्तक खोलकर पढ़ने लगा तो ऐसा लगा, जैसे उसकी सारी कविताओं में तात्पर्य है और मैं उसकी हर कविता को समझ पा रहा था।

उसके बाद उस शहर में जब तक रहा, बीच-बीच में भवनाथ से मैं मिलने जाता रहा। भवनाथ जब भी कोई नई कविता लिखता, मुझे पहले दिखाता। मैं उसे पढ़कर उसका रसास्वादन कर खुश होता। फिर मेरा तबादला दूसरे शहर में हो गया। भवनाथ तब मुझे बीच-बीच में खत लिखता। अपनी नई कविता भेजता। फिर एक समय ऐसा आया, जब बहुत दिनों तक उसने कोई खत नहीं लिखा। उसके बारे में सोचकर और परेशान होकर मैंने उसको खत लिखा। मेरे उस खत का जवाब उसने बहुत दिन बाद दिया। खत के साथ उसने जो कविता भेजी थी, उसे मैंने पहले पढ़ा। अद्‌भुत किस्म की कविता थी। उस कविता में ऐसे अक्षरों के समाविष्टि से बने शब्द थे, जिनका कोई अर्थ नहीं था। शब्दों में आपस में कोई संबंध नहीं था। बस, कुछ श्रुति मधुर शब्द थे। खत में उसने लिखा था—"जानकर खुश होगा कि मैं फिर से प्रेम में पड़ा हूँ। कुछ दिन दिन पहले मैंने पढ़ा कि अमेरिका में रिसर्च करने के बाद वैज्ञानिक इस सिद्धांत पर पहुँचे कि दो व्यक्तियों के बीच भावों का आदान-प्रदान सात प्रतिशत शब्दों के जरिए होता है। अड़तीस प्रतिशत स्वर और बाकी पचपन प्रतिशत चेहरे के हाव-भाव से होता है।"

खत पढ़कर अचानक मैं यह बात तय नहीं कर पाया कि यह किस तरह का प्रेम है? क्या उसी लड़की से प्रेम हुआ है? या पूर्व घटना की तरह यह भी शक के घेरे में है?

उसके बाद भवनाथ की कविता मुझे फिर कहीं नहीं दिखी। मुझे खत लिखना भी उसने बंद कर दिया था। उसी समय किसी ने मुझे बताया कि भवनाथ पागल हो गया है।

पर मैं जानता था कि स्वस्थ मानसिक हालात में भवनाथ अपने उसी पुराने घर में है। और जब मैं उसके पास पहुँचूँगा तो देखूँगा कि अब उसने अपने शब्दकोश को एक तरफ हटाकर रख दिया है और एक टेप रिकॉर्डर के सामने बैठकर उसके साथ गंभीर बातचीत में मशगूल है।

□

साम्राज्य

एक जिम्मेदार, कर्मठ, अध्यवसायी, मेहनती और ईमानदार ऑफिसर के रूप में रघुपति का बहुत नाम था। पर उनके जिन गुणों के साथ लोग विशेष रूप से परिचित थे, वह था—उनका सख्त मिजाज, चिड़चिड़ा और मुँहफट स्वभाव। इन गुणों के परिपूरक स्वरूप वे मोटे फ्रेम का चश्मा पहनते थे, सिगार पीते थे और एक कुत्ता पाल रखा था। उनका कुत्ता भी रूखे स्वभाव का था। लोगों को देखता तो दाँत निकालकर भौंकते हुए काटने के लिए दौड़ता। रघुपति जहाँ भी जाते, कुत्ते को भी अपने साथ लेकर जाते। लोग उस काले जानवर को रघुपति के जीवन-चरित्र के विस्तार के रूप में देखते। उनके पास बंदूक तो नहीं थी, पर पास और दूर की चीजों को देखने के लिए वे दो अलग-अलग चश्मे रखते थे। एक चश्मा वे जब लगाते थे तो दूसरा चश्मा उनके हाथ में गोलियों से भरी बंदूक-सा दिखाई देता था। उन्हें देखकर 'गर्भवती गाय भी रास्ता छोड़ दे,' जैसी अप्रचलित कहावत लोगों को याद आ जाती थी। वैसे तो हर कोई उनके काम की प्रशंसा करता, पर उनके सामने जाने से हर कोई कतराता था।

जिलाधिकारी बनकर आने के कुछ दिन बाद ही रघुपति ने पूरे जिले में अपने कठोर अनुशासन का डंका बजा दिया। उनके पूर्वाधिकारी भद्र, विनम्र, धर्मपरायण और लोकप्रिय थे, पर अपने काम के मामले में बिल्कुल ही निकम्मे थे। रघुपति के आने के बाद जिला प्रशासन की आबोहवा पूरी तरह से बदल गई। ऑफिस के कमरों में लगे ताले समय पर खुलने लगे और सभी कर्मचारी समय पर आने लगे। सालों से मृत पड़ी फाइलों में अचानक जान आ गई। ऑफिस के कमरों में धूल-गर्द, जाले नजर आने बंद हो गए। पूर्व जिलाधिकारी के काम के बारे में जब कोई बात होती तो लोग कहते कि वे बहुत अच्छे आदमी थे। लोग

इस तरह के विचार जब उनके बारे में व्यक्त करते थे तो उनका नक्कारापन छिप जाता था। और ठीक उसी तरह से रघुपति के बारे में जब कहा जाता था कि वह एक अच्छा ऑफिसर है, तो इसका अर्थ होता था कि इनसान की तौर पर वे बिल्कुल भी अच्छे नहीं थे। इससे एक निष्कर्ष यह निकलता था (वैसे यह प्रामाणिक या तार्किक नहीं है) कि एक अच्छा इनसान कभी भी अच्छा ऑफिसर नहीं हो सकता है और एक अच्छा ऑफिसर कभी भी एक अच्छा इनसान नहीं हो सकता है।

खैर, जो भी हो, रघुपति एक कड़क ऑफिसर थे, इसमें कोई शक नहीं था। अनुशासन, कायदा-कानून और अपने गांभीर्य को वे केवल ऑफिस के भीतर सीमित न रखते हुए अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक जीवन में भी बरकरार रखे थे, जिसके चलते उनका घर भी जिला-प्रशासन का एक छोटा संस्करण बन गया था। इसमें उनकी पत्नी, बच्चे और घरेलू नौकर-चाकर सभी अपनी-अपनी स्थितियों के मुताबिक रघुपति के नियम-कानून के अधीन थे। उदाहरणस्वरूप, वे अपनी पत्नी के साथ वे ऐसा व्यवहार करते थे, मानो वे दूसरे दर्जे की अधीनस्थ कर्मचारी हों! अपनी संतानों को कभी भी वे चौथे दर्जे के कर्मचारी से ऊपर नहीं रखते थे। मोटे तौर पर कहा जाए तो रघुपति एक निरंकुश, एकच्छत्र सम्राट् थे और घर-ऑफिस के साथ पूरा जिला उनका विस्तृत साम्राज्य था।

इस आदर्श परिस्थिति में एक विशेष व्यतिक्रम थी, रघुपति की सबसे छोटी बेटी। वह ज्यादातर समय बीमार रहती थी। उम्र के हिसाब से वह बढ़ नहीं रही थी। हर तरह का इलाज करने और दवाई के बावजूद उसके स्वास्थ्य में कुछ भी बदलाव नहीं हो रहा था और यही बात रघुपति की चिंता और व्यग्रता का सबसे बड़ा कारण थी। विशिष्ट डॉक्टरों द्वारा बड़े-बड़े अस्पतालों में सालों इलाज करवाने के बाद भी परिणाम सिफर था। एलोपैथी से लेकर होमियोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी आदि पद्धतियों में हर तरह की जाँच-पड़ताल कर, इलाज करवाने के बाद रघुपति ने अब निराश होकर किसी भी डॉक्टर के पास जाना बंद कर दिया था। डॉक्टरों के बाद अब जिनकी बारी आई थी, वे थे—तांत्रिक, कापालिक, ज्योतिर्विद् और विभिन्न मतावलंबी साधु और संन्यासी।

रघुपति के अधीनस्थ कर्मचारियों को बहुत जल्द उनकी इस इकलौती कमजोरी के बारे में पता चल गया; इसलिए अब वे रघुपति को खुश करने के लिए अलग-अलग इलाकों से साधु-संन्यासियों को पकड़कर उनके पास पहुँच जाते। उनके घर में इसलिए अब गेरुआ वस्त्र पहने जटाधारी बाबाओं की भीड़ लगी रहती।

अपनी इस विशेष समस्या के बावजूद रघुपति कभी भी अपने कर्तव्य में कोई कोताही नहीं करते थे। समय की पाबंदी में कोई ढील नहीं करते थे। ठीक दस बजे वे ऑफिस पहुँच जाते और पूरे मनोयोग से अपना काम करते। नियमानुसार वे गश्त पर भी जाते थे। जहाँ भी गश्त में वे जाते, उस इलाके के अधिकारी इस निरीक्षण से बहुत ही भयभीत रहते। इसी तरह की एक गश्त के दौरान वे एक कार्यालय का परिदर्शन करने पहुँचे, तो देखा कि उस कार्यालय का निकम्मा, कामचोर ऑफिसर उनके सामने बैठकर अपने इष्ट देवता को याद कर रहा था। उसके होंठ काँप रहे थे, वह पसीने से तर-ब-तर था। रघुपति उससे उसके काम को लेकर जो भी प्रश्न पूछते, उसके उत्तर में बार-बार वह थूक निगलकर, खाँसते हुए गला खुजलाकर रह जाता, पर जवाब नहीं देता था। उसकी इस हरकत से रघुपति का गुस्सा बढ़ने लगा। अब ऑफिसर को यह डर लगने लगा कि रघुपति के गुस्से की आग में कहीं वह जलकर भस्म न हो जाए! इसलिए बहुत पहले से तैयार रखे अपने अमोघ अस्त्र का उचित अवसर मान वह रघुपति के सामने उसका इस्तेमाल करने के लिए तैयार हो गया।

गालियों की बौछार करते हुए रघुपति जब कुछ पल के लिए रुके तो साहस जुटाकर ऑफिसर ने अपना तीर छोड़ा, "सर, पशुपति आपसे मिलना चाहता था।"

"कौन पशुपति ?" गुस्से से झल्लाते हुए पूछा रघुपति ने।

ऑफिसर, जिसके मुँह से अभी तक एक भी शब्द नहीं निकल रहे थे, अचानक वाचाल हो गया और पशुपति के बारे में अनवरत बोलने लगा, "पशुपति उनके ऑफिस का एक साधारण चपरासी है, पर इस इलाके में 'अष्टावधानी' साधक के रूप में वह विख्यात है। उसके पास तंत्र ज्योतिष मालिका की अनेक पोथियाँ हैं। छुट्टी के दिन उसके घर पर लोगों की भीड़ जुट जाती है। कई तरह के प्रश्न को लेकर लोग उसके पास पहुँचते हैं। पोथी देखकर गणना कर पशुपति हर समस्या का समाधान निकालता है।"

इतना कहने के बाद ऑफिसर ने अंदाज लगाने के लिए कि उसके अस्त्र का कितना असर हुआ है, रघुपति की तरफ देखा। बहुत से साधु-संन्यासियों के तौर-तरीकों से पूरी तरह से परिचित रघुपति पर उसकी बात का खास प्रभाव नहीं पड़ा है, यह बात समझते ही बातचीत के विषय को पूरी से बदलते हुए वह बोला, "पशुपति को बीच नौकरी से बरखास्त कर दिया गया था।"

"क्यों ?" कुछ उत्सुकता के साथ पूछा रघुपति ने।

ऑफिसर को समझ में आ गया कि उसका यह अस्त्र काम कर रहा है, इसलिए अपनी बात आगे बढ़ाते हुए वह बोला, "किसी से बिना कहे और ऑफिस

से छुट्टी लिये बिना पशुपति एक बार हिमालय चला गया तपस्या करने के लिए, यह बात उसके घरवालों को भी पता नहीं थी। बस उसके गाँव के ही कुछ लोग थे, जिन्होंने केदार-बदरीनाथ की यात्रा के दौरान एक दाढ़ीवाले बकरे की पीठ पर बैठकर पशपुति को वृहत हिमालय की तरफ जाते हुए देखा था। पाँच साल बाद अपने आप वह गाँव लौट आया। उस समय तक उसे नौकरी से निकाल दिया गया था। बाद में गाँववाले, यहाँ तक कि उस इलाके के मंत्री की सिफारिश पर उसे नौकरी में बहाल कर दिया गया।

"किस नियम के तहत पाँच साल बिना किसी दरखास्त के गायब रहनेवाले पशुपति को फिर से नौकरी में बहाल किया गया?" यह पूछने ही जा रहे थे रघुपति कि उनके चेहरे का भाव देखकर ऑफिसर समझ गया और बोला, "बहुत दिनों से मंत्री का भानजा साँस की बीमारी के चलते तकलीफ में था। पशुपति ने उसे एक ही हफ्ते में ठीक कर दिया।"

रघुपति के मन में संदेह होने लगा कि यह अयोग्य, निकम्मा ऑफिसर उसकी कमजोरी का फायदा उठा रहा है, इसलिए फिर से उसके काम के बारे में प्रश्न पूछने के बारे में वह सोचने लगा। पर मंत्री के भानजे के स्वस्थ हो जाने की घटना उन्हें कुछ द्वंद्व में डाल रही थी। वह कुछ और सोचते, इससे पहले ही ऑफिसर सतर्क हो गया और खुद जाकर हाथ-जोड़े पशुपति को लाकर जिलाधीश के सामने खड़ा कर दिया।

खाकी ड्रेस में हाथ जोड़कर खड़े इस बिना दाढ़ी के बहुत ही साधारण आदमी को देखकर रघपुति बहुत निराश हो गए। पर बात की सच्चाई को परखने के लिए उन्होंने अपना काररवाई वहीं स्थगित कर सारे कागजपत्र समेट लिये। पशुपति की तरफ से उसी समय अचानक कहीं से चाय-बिस्कुट का इंतजाम हो गया और परिस्थिति सहज हो गई। अब ऑफिसर ने निडरता के साथ साहब की तरफ तिरछी नजर से देखते हुए पशुपति से सवाल किया—

"क्यों साहब की बेटी ठीक तो हो जाएगी न?"

पशुपति ने आँखें बंद करके भगवान् का नाम लिया। और बोला, "सब उन्हीं कृपासागर की इच्छा।"

उसका उत्तर दो अर्थवाला था और रघपुति के लिए विशेष आश्वासन भरा नहीं था। ऑफिसर को भी यह बात समझ में आई। उसने आगे पूछा, "साहब कब तुम्हारे पास आएँ?"

"हुजूर, जब चाहें।" पशुपति ने जवाब दिया।

"कल इतवार है, कैसा रहेगा? कल तुम्हारी पूजा का दिन है न?"

"इतवार के दिन कैसे पूजा नहीं होगी? और फिर कल तो पूर्णिमा भी है। कल हुजूर अवश्य पधारें।"

चपरासी को विदा करने के बाद ऑफिसर ने रघुपति के चेहरे को पढ़ने की कोशिश की। अभी तक पूरी तरह से प्रभावित नहीं हुए थे रघपुति। उन्हें और सोचने का मौका न देते हुए ऑफिसर बोला, "सर, कल तो इतवार है। यहीं पास में पशुपति का घर है। सोच रहा हूँ कि एक बार चलकर देख आने में कोई हर्ज नहीं है।"

मना नहीं कर पाए रघुपति, पर बोले, "मेरे पास तो कुंडली नहीं है।"

पशुपति को फिर बुलाया ऑफिसर ने। पशुपति आकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तो ऑफिसर ने पूछा, "सर, कल तुम्हारे गाँव जाएँगे। क्या बेटी की कुंडली जरूरी है?"

"जन्म, तारीख और लग्न याद हो तो भी चल जाएगा।"

"अच्छा, अब तुम जाओ।" कहते हुए ऑफिसर ने चपरासी को बाहर भेजने के बाद साहब से पूछा, "सर, आपको जन्म, तारीख और लग्न याद है न?" रघपुति के 'हाँ' कहने पर ऑफिसर दूसरे दिन गाँव जाने की तैयारी में तुरंत जुट गया। तय हुआ कि भोर में ही निकलेंगे, ताकि धूप तेज होने से पहले गाँव पहुँच जाएँ।

ऑफिसर की तरह पशुपति भी कामचोर था। ठीक समय पर ऑफिस नहीं आता था। अपना काम पूरा नहीं करता था! ऑफिसर को खुद पशुपति की दैविक शक्ति पर विश्वास नहीं था। वह कभी उसके गाँव नहीं गया था, न ही उससे किसी तरह की सलाह लिया था। इसलिए उस रात से पहले उसने पशुपति के गाँव के बारे में जानकारी लिया, फिर ड्राइवर को रास्ते के बारे में समझाया और अगली सुबह रघुपति जिस डाकबँगले में रुके थे, वहाँ पहुँच गया। वह ठंड का शुरुआती दिन था। सुबह-सुबह हलकी ठंड रहती थी। रघुपति सूट पहनकर, कुत्ते को तैयार कर सात बजे डाकबँगले से बाहर निकले। ड्राइवर ने जब कहा कि वहाँ बहुत भीड़ होगी, तो ऑफिसर बोला, "चिंता की कोई बात नहीं है। साहब का काम वह पहले करा देगा।"

चपरासी का गाँव बहुत दूर था और रास्ता बहुत उबड़-खाबड़, इसलिए वहाँ पहुँचने में बहुत समय लग गया। धूप तेज हो गई थी और रघुपति के पास बैठा कुत्ता बिना कारण भौंकने लगा। रघुपति उसे चुप कराते, उससे पहले ही ऑफिसर बोला, "सामने जो झाड़ियों का जंगल नजर आ रहा है, उसे पार करते ही हम अपने ठिकाने पर पहुँच जाएँगे।" पर झाड़ियों को पार करने के बाद सड़क नजर आई और फिर

झाड़ियों का जंगल नजर आने लगा। ऑफिसर रघुपति को बहलाने के लिए कई अप्रासंगिक बातें कहकर उन्हें खुश करने की कोशिश करने लगा।

जब वे तय जगह पर पहुँचे, तब तक सूरज काफी ऊपर चढ़ चुका था। धूप और कुछ गुस्से के कारण रघपुति का चेहरा लाल हो रहा था। कुत्ते ने भी जोर-जोर से भौंकना शुरू कर दिया था। गाँव के मुहाने पर मेला तो नहीं लगा था, पर लोगों की भीड़ नजर आ रही थी। धूप, भूख, बक-बक करते अधीनस्थ कर्मचारी और कुत्ते के भौंकने के चलते उकता से गए रघुपति झल्लाते हुए गाड़ी से उतरे। वहाँ पहले से खड़े अधीनस्थ कर्मचारी का मातहत उनका स्वागत करते हुए चपरासी के घर की तरफ चल पड़ा। गाँव के अगले सिरे पर पशुपति का घर था। धूल से भरी सँकरी गली में नंगे बच्चों के हुजूम के बीच में से होते हुए सभी आगे बढ़ने लगे। पसीने से तर-ब-तर काले सूट में बहुत ही तंग महसूस कर रहे थे रघुपति। गाँव के लोगों के लिए वे एक देखने की चीज बन गए थे। कुछ दूर आगे बढ़े तो गाँव के बीच एक तोरण नजर आया, जिसे देखकर रघुपति सोचे कि उनके स्वागत के लिए बना है तोरण। पर जब देखा कि बंदनवार पशुपति के घर तक सजाया गया है तो उनकी वह धारणा दूर हो गई और वे निराश हो गए। पर किसी ने उन्हें समझा दिया कि यह सारी सजावट पूर्णिमा की पूजा के लिए की गई है।

"इस कुत्ते को कौन अंदर लाया?" किसी ने ऊँची आवाज में पूछा। रघुपति के पाँव वहीं थम गए। पीछे पलटकर देखा तो पाया कि दो आदमियों ने कुत्ते को वहीं रोक लिया है। ऑफिसर धीमी आवाज में उस आदमी से बोला, "विदेशी कुत्ता है साहब का, छोड़ दो।" पर कुत्ते को पकड़कर रखे हुए वह आदमी बोला, "गोसाईं का आस्थान यहीं से शुरू होता है। इसके भीतर कुत्ता, बिल्ली, मांस-मछली, सब वर्जित है। अपने कुत्ते की बिल्ली, मांस-मछली के साथ तुलना कर देनेवाले उस आदमी की तरफ आँखें तरेरकर देखा रघुपति ने, पर फिर अपने को संयत करते हुए एक कर्मचारी के हाथ कुत्ते की जिम्मेदारी देकर आगे बढ़ गए वह।

दो कदम आगे बढ़े ही थे कि देखा, तोरण का रुख दाहिने तरफ हो गया है। वहीं जूते-चप्पल रखे जा रहे थे। ऑफिसर बोला, "सर, आप जूते पहनकर चलिए। आगे जाकर उतार लीजिएगा। पर कुत्ते वाली घटना को याद कर जूते वहीं उतार दिए रघुपति ने। वैसे ही उस धूल भरे रास्ते में पसीने से तर-ब-तर यूँ खाली पाँव चलना प्रीतिकर तो नहीं था, फिर भी क्या करते रघुपति! उसी तरह से सिगार पीने की तलब का भी दमन कर लिया उन्होंने, क्योंकि पहले कुत्ता, फिर जूता, उसके बाद सिगार पीने का साहस वे नहीं कर पाए।

नई छाजन वाली उस झोंपड़ी की देहरी लाँघकर सभी गोसाईं की खास गद्दी तक पहुँच गए। छोटे से उस सँकरे आँगन में एक छोटा सा चंदुवा टँगा था, उसी के नीचे कुछ ऊँचाई पर एक आसन बिछा था। उस आसन पर पद्मासन में पशुपति विराजमान थे। उसके चारों तरफ धूप-दीप जल रहे थे। नहा-धोकर, वस्त्र पहन, चंदन-सिंदूर माथे पर लगाए चश्मा पहनकर हाथों में ताड़पत्र की पोथी लिये बुदबुदाते हुए वह कुछ पढ़ रहा था। उसके सामने आए कुछ प्रार्थी नीचे बैठकर अपलक उसे निहार रहे थे। वे सभी गरीब, गँवार लोग कई तरह की असाध्य बीमारी से पीड़ित थे और उसके निराकरण के लिए पशुपति के पास आए थे। उनमें से सिर्फ एक आदमी ऐसा था, जो साफ कपड़े पहनकर आया था। शायद वह कहीं बहुत दूर से आया था और अभी सिर झुकाए बैठा था। वहाँ पहुँचकर नीचे बैठने की व्यवस्था को देखकर ऑफिसर बोला, "सर जरा रुकिए, मैं कुरसी लेकर आता हूँ।" पर रघुपति को समझ आ गया था कि वह लौटकर नहीं आएगा; क्योंकि गाँव में कुरसी मिलने की संभावना नहीं के बराबर थी। और अगर मिल भी जाती तो भी गोसाईं से ऊँचे आसन पर बैठना धर्मद्रोह कहलाता, इसमें कोई शक नहीं था। इसलिए रघुपति मैले-कुचले लोगों के बीच बढ़ते हुए उस साफ-सुथरे व्यक्ति के पास जाकर पालथी मारकर बैठ गए। इतनी भीड़ में ठीक से बैठने के लिए भी जगह नहीं थी, ऊपर से उनकी विदेशी पोशाक नीचे बैठने के लिए नहीं बनी थी। सूरज उस समय ठीक ऊपर था और धूप सीधे उनके सिर पर पड़ रही थी।

रघुपति ध्यान से पशुपति की तरफ देखने लगे। पर पशुपति की नजर बस पोथी पर थी। उसने एक पोथी खोली और उसमें से कुछ अंश पढ़कर सामने बैठे आदमी को न समझ आनेवाली भाषा में कुछ बताने लगा। फिर उसने दूसरी पोथी खोलकर वही किया। बेचारा पता नहीं किस लाइलाज बीमारी से निजात पाने के लिए आया था, उसे पशुपति की कही बातें समझ में नहीं आ रही थीं। अब पशुपति उससे पूछने लगा, "पोथी में किसी चक्र का जिक्र आ रहा है। तुम्हारे घर में कोई चक्र है ?" रघुपति सोचने लगे, अगर गोसाईं उससे यही अद्भुत प्रश्न पूछते तो उसका उत्तर क्या होगा ? पर उस आदमी ने इसका सीधा सा जवाब दिया, "नहीं।" उसका उत्तर सुनने के बाद पशुपति कुछ ताजे पत्ते लेकर ताड़पत्र की उस पोथी पर घिसने लगा। फिर चश्मा को ठीक से पहनते हुए पूछा, "कोई चित्र है ?" उसने फिर 'नहीं' में जवाब दिया। अब पशुपति ने पास खड़े व्यक्ति से भाई को बुलाने के लिए कहा। पशुपति का भाई, जो उसे पोथी पढ़ने में सहायता करता था, आकर पोथी पर पत्र को और थोड़ा घिसते हुए शब्दों को शुद्ध रूप से पढ़ने की कोशिश करने लगा।

बहुत देर तक रघुपति सीधी नजरों से पशुपति को ताकते बैठे रहे। कुछ देर बाद पशुपति का चेहरा उनकी तरफ घूमा तो रघुपति ने सोचा कि अब उन्हें बुलाकर पहले वह उनकी समस्या का समाधान कर देगा। पर उनकी आँखों से आँखें मिलते ही पशुपति ने तुरंत नजरें फेर लीं और भाई की हाथ से पोथी खींचकर आँखों के सामने रखते हुए पढ़ने की कोशिश करने लगा। रघुपति का मन हुआ कि वहाँ से उठकर चला जाए। और खुशामद करनेवाले उस ऑफिसर के चरित्र प्रमाण-पत्र में उसके विरुद्ध लिख दे। साथ ही सारे नियम-कानून को ताक पर रखकर पुनर्नियुक्त किए गए इस पशुपति को नौकरी से निकाल दे, पर ऐसा नहीं कर पाया वह। इस तेज गरमी में साँस थामे भक्तों का इंतजार, चंदन, सिंदूर, सिल्क वस्त्र में शोभित गोसाईं, पुराने पोथी-पत्रों का ढेर आदि की तरफ कुछ भयभीत होकर देखते समय रघुपति को अपनी बेटी और मंत्री के भानजे का परिकल्पित चेहरा याद आया, फिर अपने विचार को उन्होंने विराम दे दिया।

उसी समय बरामदे में छाँव में आराम से खड़े उस खुशामदी ऑफिसर पर रघुपति की नजर पड़ गई। इससे पहले कि ऑफिसर वहाँ से खिसक जाए, गुस्से से तमतमाते हुए रघुपति ने देखा उसे। अपनी जगह पर ही खड़े रहकर उस ऑफिसर ने इशारे से समझाया कि लोगों की इतनी भीड़ को चीरकर उन तक वह पहुँच नहीं पाएगा। उसके बाद हाथ, उँगलियों की मुद्रा, आँख और होंठों के इशारे से उसने जो कुछ कहा, उसका मर्म यही था—"सर, मैं आपके लिए कुरसी लाने के लिए आदमी भेजा हूँ। आप बस थोड़ा धैर्य रखिए। कुरसी आएगी तो आराम से बैठिएगा। इसके अलावा, अभी मैं गोसाईं से जाकर कहूँगा कि उस बेचारे आदमी की समस्या को सुलझाने के बाद आपको पास बुलाकर आपकी बेटी को स्वस्थ करने का उपाय बताए।"

इशारे से सारी बात कहने के बाद ऑफिसर तुरंत रघुपति की आँखों से ओझल हो गया। मन-ही-मन रघुपति उस ऑफिसर के साथ उसकी सात पीढ़ियों को जी भरकर कोसने लगा। अब उन्हें यह बात अच्छी तरह से समझ में आ गई थी कि उस ऑफिसर की औकात तो दमड़ी भर की भी नहीं थी यहाँ, और स्वयं उनकी सत्ता का भी यहाँ कोई जोर नहीं था। उस नई छाजन वाली झोंपड़ी के भीतर जो एक स्वतंत्र साम्राज्य था, उसका एकछत्र सम्राट् था चपरासी पशुपति और नीचे बैठे लोग थे उसके अनुग्रह-प्रार्थी।

इस बात को समझ लेने के बाद धैर्य के साथ बैठकर अपनी बारी आने का इंतजार करने लगे रघुपति।

□

सब है, कुछ नहीं है

हर बार तारापद सोचता कि इस तरह की किसी भी सभा-समिति में अब वह शिरकत नहीं करेगा; पर निमंत्रण मिलते ही हामी भर देता। अभी मंच पर बैठकर सामने लगी खाली कुरसियों की कतारों को देखते हुए मन-ही-मन वह उकता रहा था। उसी समय बिजली का काम करनेवाले लड़के ने उसके सिर पर जल रहे एक बल्ब को छोड़कर बाकी बल्ब को बुझा दिया। कहीं उस अँधेरे में वहाँ काम करनेवाला वह लड़का, जो उसके पास खड़ा था, उसे अकेला छोड़कर चला न जाए, इस डर से तारापद ने उसे बैठने के लिए कहा और लकड़ी की बेआरामदायक कुरसी से उठकर; सभापति के लिए रखी गई सिंहासननुमा कुरसी पर जाकर बैठ गया। सभा खत्म होने के आधा घंटा बीत जाने के बाद भी उसे ले जाने के लिए गाड़ी अभी आई नहीं थी और वह इंतजार करते हुए अब उकता रहा था।

हर बाद ऐसा ही होता रहा। गाँव के कॉलेज के वार्षिक उत्सव के लिए, जो लड़के उसे बुलाने आते थे, वे खुशामद करते हुए ऐसी मीठी-मीठी बातें करते कि तारापद जाने के लिए मान जाता। सभा में कितने लोग आएँगे, कौन-कौन से विशिष्ट व्यक्ति शिरकत करेंगे, उसके जाने-आने की कैसी व्यवस्था होगी, उस सब के बारे में जो भी वे कहते, उसमें अतिशयोक्ति है, यह बात तारापद को अच्छी तरह से पता होती। पर जब लड़के उससे कहते कि उस इलाके के लोग उसके जैसे एक सम्मानित साहित्यकार का भाषण सुनने के लिए व्यग्रता के साथ इंतजार कर रहे हैं तो तारापद तुरंत राजी हो जाता। एक बार 'हाँ' कह देने और निमंत्रण-पत्र पर नाम छप जाने के बाद फिर बेचारे अतिथि का परिस्थिति पर कोई वश नहीं रहता। और हर बार परिणति एक जैसी होती। इस बार भी उसमें कोई व्यतिक्रम नहीं था।

गाड़ी के पहुँचने का जो समय दिया गया था, उससे एक घंटा देर से एक टूटी टैक्सी उनके घर के दरवाजे पर आकर रुकी। एक घंटे से तैयार होकर बैठे तारापद तब तक उकता चुके थे, पर देरी से आने के लिए माफी माँगने की बजाय ड्राइवर बोला, "सर और देर मत करिए, रास्ता बहुत खराब है।" तारापद ने सोचा था कि ड्राइवर के साथ कॉलेज का कोई लड़का आया होगा उन्हें साथ ले जाने के लिए। पर कोई लड़का नहीं था। ड्राइवर ने उन्हें एक चिट्ठी थमा दी, जिसमें लिखा था कि सभा के आयोजन में सभी व्यस्त हैं, इसलिए उन्हें लेने कोई नहीं आ सकता। पर वह किसी भी वजह से देर न करें और समय पर सभा-स्थल पर पहुँच जाएँ। तीन पंक्ति की उस चिट्ठी में तारापद को वर्तनी में भी तीन अशुद्धियाँ नजर आईं। पत्र को मसलकर उसने गोला बनाकर फेंक दिया और गाड़ी में जाकर बैठ गया।

सच में रास्ता बहुत खराब था और नियम के तहत एक जगह जाकर गाड़ी खराब हो गई। अपने अनुभव से तारापद गाड़ी खराब होने की एक और अनिवार्य विधि को लेकर तब तक जागरूक हो चुका था और वह था—गाड़ी खराब होने का निर्णय तब लेती है, जब खूब तेज धूप हो और ठीक उसी जगह पर खराब होती है, जब आसपास कहीं कोई पेड़-पौधे न हों। इस तरह की परिस्थिति आने पर पहले-पहल तारापद खिन्न हो जाता था, पर आजकल एक दार्शनिक की तरह स्वीकार कर लेता है वह। सिर पर रुमाल बाँधकर, अखबार से हवा करते हुए टैक्सी से नीचे उतरकर अनासक्त रूप से अगले कार्यक्रमों का इंतजार करने लगा तारापद। गाड़ी और उसके मालिक को श्लील-अश्लील गालियाँ देने के बाद ड्राइवर ने गाड़ी की समस्या पर ध्यान दिया। उस रास्ते कभी-कभार गुजर रहे एक-दो गाड़ियों के ड्राइवरों ने भी रुककर उसकी कुछ मदद करने की कोशिश की। काफी मशक्कत के बाद दुष्ट प्रकृति की वह गाड़ी, कई तरह का खेल खेलने के बाद आखिरी में खुद ही थक-हारकर चलने के लिए तैयार हो गई।

सभास्थल पर देर से पहुँचेगा, यह जानते हुए भी तारापद चिंतित नहीं था, कारण, ऐसी सभाओं का शुरू होने का कोई निर्दिष्ट समय नहीं होता है। सभा में पहुँचा तो बहुत कम लोग मौजूद थे वहाँ। कुछ लोग मंत्री के स्वागत के लिए सड़क के किनारे जाकर खड़े हुए थे। उसे निमंत्रण देने के लिए जो लड़का गया था, उसे देखते ही पास बुलाकर तारापद एक कोने में ले गया और दो जरूरी बातों का पता लगाया; एक कहीं कोई शौचालय है या कोई अँधेरा कोना, और दूसरा भाषण देने से पहले पीने का पानी कैसे मिलेगा ? दोनों बातों की जानकारी लेने के बाद उस लड़के को चेतावनी देते हुए बोला कि जाते समय उसके लिए एक अच्छी गाड़ी का इंतजाम किया जाए।

'क्यों आता है वह ऐसी सभाओं में', अपने आप से प्रश्न किया तारापद ने। अपनी आवाज सुनने की इच्छा से? अपनी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई है, इस बारे में आश्वस्त होने के लिए? या अपनी बातों के जाल में श्रोताओं को बाँधकर रखने का संतोष पाने के लिए? या बहुत परिश्रम से तैयार किए गए महत्त्वपूर्ण वक्तव्य के लिए मिलनेवाली तालियों की मधुर ध्वनि सुनने की चाहत में? या इन सब चीजों के साथ कुछ और भी पाने की इच्छा में?

साहित्य जगत् में उसकी ख्याति, उसकी प्रतिष्ठा के बारे में उसे कोई संदेह नहीं था। कोई-कोई व्यंग्य करते हुए उसे साहित्य जगत् का मठाधीश भी कहते थे। वह ऐसे उपनामों को भी आनंद के साथ ग्रहण कर लेता था। उसे कई पुरस्कारों से नवाजा गया था। उसके समालोचना प्रबंध तथा सृजनशील साहित्य की पुस्तक पाठकों द्वारा पसंद की जाती थी। वह कई साहित्यिक संस्थाओं का कर्ता-धर्ता था। देश-विदेश से उसके पास निमंत्रण आता था। विभिन्न अनुष्ठान उसे सम्मानित करने के लिए तैयार थे। इन सबके बावजूद क्यों वह ऐसी अख्यात गोष्ठियों में भी चला जाता था?

आज की सभा के लिए तैयार किए अपने भाषण को लेकर वह संतुष्ट था। सभा की शुरुआत में उसका जो परिचय दिया गया, वह प्रीतिकर था। बहुत दिन पहले ऐसी ही एक सभा में उसकी लिखी पुस्तकों के गलत नाम, उसकी शिक्षा, योग्यता और कृतित्व की गलत सूचना दी गई, तो वह सतर्क हो गया। अब किसी सभा में उसे बुलाया जाता है तो वह अपना टाइप किया हुआ परिचय-पत्र उन्हें थमा देता, जिसमें उसकी कृति और कृतित्व की सटीक और लंबी फेहरिस्त होती। आजकल की सभाओं में दूसरे वक्ता उसके उसी परिचय से विवरण लेकर उसे कुछ और अतिरंजित बनाकर भाषण देते और तारापद को संतुष्ट और खुश करते।

आज की सभा का एक मुख्य आकर्षण था शिक्षा मंत्री का वहाँ उपस्थित होना। खुद एक अध्यापक होने के नाते कभी शायद तारापद शिक्षा मंत्री की इज्जत देता था। पर अब अपनी प्रतिष्ठा और साहित्यिक सम्मान के चलते अपने को उनसे कद में ऊँचा तो नहीं, पर समकक्ष जरूर समझता था। इसके अलावा, वर्तमान में जो शिक्षा मंत्री हैं, वे कभी उसकी सहपाठिनी रह चुकी थीं। इसलिए सभा में अचानक उनसे सामना हो जाने पर तारापद ने एक दूरी बना ली। कॉलेज के समय में सुखदा एक गंभीर प्रवृत्ति की लड़की थी। कॉलेज में दूसरों से ज्यादा मेल-जोल नहीं रखती थी। कॉलेज के उन चार सालों के दौरान सुखदा से उसकी दो-चार बार भी बात हुई थी या नहीं, शक है। कॉलेज के बाद सुखदा से मिलने का फिर कोई अवसर भी नहीं

मिला। पर उसके राजनीतिक जीवन की अग्रगति की खबर वह रखता जरूर था। इसलिए सभा में इस तरह अचानक सुखदा से सामना हो जाने पर भी उसने उसके साथ के पूर्व परिचय का कोई आभास नहीं दिया।

पर अब तारापद को अपने इस व्यवहार के लिए अफसोस हो रहा था, क्योंकि सुखदा ने सभा में सबके सामने तारापद के साथ अपने पूर्व परिचय होने की सूचना दे दी थी। उस दिन सभा में आलोचना के विषय 'साहित्य में सामाजिक न्याय' पर भाषण देते हुए सुखदा बोली कि अगर समाज में न्याय हो रहा होता, तो शिक्षा विभाग की मंत्री वह नहीं, बल्कि प्रवीण शिक्षाविद् और प्रतिष्ठित साहित्यकार तारापद होते! साथ ही वे यह भी बोलीं कि तारापदजी के बारे में एक और परिचय देते हुए मैं गर्व का अनुभव कर रही हूँ कि कभी मैं भी उनकी सहपाठी रही हूँ।

सुखदा की बात सुनने के बाद खुद को बहुत छोटा महसूस किया तारापद ने। इसलिए उसका मन हुआ कि सभा खत्म होने के बाद सुखदा से मिलकर उससे शालीनता के साथ बात करके अपनी गलती का कुछ सुधार कर लेगा वह। पर सभा के खत्म होते ही चारों तरफ से लोगों ने सुखदा को घेर लिया। सुखदा उसी भीड़ के साथ अपनी गाड़ी तक पहुँची और तारापद उससे मिल नहीं पाया। और उसके बाद एक लड़के ने आकर सूचना दी कि जिस गाड़ी से वह आया था, उसे ठीक किया जा रहा है।

खाली सभागृह में सिंहासन रूपी उस कुरसी पर बैठे-बैठे तारापद ने अपनी कलाई घड़ी पर नजर डाली और अपने क्रोध, झल्लाहट को यथासंभव संयत रखते हुए पास में बैठे लड़के से पूछा, "और कितना समय लगेगा?" लड़का बोला, "आप यहीं बैठे रहिए, मैं जाकर देख आता हूँ।" तारापद को लगा कि लड़का चला जाएगा तो वह अकेला पड़ जाएगा और पता नहीं उसे और कितनी देर इंतजार करना पड़े! यही सोचकर गाड़ी का काम कितना हुआ, देखने के लिए वह भी लड़के साथ हो लिया।

कॉलेज से कुछ दूर डाकबँगले के पास गाड़ी को ठीक किया जा रहा था। डाकबँगले में मंत्री रुकी थीं, इसलिए वहाँ भीड़ बहुत थी। डाकबँगले के फाटक के बाहर जो कुछ गाड़ियाँ खड़ी थीं, उनके ड्राइवर भी मिलकर गाड़ी को ठीक करने की कोशिश में लगे हुए थे। तारापद को देखकर छात्र नेता बोला, "बस गाड़ी ठीक हो गई समझिए, सर।" अपनी कलाई घड़ी को देखा तारापद ने और इससे पहले कि वे कुछ बोले, छात्र नेता बोल पड़ा, "आप जाने के लिए चाहे कितने भी उतावले हों, पर गाड़ी ठीक नहीं हो पाएगी तो हम आपको रात में जाने नहीं देंगे। चलिए, डाकबँगले में चलकर जरा आराम कर लीजिए।" हालाँकि, तारापद मंत्री के कृपाप्रार्थियों की

भीड़ में शामिल होना नहीं चाहता था, फिर भी वह भीतर गया और मंत्री बरामदे में जिस तरफ बैठी थीं, उसके दूसरी तरफ जाकर वह बैठ गया। उसी समय शायद सुखदा ने उसे दूर से देख लिया था। क्योंकि उसका युवा ऑफिसर, जोकि उसका निजी सचिव था, ने उसके पास आकर उसे मंत्री के नजदीक ले जाने के लिए बुला लिया। तारापद जाकर सुखदा के सामने रखी हुई कुरसी पर बैठ गया। बावजूद इसके उसके चारों तरफ जो लोग घेरे हुए थे, उनकी सिफारिश, अनुरोध की फेहरिस्त इतनी लंबी थी कि सुखदा उससे बात नहीं कर पा रही थी। आखिरी में सुखदा उठकर खड़ी हो गई और लोगों से कहा कि उसे कुछ जरूरी काम है, इसलिए वे सब कल आएँ। उस युवा ऑफिसर ने बहुत मुश्किल से लोगों को वहाँ से हटाया। पर लोग वहाँ से चले नहीं गए, बस बरामदे से नीचे उतर गए और लॉन में भीड़ लगाकर खड़े रहे।

सुखदा बोली, "मैं सभा के बाद आपसे बात करना चाहती थी, पर इस भीड़ में यह संभव नहीं हो पाया। जो भी हो, अच्छा हुआ कि आप यहाँ आ गए। अंतत: पाँच मिनट आपसे अकेले में बात कर पाऊँगी।" पर एकांत संभव नहीं हो पाया, कारण, उसी समय फाइल लेकर सेक्रेटरी वहाँ पहुँच गया। सुखदा ने जब उससे कहा कि वह सारे फाइल बाद में देखेगी तो सेक्रेटरी बोली, "मैडम, सिर्फ इस एक फाइल को देख लीजिए, कारण, उसे लेकर जाने के लिए आदमी खड़ा है।" अब सुखदा को वह फाइल देखनी पड़ी।

चुपचाप बैठकर सुखदा को देखते हुए तारापद सोचने लगा कि कितना अद्‌भुत है इनका जीवन! खुद के लिए भी इन्हें एकांत पल नहीं मिलता! इतना मान-सम्मान, क्षमता के बदले आखिर स्वीकार कर लेना होता है काँच के घर में रहने की परेशानी को। फाइल पर से चेहरा उठाकर सुखदा बोली, "दो मिनट में इसे भी देख लेती हूँ, फिर बातचीत करेंगे।" सेक्रेटरी को चाय के लिए भेजकर तारापद की सोच को प्रतिध्वनित करते हुए सुखदा बोली, "पल भर के लिए भी अकेले कैसे रहा जाए, इसका कोई उपाय नहीं है।"

चाय आ गई। फाइल में दस्तखत कर देने के बाद सेक्रेटरी से सुखदा बोली, "इस फाइल को भिजवा दो और बाकी फाइल लेकर जाओ, मैं आज और कोई कागजात नहीं देखूँगी।" बहुत ही अनिच्छा के साथ सेक्रेटरी सारी फाइलें लेकर चला गया। अब हाथ में चाय का कप लिये दोनों एक-दूसरे के सामने बैठे थे। तीस साल की दूरी को समेटते हुए सुखदा बोली, "बहुत दिनों बाद आपसे मुलाकात हुई न?"

इतने समय बाद तारापद ने अपनी दृष्टिकोण से सुखदा के चेहरे की तरफ देखा। सभा के मंच पर भीड़ में लोगों के बीच, सुखदा उसके लिए पद और प्रतिष्ठा

की अव्यक्तिगत प्रतिनिधि थी। और अभी शहर से दूर, अँधेरे में घिरे इस डाकबँगले के बरामदे में बैठी सुखदा, उसके लिए तीस बरस पहले छूट गई वह लड़की थी। सफेद हो रहे बाल, चेहरे पर पड़ी झुर्रियों में भी तारापद ने कॉलेज जीवन की शांत, शरमीली, सतेज सहपाठिनी को ढूँढ़ लिया। इतनी उम्र के बावजूद खूबसूरत लग रही थी सुखदा। समय मानो उसके चेहरे पर आत्मविश्वास की एक स्वच्छंद और स्वाभाविक सुंदरता ले आया था। तारापद अचानक सचेत हो गया कि सुखदा उसकी तरफ देखते हुए अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही है। कुछ झेंपते हुए वह बोला, "हाँ, यह मुलाकात, वह भी ऐसी अद्‌भुत जगह पर होनी थी।"

उसके बाद दोनों कुछ देर के लिए चुप रहे। तारापद के दिमाग में कई रोमांचकारी कल्पना दौड़ने लगीं। परिस्थिति को पूरी तरह अपने कब्जे में करने के उद्‌देश्य से अपने मन को न भटकाते हुए तारापद बोला, "तुम्हें याद है सुखदा", पर इससे आगे कुछ कहने के लिए उसे मौका नहीं मिला; कारण, उसी समय वह छात्र नेता हाथों में दो कप चाय लेकर आया और खुश होते हुए बोला, "सर, गाड़ी अब पूरी तरह से ठीक हो गई है।" फिर एक कुरसी खींचकर सुखदा के पास बैठते हुए आंचलिक राजनीति के बारे में सुखदा से आलोचना करने लगा। चाय का घूँट लेते ही तारापद को वह बहुत ही बेस्वाद सा लगा और उसने कप को नीचे रख दिया।

अब उसे जाना होगा। औपचारिकता निभाते हुए तारापद बोला, "मुझे बहुत दूर जाना होगा, फिर मुलाकात होगी।" सुखदा बोली, "आप तो बहुत व्यस्त रहते हैं। आपसे फिर मुलाकात हो पाना मुश्किल ही है।" छात्र नेता बोला, "मैडम, आप जब भी मुझे कहेंगी, मैं सर को लेकर आपके पास पहुँच जाऊँगा।" नमस्कार के आदान-प्रदान के बाद तारापद सुखदा और अपनी कल्पना को डाकबँगले के बरामदे में छोड़कर नीचे उतरा।

उसी समय जाने कहाँ से अप्रत्याशित तूफान आ गया। अचानक सूखे पत्ते उड़ने लगे, धूल की आँधी चलने लगी। पेड़ सारे हवा में लहराने लगे। लॉन में खड़े लोग बाहर की तरफ भागे। सेक्रेटरी अपने कागजात को उड़ने से बचाने में लग गया। कहीं तारापद की जिम्मेदारी आगे भी उसे ही सँभालना न पड़ जाए, यही सोचकर छात्र नेता बोला, "सर, जल्दी से गाड़ी में बैठ जाइए।" पर ऐसा हो नहीं पाया, क्योंकि आँधी के साथ ही मूसलाधार पानी भी बरसना शुरू हो गया। मजबूरन तारापद को बरामदे पर चढ़ना पड़ गया। छात्र नेता और वह फिर से सुखदा के पास जाकर बैठ गए। सुखदा बोली, "समय पर आज आपका घर पहुँचना किस्मत में लिखा नहीं है।"

उसके बाद काफी समय चुप्पी में कट गया। सभी बारिश को देखते हुए अपनी-अपनी सोच में डूबे रहे। तारापद को लगा, यह असमय आँधी-पानी मानो उसके लिए विधि द्वारा तय किया गया था, ताकि कुछ देर और उसे सुखदा से बातचीत करने का मौका मिल जाए। लेकिन समय अभी पूर्ण रूप से प्रकृति को समर्पित था और इस समय किसी भी शब्द का उच्चारण प्रकृति-सिद्ध उस नैसर्गिक छंद को तोड़ देता। तारापद के मन के भीतर एक अपूर्व प्रशांति का भाव संचरित हो रहा था। सुखदा की तरफ देखते हुए उसे लगा, मानो इस स्त्री को वह बहुत अंतरंगता के साथ जानता है। तारापद अपने मन में समय का अतिक्रमण करते हुए सुखदा के साथ एक संबंध की कल्पना करने लगा, जो कभी था ही नहीं। केवल समय ही किसी इनसान के मन में ऐसी अघटित आत्मीयता की अतींद्रिय, अद्वितीय सुखद स्मृति ला सकता है। तारापद ने इस कल्पनाजनित स्मृति में चहलकदमी करने के लिए अपने को समर्पित कर दिया।

पर उस शांत, सुंदर परिवेश को, फाइल को लेकर परेशान सेक्रेटरी ने बहुत निर्ममता के साथ तोड़ दिया। हाथ में एक बार फिर फाइलों का पुलिंदा लिये मंत्री के कुरसी के बगल में खड़ा हो गया वह और बोला, "मैडम, कुछ और भी जरूरी कागजात हैं दस्तखत करने के लिए।" सुखदा उसकी तरफ देखकर परिहास करते हुए बोली, "वेंकट! बैठकर दो मिनट वर्षा की तरफ देखो।" वेंकट बैठ गया और कागजात पर अपना ध्यान रखते हुए बोला, "यह बारिश फसल के लिए अच्छी है।" कुछ समय और चुप्पी में कट गया। वर्षा के बंद होने का आसार नजर आता न देखकर छात्र नेता उठकर खड़ा होते हुए बोला, "मैं ड्राइवर को सबकुछ ठीक से समझाकर जाऊँगा, ताकि आपको कोई असुविधा न हो।" एक पल के लिए तारापद के मन में आया कि गाड़ी में सुरक्षित बैठ जाने तक इस युवक को वहीं रोक ले। पर अगले ही पल तय किया कि अब वह पूरी तरह से सुखदा के आगे अपने आपको समर्पित कर देगा।

तारापद बहुत-कुछ कहना चाहता था। शायद सुखदा भी। पर फाइल-पत्र लिये वहाँ मौजूद वह व्यक्ति उनके बीच दीवार बन गया था। आखिर में सुखदा ही इस समस्या का समाधान करते हुए बोली, "वेंकट, अब आज मैं कोई काम नहीं करूँगी। बाकी कागजात कल सुबह देखूँगी।" उसकी बात सुनकर भी वेंकट जाने के लिए उठा नहीं तो सुखदा फिर बोली, "तुम जाओ, अब आराम करो।" बहुत ही अनिच्छा के साथ वेंकट वहाँ से उठ गया, पर बरामदे के उस कोने में जाकर बैठ गया, जहाँ से उन पर वह नजर रख पाए और उनकी कुछ बातें भी सुन पाए।

कुछ समय पहले की भावना को पूरी तरह से बदल दिया था असमय हुई इस बरसात ने। फिर से, "तुम्हें याद है, सुखदा!" जैसे बात कहना तारापद के लिए संभव नहीं था। वर्तमान में व्यक्तिगत बातें हो नहीं पाएँगी। अब बातचीत सीमित रह जाएगी बरसात की बात तक। पर ऐसा हुआ नहीं। सुखदा बोली, "तुम्हारी सारी पुस्तकें पढ़ी हैं मैंने।" उसकी पुस्तक किसी ने पढ़ी है, इससे बढ़कर खुशी की बात लेखक के लिए कुछ नहीं होती है। तारापद ने सोचा कि अब सुखदा उसकी किसी खास पुस्तक या फिर उसके किसी लेख के बारे में कुछ कहेगी। पर सुखदा बोली, "अब तो तुम बहुत प्रतिष्ठित लेखक हो गए हो, है न?" तारापद बोला, "पुस्तकों की गुणवत्ता के साथ प्रतिष्ठित होने का कोई संबंध नहीं है। पर मेरी रचनाएँ कैसी लगीं तुम्हें?"

"अगर मैं कहूँ कि अच्छी लगती हैं तो क्या इसका कोई मायने होगा? और यह बात भी सच है कि अगर मुझे अच्छी नहीं लगतीं तो मैं पढ़ती क्यों? या फिर भी मैं उन पुस्तकों को इसलिए पढ़ती कि उसे लिखनेवाला कभी मेरा सहपाठी था? क्या सोचते हो तुम?"

कोई दूसरा समय होता या अलग परिस्थिति होती तो सुखदा की बात से वह नाराज हो जाता। पर तेज बारिश की घेरेबंदी के बीच, अतीत से निकलकर; इस तरह दो टूक बात कर रही सखी के सामने बैठकर तारापद का मन भी मानो सहज हो गया था। इस समय केवल आत्म-समीक्षा ही संभव थी।

"तुम ठीक कह रही हो। मेरा लेखन कैसा लगता है, अचानक पूछे गए ऐसे प्रश्न का, अच्छा लगता है, जैसे बहुत ही साधारण उत्तर के अलावा और क्या जवाब हो सकता है भला? सच तो यह है कि ऐसे सवाल ही निरर्थक हैं, क्योंकि किसी के लेखन के बारे में कुछ कहना हो तो, पहले उसे किस मानक पर तौलना होगा, यही तय करना होगा।"

"तुम खुद क्या सोचते हो अपने लेखन के बारे में?"

"मुझे तुमने अब एक जटिल समस्या में डाल दिया। इस बारे में गंभीरता से सोचना होगा मुझे।" अपनी बात कह लेने के बाद तारापद ने देखा कि सुखदा उसकी बात पर हँस रही थी। तारापद को लगा कि उसकी सारी साहित्यिक कृतियाँ क्षणिक हैं। झूठे हैं सारे पुरस्कार, संवर्धना, फूलमालाएँ और तालियाँ। एकमात्र सच है बाहर हो रही बारिश और सुखदा के सामने उसका बैठा होना।

उसी समय अचानक बिजली चली गई। तारापद को लगा कि हाथ बढ़ाकर वह सुखदा को छू सकता है और चला जा सकता है एक ऐसे अपार्थिव लोक में, जहाँ साहित्य नहीं है, मंत्रित्व नहीं, वर्षा के अलावा कुछ नहीं है। अँधेरे में किसी

के स्पर्श का अनुभव किया तारापद ने। उसकी कुरसी के पास खड़े होकर दास की तरह विनीत और खुशामदी आवाज में वेंकट कह रहा था, "मैडम, बस एक मिनट में पेट्रोमैक्स लाइट की व्यवस्था करता हूँ।"

पेट्रोमैक्स आ गया। वेंकट फिर से बिना बुलाए उनकी बातचीत में शामिल हो गया। अब बातचीत मामूली विषयों पर होने लगी। तय यही हुआ कि तारापद रात का खाना वहीं खाएगा और बरसात के बंद हो जाने पर ही घर लौटेगा। रात के खाने का बंदोबस्त क्या हुआ है, देखने के लिए वेंकट अंदर चला गया। तब तारापद बोला, "तुम्हारा सेक्रेटरी तुम्हें छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता।"

सुखदा बोली, "जानती हूँ। सेक्रेटरी जो होते हैं, वे ईर्ष्या भाव रखनेवाली पत्नी की तरह होते हैं। स्वामी पर हर समय नजर रखना उनका काम होता है। मेरे साथ कौन बात कर रहा है, क्या कह रहा है, मेरे परिवार में कौन-कौन हैं, क्या करते हैं, यह सारी बातें जानना मानो उसके लिए जरूरी है।"

सुखदा की बात को सही प्रमाणित करते हुए वेंकट तुरंत ही लौट आया कि कहीं उसकी अनुपस्थिति में कोई विशेष घटना न घट जाए! आते ही वेंकट बोला, "मैडम! सारी व्यवस्था हो गई है।" सुखदा को एक बार फिर "ठीक है, तुम जाओ" कहना पड़ा। वेंकट की तरफ देखते हुए आपस में दोनों मन-ही-मन हँस रहे थे, इस बात को वह समझ नहीं पाया।

सुखदा बोली, "हम तुम्हारे लेखन के बारे में बात कर रहे थे। आज तुमने जो भाषण दिया, वह बहुत सारगर्भित था। बहुत नई बातें सीखीं मैंने। मेरे लिए एक और अच्छी बात यह हुई कि भविष्य में इस भाषण के कुछ हिस्से मैं अपने किसी भाषण में व्यवहार कर सकती हूँ।"

तारापद बोला, "तुम्हारा भाषण भी बहुत ज्ञानवर्धक था। राजनीतिक नेताओं से आमतौर पर इस तरह के भाषण की आशा नहीं की जाती है।"

सुखदा हँसी, "ओहो! मेरा भाषण! तुम अगर मेरा भाषण पहले सुने होते तो, जानते होते कि अपने भाषण में ही थोड़ा-बहुत फेरबदल कर मैं इस तरह की साहित्यिक सभाओं में बोलती रहती हूँ। मेरे पास इतना समय कहाँ है कि पुस्तक पढ़कर, उसे तर्जुमा कर नई बातें कहूँ? पर तुम्हारी बात अलग है।"

तारापद ने सोचा कि कह दे—'हाँ, अपने भाषण के लिए कई देशी-विदेशी पुस्तकें पढ़कर मुझे भी नोट करना पड़ता है। कोई और परिस्थिति होती तो वह यह झूठ बोल भी देता। पर दो टूक बात करनेवाली अपनी इस सखी के सामने बैठकर, बारिश का नजारा लेते हुए, ऐसा अनावश्यक झूठ क्यों कहे?' तारापद बोला,

"तुम्हारा सोचना गलत है। हम भी अपने भाषण को बार-बार इधर-उधर फेरबदल कर बोलते रहते हैं। रही पुस्तक पढ़ने की बात, तो समय है, यह सच है, पर इतनी पुस्तकें पढ़ता कौन है ? किसी विदेशी पुस्तक से कोई एक लेख पढ़कर, उसे आधार बनाकर कुछ लिख देने से या फिर किसी सभा-समिति में भाषण दे देने भर से, वही हमारे ज्ञान का चरम दृष्टांत बन जाता है। आज मैंने सभा में जो कुछ भी कहा, उसे सुनकर कोई भी यही सोचेगा कि मेरे बहुत दिनों के शोध का यह नतीजा है। पर इस भाषण को तैयार करने में मैंने पाँच मिनट का भी समय नहीं दिया था। कभी कुछ पढ़ा था या कहीं कुछ कहा था, लिखा था, यह उसका सारांश भर था।"

सुखदा बोली, "पर तुम जो मौलिक लेखन करते हो, वह सब तो तुम्हारा अपना लिखा हुआ है।" सुखदा की बात सुनकर खाली-खाली आँखों से उसकी तरफ देखने लगा तारापद। सुखदा मानो आज उसे अनावृत्त करने पर तुली हुई है। पर तारापद कैसे इतनी आसानी से छोड़ देगा, छल-कपट के जरिए बहुत मेहनत के साथ गढ़े गए अपने इस साहित्यिक महत्त्व को ? बरसात के पानी में बहा देगा अपना सम्मान, स्वीकृति और स्वयं के संपूर्ण आधार को ? क्यों वह सुखदा को झूठ कहने के लिए विवश होगा या उसके सामने पूरी तरह श्रीहीन बनकर खड़ा रहेगा ? अपनी आत्मरक्षा का एक ही उपाय था कि वह सुखदा से पलटकर सवाल-जवाब करे। यही सोचकर तारापद बोला, "पहले तुम अपने बारे में बताओ।"

"क्या जानना चाहते हो तुम मेरे बारे में ? अगर कॉलेज के बाद क्या हुआ पूछोगे तो संक्षेप में बात बस इतनी है कि कॉलेज की पढ़ाई के बाद शादी हो गई, पढ़ाई बंद हो गई, दस साल घर-संसार सँभाला, बच्चों को बड़ा किया, फिर राजनीति में शामिल हुई। विधानसभा के लिए चुनी गई। फिर कुछ दिन उपमंत्री रहने के बाद अब मंत्री हूँ। बाहर से देखोगे तो बहुत ही सहज, सरल और सफलता की कहानी है।"

"मंत्री के तौर पर तुम्हारा काफी नाम है।" तारापद बोला।

सुखदा बोली, "जानती हूँ। राजनीति में बने रहने के लिए अंततः इतना तो समझना होता है। अपनी शक्ति, सामर्थ्य और समर्थन कितना है, यह जाने बिना राजनीति नहीं की जा सकती है। तुम्हें क्या लगता है कि कुछ ही दिन के अंदर मुख्यमंत्री ने मुझे उपमंत्री से मंत्री बनाकर मुझ पर दया की ? असल में इसके अलावा उनके पास और कोई उपाय नहीं था; कारण, उस समय—ओहो, देखो जरा मैं तुम्हें हमारे दल के राजनीतिक षड्यंत्र के बारे में बताने जा रही थी।"

तारापद बोला, "हमारे समसामयिक मित्रों में से तुम ही सबसे ऊँचे सोपान पर हो।"

"राजनीति में मैं बहुत देर में आई और उस दृष्टिकोण से देखा जाए तो मुझे जो भी मिला, उसके लिए मेरे मन में कोई दु:ख नहीं है। वैसे राजनीति में सबकुछ संभव है, पर इससे ज्यादा पाने के लिए मैं प्रयास करने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

"तुमने तो बहुत-कुछ पाया है।"

"हाँ, मुझे इस बात को स्वीकार कर लेना चाहिए कि क्षमता, प्रतिष्ठा, पारिवारिक सुख, आर्थिक स्वतंत्रता सब है मेरे पास। मेरे घर के आगे हमेशा लोगों की भीड़ लगी रहती है। मेरे प्रति लोग कृतज्ञ रहते हैं। मुझे देखने के लिए, सुनने के लिए लोग उतावले रहते हैं। कितने अनुष्ठान, प्रतिष्ठान, कितनी योजनाएँ, कितने लोग मुझ पर निर्भर हैं। मैं जब उन्हें देखती हूँ तो सोचती हूँ कि कितने बेचारे हैं वे! उनकी तुलना में मैं कितनी सौभाग्यशाली हूँ! मेरे पास तो सबकुछ है।"

दोनों कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। उस समय तक बिजली नहीं आई थी। धीमी पड़ रही पेट्रोमैक्स को कोई आकर तेज कर गया था। बारिश हो रही थी लगातार। डाकबँगले के भीतर सबकुछ शांत या स्थिर था। वेंकट भी बरसात की तरफ देखते हुए बरामदे में बैठा था। उसी समय अचानक तेज होती हवा के झोंकों के साथ पानी की बौछार बरामदे में पड़ने लगी। किसी से कुछ कहने से पहले ही वेंकट ने आकर पेट्रोमैक्स लाइट को पानी के छींटों से हटाकर दूर रख दिया। इसी मौके का फायदा उठाते हुए सुखदा बोली, "लाइट को कमरे में ले जाकर रख दो। हम भी अब भीतर ही बैठेंगे।" बहुत अनिच्छा के साथ कमरे के अंदर उन्हें बैठाकर वेंकट कमरे से बाहर निकला। अब वे वेंकट के नजरों के परिधि से बाहर थे। उसकी तरफ देखते हुए तारापद बोला, "विरह का मारा बेचारा!"

उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया सुखदा ने। यहाँ तक कि उसके होंठों पर पल भर के लिए भी मुसकान नहीं झलकी। वह अभी गंभीर मुद्रा में थी। पुरानी बातों का छोर पकड़कर सुखदा बोली, "कभी-कभी मुझे लगता है कि जो मैं यह सोचती हूँ कि मेरे पास सबकुछ है, वह सब अर्थहीन है, व्यर्थ है। तुम्हें कभी ऐसा लगा है?"

याद करने की कोशिश की तारापद ने। कभी जानबूझकर उसने इस दिशा में सोचा तो नहीं था, पर उसके दिमाग में कभी-कभार ऐसी सोच नहीं आती है, यह बात भी नहीं थी। उसने कई पुस्तकें लिखी हैं, पर उन सबका स्थायित्व कितना है भला? ऐसा क्या मौलिक है, उसके लेखन में, जो समय से परे भी जिंदा रहे? यद्यपि किसी को यह बात पता नहीं है कि उसकी कई कृतियाँ विदेशी लेखन का चतुरता के साथ किया गया नकल भर हैं। उसकी तथाकथित बौद्धिक कृतियाँ अज्ञात मनीषियों की कृतियों का सारानुवाद भर हैं। उसकी संपूर्ण कृति, विभिन्न स्रोतों से इकट्ठे किए गए तथ्यों

का, छोटे-छोटे अंशों में काटकर, चिपकाकर तैयार किया गया एक नया गुच्छा मात्र है। उसके पाठक और उसके समालोचक इस बात से अनभिज्ञ हैं। लेकिन वह खुद कैसे अपने इस कर्म को अस्वीकार कर पाएगा? और अगर इस पल में वह इस बात को स्वीकार नहीं करेगा तो फिर निश्छलता के साथ इस सत्य को स्वीकार करने का मौका फिर उसे कब मिलेगा? फिर भी उसकी हिम्मत नहीं हुई ऐसे किसी के सामने अपनी कमजोरी को व्यक्त कर देने में, चाहे वह कम परिचित हो, भले ही भविष्य में फिर उससे मुलाकात न हो! सुखदा की बात का उत्तर न देते हुए उलटे उससे ही पूछा तारापद ने, "तुम्हें क्यों लगता है कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है?"

इस प्रश्न का उत्तर तो बहुत आसान है। सुखदा बोली, "सही बात यही है कि मेरा कुछ भी नहीं है, लेकिन झूठे ही मैं सोचती हूँ कि मेरे पास सबकुछ है। क्या मैं ऐसा जीवन चाहती थी? कोई नहीं जानता है कि मैं क्यों और कैसे राजनीति में आई? मेरे पति जब नौकरी कर रहे थे तो उनकी नौकरी में कभी कुछ समस्या आ जाती थी। इसलिए मेरे पति ने तय किया कि अगर मैं क्षमतावान राजनीतिक नेताओं के पास जाऊँ तो उनकी नौकरी में आई अड़चनें दूर हो जाएँगी और उनका नौकरी करना आसान हो जाएगा। लेकिन मेरा मन बिल्कुल भी नहीं था राजनेताओं के पास जाने का। मेरी उम्र कम थी, पर नेताओं को जितना मैंने देखा था, जानती थी कि वे क्या चाहते हैं! फिर भी अपने पति की इच्छा के मुताबिक मुझे उनके पीछे दौड़ना पड़ा। धीरे-धीरे मुझे अच्छे-बुरे का ज्ञान होने लगा। आत्मविश्वास बढ़ा। मैं जान गई कि किसी को कितना पास आने देना है, कैसे किसी को अपने से दूर रखा जाए और किस चीज के लिए अपने को कितना समर्पित किया जाए! यह सब मेरे लिए एक खेल जैसा था। मैं इसका उपभोग करने लगी। राजनीति की सीढ़ियों में ऊपर उठने लगी। और फिर हालात ऐसे हो गए कि मेरे पति, जिन्होंने मुझे राजनीति में जबरदस्ती धकेल दिया था, अब उन्हें ही मेरा राजनीति में रहना पसंद नहीं आ रहा था। आखिर में, जिस नौकरी के लिए यह सब किया, उस नौकरी को भी उन्होंने छोड़ दिया। क्या नीति शिक्षा मिलती है इस कथा से, बोलो?"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद अपने ही प्रश्न का उत्तर देते हुए सुखदा बोली, "मैं चाहूँ या न चाहूँ, मेरा जीवन जाने कितने मोड़ से गुजरते हुए आज जहाँ पहुँचा है; वही मेरा जीवन है और मुझे ही इसे अब जीना होगा। ऐसा जीवन मैंने नहीं चाहा था, अब ऐसा कहने से फायदा क्या है? मैं जैसा जीवन चाहती थी, वैसा जीवन मुझे मिलता, ऐसी प्रतिश्रुति भी कहाँ थी? दूसरी तरफ सोचा जाए तो क्या मुझे खुद को पता था कि मुझे किस तरह की जिंदगी चाहिए थी? वर्तमान में खड़े होकर अतीत

के बारे में सोचना आसान है, पर उस समय क्या मैं भविष्य के बारे में यह सब सोच पाती?"

सुखदा की बात सुनते हुए तारापद सोचने लगा कि वह भी अपनी प्राप्ति-अप्राप्ति की बात सुखदा को सुनाकर अपने मन के भार को हलका कर लेगा। इतने दिनों से जटिल बन गए मन के उलझे धागों को आज वह खोल देगा। उसने सुखदा की तरफ देखा। अपनी बात कहता, पर उसे लगा, जैसे सुखदा किसी दूसरी दुनिया में है। अब तक जो भी अपने बारे में वह कहती रही, वह तारापद के लिए उद्दिष्ट नहीं था, बल्कि एकालाप था। अपने आप से बातें करने सा! कुछ पल बाद अपनी दुनिया में भी लौटी वह। तारापद को देखकर पहचान का भाव उसकी आँखों में उतरा और वह मुसकराते हुए बोली, "अब तुम्हारी स्वीकारोक्ति सुनते हैं।" बात कहाँ से शुरू करे, तारापद सोच ही रहा था कि ठीक उसी समय बिजली आ गई। इतने समय से उज्ज्वल रोशनी बिखेरता पेट्रोमैक्स अचानक मद्धम पड़ गया और उनकी नजरों से ओझल हो गया। उनकी दृष्टि, चेतना से ओझल हो गए डाकबँगला का कमरा, बरामदा, लोग-बाग, वेंकटस्वामी, सारे अपनी-अपनी जगह में फिर से प्रकट हो गए। तारापद ने कुछ कहा नहीं, चुप रहा। उसी समय वेंकट ने आकर सूचना दी कि रात का खाना तैयार है।

भोजन करते समय का माहौल औपचारिक व प्रीतिकर था और वेंकट की उपस्थिति के कारण आमोददायक भी बन गया था। सुखदा का व्यवहार बहुत सहज मंत्रियों वाला था। थोड़ी देर पहले उनके बीच हुई भावपूर्ण व्यक्तिगत बातचीत का कोई आभास नहीं था। तारापद ने सोचा कि खाने के बाद डाकबँगले के उस खाली बरामदे में बैठकर सुखदा और वह लौट जाएँगे अपनी उसी अधूरी रह गई बातचीत के गहरे केंद्र में और वह सालों से किसी को कह न पाने की अपनी अंतरंग पीड़ाओं से खुद को मुक्त कर लेगा। पर वैसा कुछ हो नहीं पाया। खाना खाने के बाद जब वे बरामदे में आए तो बारिश पूरी तरह बंद हो चुकी थी और हलकी चाँदनी बिखर चुकी थी। ड्राइवर गाड़ी लेकर तैयार खड़ा था। वेंकट अपनी डायरी में से कल के कार्यक्रमों की सूची पढ़कर सुखदा को सुना रहा था।

सुखदा से विदा लेने के बाद तारापद गाड़ी में जाकर बैठ गया। बहुत बातें अनकही रह गईं तारापद की। विदाई का समय अगर थोड़ा व्यक्तिगत होता तो उसे खुशी होती। सबकुछ जैसे अपूर्ण रह गया आज। गाड़ी ठीक हो गई थी और खाना खाकर ड्राइवर का मिजाज भी खुश हो गया था। बातचीत का सिलसिला शुरू करने के उद्देश्य से बोला, "सर! गाड़ी अब मस्त चलेगी।" पर ड्राइवर को आगे बोलने

देने का मौका देना नहीं चाहता था तारापद, इसलिए उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया और शाम के घटनाक्रम का मंथन करने में अपने को निमग्न कर लिया। सुखदा के साथ आज की यह मुलाकात प्रतिश्रुति भरी थी। उसने सोचा कि बहुत जल्द सुखदा से मुलाकात करेगा और तब आपस के संबंध में थोड़ा सा रोमांच का पुट देगा। उसने अपनी कल्पना को अनियंत्रित रूप से प्रसारित होने दिया। उसने सोचा, उसके और सुखदा का संबंध शहर में बदनाम होने लगा।

एक जाने-माने लेखक और एक मंत्री को लेकर लोगों की घिनौनी बातें तारापद को अप्रिय नहीं लगीं। पर अगले ही पल उसे अहसास हुआ कि ऐसा कुछ होगा नहीं। उसकी सुखदा से फिर मुलाकात नहीं होगी, जैसे आज से पहले सालों तक नहीं हुई थी। अगर दस साल बाद इसी तरह से किसी कार्यक्रम में उनकी मुलाकात होगी तो दस साल उनकी उम्र बढ़ चुकी होगी। उम्रदराज हो चुके होंगे दोनों। हो सकता है कि उसकी गाड़ी खराब नहीं होगी। आसपास कोई डाकबँगला नहीं होगा, मौसम अच्छा होगा। और कोई दूसरा कौतूहल प्रवृत्ति का, वेंकटस्वामी उसका सेक्रेटरी होगा। ऐसी फीकी सोच को तारापद अपने मन से सायास हटाते हुए अपनी साहित्यिक सफलता के बारे में सोचते हुए, सोने की कोशिश करने लगा।

कई पुरस्कार, जो अब तक नहीं मिले थे, उसकी आँखों के सामने झूलने लगे। व ˙ जिस श्रेष्ठतम ग्रंथ को लिखने की सोच रहा था, उसे लेकर की गई योजनाएँ उसे ग।. आने लगीं। उसके 60वें जन्मदिन के उपलक्ष्य में प्रकाशित होनेवाला अभिनंदन ग्रंथ किस तरह का होगा, उसके बारे में सोचने लगा वह। इन सारी बातों के साथ उसे अपनी साहित्यिक दुनिया के प्रतिबद्ध शत्रुओं की बात भी याद आ गई। उसने कल्पना किया कि किसी एक चतुर समालोचक ने बहुत निष्ठा के साथ उसके समग्र साहित्यिक शौर्य का विवरण प्रकाशित कर दिया है और एक जाने-माने लेखक के पद से वह एक तुच्छ लेखक के स्तर पर उतर आया है। ऊँचे मंच से जैसे किसी ने खींचकर उसे नाली में फेंक दिया हो!

इस तरह की अप्रीतिकर कल्पना के लिए खुद को लताड़ा तारापद ने, साथ ही छोटे से एक गाँव के गँवार कॉलेज में भाषण देने के लिए हामी भरने के लिए भी कोसा अपने को। उसने फैसला किया, हालाँकि, वह जानता था कि यह फैसला क्षणिक है, फिर भी, आगे कभी भी इस तरह का निमंत्रण स्वीकार नहीं करेगा वह। अब ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर हिचकोले ले रही गाड़ी के आगे अपने को समर्पित कर दिया तारापद ने।

□

कुशीलव

पुलिस थाना की बेआरामदेह कुरसी पर बैठकर बलभद्र ने युवा ऑफिसर की तरफ एक बेहद असम्मानजनक भाव के साथ दया भरी दृष्टि से देखा। एक जाने-माने लेखक होने के अभिमान से भरा पुलिस की नौकरी में अभी तक बर्बर नहीं हुए दरोगा को देख रहा था वह। दरोगा भी उसके साथ इज्जत से पेश आ रहा था और उसे बैठने के लिए कहकर फाइल पढ़ने में व्यस्त था। कुछ देर बाद फाइल बंद करते हुए वह बलभद्र से बोला, "आपको असमय थाने में बुलाने के लिए मैं दु:खी हूँ। पर एक केस के सिलसिले में आपकी मदद चाहते थे हम, इसलिए आपको तकलीफ दी।" दरोगा ने बहुत ही सभ्य और नम्रता से यह बात कही, पर बलभद्र कुछ रूखी आवाज में उकताकर बोला, "पूछिए, क्या पूछना है ?"

दरोगा ने फाइल खोलकर कुछ पढ़ा, फिर पूछा, "आप जनकराज अपहरण के बारे में कुछ जानते हैं ?" लगभग चार महीने पहले राउरकेला में हुए एक अपहरण के बारे में कुछ दिन से अखबारों में लगातार खबरें छप रही थीं। दूसरे लोगों की तरह बलभद्र भी सामान्य उत्सुकता के साथ उस खबर को पढ़ता रहा है। पर इस तरह की एक सस्ती सनसनीखेज खबर में रुचि रखना एक गंभीर लेखक के लिए सही नहीं होगा, यह सोचकर उसने दो टूक जवाब दिया, "नहीं।"

दरोगा बोला, "अखबारों में खबर छपी थी। हो सकता है कि आपकी नजर में पड़ी हो!"

बलभद्र बोला, "अखबार में छपी इस तरह की खबरों को मैं अनदेखा कर देता हूँ।" वैसे उसी अभी तक यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि उस अपहरण के बारे में उससे क्यों प्रश्न पूछा जा रहा है ? उसे इस बारे में कुछ पता नहीं है, इसलिए

उसका काम थाने में खत्म हो गया है, इसलिए अब उसे जाने की इजाजत दी जाए, कुछ इस तरह का भाव व्यक्त किया बलभद्र ने। पर उसके इस इशारे को पूरी तरह से नजरअंदाज करते हुए दरोगा ने फिर से फाइल में अपनी नजर गड़ा ली। फिर कुछ देर बाद फाइल से सिर उठाकर बोला, "आपके लिए चाय मँगाऊँ ?" बलभद्र के 'न' कहने पर फाइल में से अखबार में छपी एक खबर का हिस्सा, जिसका शीर्षक था—'अभिन्न उपाय से व्यवसायी का अपहरण', उसकी तरफ बढ़ा दिया। बलभद्र कुछ कहने जा रहा था, तभी दरोगा बोला, "पहले आप इसे अच्छी तरह से पढ़ लीजिए। इसी के बारे में आपसे कुछ प्रश्न पूछने हैं।"

बलभद्र को अब समझ में आया कि इस सबमें कुछ रहस्य है, जो उसकी समझ के परे है। इसलिए वह थोड़ा सा चौंकन्ना हो गया और पहले से पढ़ी हुई इस अखबारी खबर को फिर से पढ़ा। उसमें उस दिन की घटना का वर्णन था कि कैसे दिन-दहाड़े दोपहर के समय दो सभ्य नजर आनेवाले व्यक्ति एक स्त्री के साथ उस व्यवसायी के ऑफिस में पहुँचे और सबके सामने उसे साथ लेकर सफेद मारुति वैन में गायब हो गए। वैसे इस खबर में नई बात नहीं थी, फिर भी बलभद्र ने उसे सावधानी के साथ पढ़ा कि शायद उसमें कुछ निहित तात्पर्य हो! लेकिन उसे बिल्कुल भी यह समझ में नहीं आया कि इस खबर के साथ उसका संबंध क्या हो सकता है ?

जादूगर जैसे खेल दिखाता है, उसी तरह से दरोगा ने उसके हाथ से अखबार की वह कतरन लेकर वापस फाइल में रख दी और उसी फाइल में से एक पुस्तक निकालकर बलभद्र की तरफ बढ़ा दी। वह पुस्तक बलभद्र का ताजा प्रकाशित कहानी-संग्रह था। पुस्तक को देखते ही बलभद्र को अचानक यह बात समझ में आ गई कि जनकराज अपहरण की घटना के लिए उसे थाने में क्यों बुलाया गया है ?

दरोगा ने उससे पूछा, "कीर्तिमुख का अर्थ क्या है ?" साहित्यिक जगत् में बलभद्र ने एक अपना एक छद्म नाम भी रखा था। अपने असली नाम से वह गंभीर, आभिजात्यपूर्ण उपन्यास, कहानी लिखता था, जिसे लिखने से उसे कोई भी पैसा नहीं मिलता था। पुस्तक, जिसकी बिक्री अच्छी-खासी होती थी, जैसे—डिटेक्टिव कहानी, हलके-अश्लील उपन्यास, सस्ती राजनीतिक कहानियाँ और रोमांचकारी कथाएँ, इन्हें वह 'कीर्तिमुख' के नाम से लिखता था। दरोगा को प्रभावित करने के लिए बलभद्र बोला, "ओडिशा के शिल्प शास्त्र के अनुसार कीर्तिमुख का अर्थ है—वज्रमस्तक के केंद्र वृत्त में स्थित मनुष्य की मुखाकृति।" इस अर्थ को बहुत पहले से ही उसने याद कर लिया था कि कभी इसकी जरूरत पड़े! पर उससे अगर

कोई वज्रमस्तक क्या है, पूछता, तो उसका जवाब उसके पास नहीं था। दरोगा ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए पूछा, "आप कीर्तिमुख नाम से भी लिखते हैं?"

एक पल के लिए बलभद्र के मन में आया कि न कह दे, पर उसे अब लगने लगा था कि वह बात को जितना आसान समझ रहा था, उतनी आसान वह नहीं थी। उसे लगा कि किसी बड़े रहस्य की जाल में फँस गया है वह, जिसके बारे में अभी उसे पता नहीं चल पाया है, इसलिए उसे सतर्क रहना होगा। यही सोचते हुए सिर झुकाकर उसने हामी भर ली।

कुछ पल तक दरोगा उसकी तरफ देखता रहा, फिर फाइल को टेबल पर रखते हुए पूछा, "यह सारी कहानियाँ आपने कब लिखी थीं?" बलभद्र समझ गया कि माजरा क्या है। इसी संकलन में अपहरण पर एक कहानी है। उस कहानी में भी बहुत ही अभिनव तरीके से एक व्यवसायी का अपहरण किया गया था। राउरकेला के उस अपहरण की घटना के साथ उसकी कहानी में कई समानताएँ थीं। अब उसे समझ आ रहा था कि वह इधर कुआँ, उधर खाई जैसी हालत में पड़ गया है। अगर वह कहे कि राउरकेला की घटना से पहले उसने कहानी लिखी थी, तो यह माना जा सकता है कि अपहरणकर्ताओं को उसकी कहानी से प्रेरणा मिली होगी? अगर वह कहता है कि अपहरण के बाद उसने लिखा है, तो कहा जा सकता है कि अपहरणकर्ताओं के बारे में उसे पता था। विषम समस्या में पड़ गया था बलभद्र। पुस्तक के पन्नों को पलटते हुए विवादास्पद उस कहानी का कुछ अंश पढ़ने लगा वह। उस कहानी में भी व्यवसायी के ऑफिस में दो पुरुष और एक सुंदर स्त्री के जाने का वर्णन था। वास्तविकता कल्पना के इतनी करीब पहुँच सकती है, इसकी धारणा नहीं थी उसे। कुछ देर पहले उस घटना की खबर अखबार की कतरन में पढ़ने के बाद अपनी लिखी कहानी को पढ़ते हुए वह रोमांचित हो गया। पुस्तक को बंद कर दरोगा को लौटाते हुए बोला, "नहीं, मुझे याद नहीं है कि कहानी मैंने कब लिखी थी?"

दरोगा पुस्तक को फाइल में सँभालकर रखते हुए खड़ा हुआ और बलभद्र से हाथ मिलाते हुए बोला, "मुझे दुःख है कि आपको हमने तकलीफ दी। आप घर जाकर याद करने की कोशिश करिएगा कि कहानी आपने कब लिखी थी? हमारी खोजबीन जारी है। जरूरत लगी तो हम फिर आपसे संपर्क करेंगे।"

घर लौटते समय बलभद्र ने याद करने की कोशिश की कि उसने कहानी कब लिखी थी? नहीं, राउरकेला की घटना के बाद तो बिल्कुल भी नहीं। बहुत दिनों पहले की लिखी हुई कहानी है यह। टेलीविजन पर देखी हुई किसी अमेरिकन फिल्म से प्रेरित होकर लिखी थी उसने यह कहानी। एक दिन शाम के समय टीवी खोला

तो फिल्म आधी खत्म हो चुकी थी। उस फिल्म का नाम भी उसे पता नहीं है। पर कहानी बहुत दिलचस्प थी और फिल्म देखते समय ही उसने तय कर लिया था कि इसको आधार बनाकर वह एक रोमांचकारी कहानी लिखेगा। वही विदेशी फिल्म ही थी उसकी कहानी का उत्स। पर यह बात पुलिस से कहना नहीं चाहता था वह। क्या जरूरत है उन्हें यह जानने की कि उसने कब, किसकी प्रेरणा से लिखी थी यह कहानी? खासकर एक लेखक के तौर पर वह जताना नहीं चाहता था कि उसकी कहानी किसी विदेशी फिल्म की अनुकृति मात्र है!

इस तरह की किसी फिल्म की छाया में लिखी एक कहानी कभी उसे विपदा में डाल देगी, यह बात बलभद्र की कल्पना से भी परे थी। कल्पनात्मक चरित्रों और वास्तविक चरित्रों के बीच की समानता उसे याद आ गई। उसकी कहानी के काल्पनिक चरित्रों की अगर वास्तविक चरित्रों के साथ समानता नजर आ रही है तो उसमें लेखक क्या कर सकता है भला? उसकी कहानी में घटना का जैसा वर्णन था, वास्तव में अगर कहीं उसकी पुनरावृत्ति हो जाए तो उसमें बेचारा लेखक दोषी क्यों हो?

एक दिन अचानक मिता ने उसके घर आकर पूछा, "मामा! क्या आपने मुझे लेकर कोई कहानी लिखी है?" उसके इस सवाल से बड़ा आश्चर्य हुआ बलभद्र को। साथ में थोड़ा परेशान भी हो गया वह। क्या उसने किसी लड़की के बारे में कोई खराब बात लिख दी है, जो मिता उससे इस तरह से जवाब-तलब कर रही है? उसने पूछा, "कौन सी कहानी? मैं भला तुम्हें लेकर कहानी क्यों लिखूँगा?"

मिता बोली, "मैं हमेशा नौकरों के साथ झिक-झिक करती रहती हूँ, इसलिए माँ मुझसे नाराज रहती हैं। वही बता रही थी कि आपने इस बात को लेकर कहानी लिखी है।" बलभद्र को याद आया कि उसने ऐसी एक कहानी लिखी तो थी; पर उसे लिखते समय मिता की बात उसने सपने में भी नहीं सोची थी। उसने ढूँढ़कर अपनी एक पुरानी पुस्तक निकाली और उसमें से उस कहानी को खोलकर मिता के हाथ में देते हुए बोला, "मैंने एक मालकिन और उसके नौकर की बात लिखी थी। फिर वह तुम्हारी कहानी कैसे हो गई? तू खुद पढ़कर देख!" उसने सोचा था कि मिता उसकी बात से संतुष्ट हो जाएगी। पर मिता उसकी बात में नहीं आई और कुरसी खींचकर बैठ गई और कहानी पढ़ने लगी। उसे कहानी पढ़ते देखकर बलभद्र खुश हो गया कि अंततः कोई तो उसकी पुरानी कहानी को इतने आग्रह के साथ पढ़ रहा है!

पर कहानी को पढ़ने के बाद गुस्से से तमतमाते हुए खड़ी हो गई मिता और बोली, "इसमें तो मेरे बारे में ही लिखा हुआ है।"

उसके हाथ से पुस्तक लेकर बलभद्र ने एक सरसरी नजर कहानी पर डालते हुए बोला, "यह तो हर मध्यम वर्ग गृहिणी की कहानी है। किस घर की मालकिन नौकरों के साथ झिक-झिक नहीं करती है ?"

मिता बोली, "और जो आपने आदिवासी नौकर के बारे में लिखा है, वह ?"

बलभद्र बोला, "आधे से ज्यादा घरों में आदिवासी नौकर मिलेंगे। यह हमारे पड़ोस के घर को ही देख ले, आदिवासी नौकर-नौकरानियाँ हैं कि नहीं वहाँ ?" पर मिता फिर भी संतुष्ट नहीं हुई।

पलटकर फिर उसने पूछा, "कितने घरों के नौकरों का नाम 'बुला' है ?"

बलभद्र जवाब देने जा रहा था कि चरित्र का नाम देना होता है, इसलिए उपयुक्त नाम ढूँढ़ना पड़ता है। नौकर का अगर वह 'बुला' नाम नहीं रखता तो क्या 'नट' रखता ? यही बात वह कहने ही जा रहा था कि कुछ उसे याद आ गया। इसलिए वह बात न कहकर उसने पुस्तक का प्रकाशन वर्ष देखा और खुश होते हुए बोला, "प्रमाण मिल गया। यह कहानी तेरे लिए नहीं लिखी गई है, कारण, इसे जब लिखा था तो तेरी शादी नहीं हुई थी, तो तेरा गृहिणी होने का सवाल ही नहीं था।"

उसके हाथ से पुस्तक लेकर मिता उसे उलट-पलटकर देखते हुए बोली, "तो क्या आप सर्वज्ञ हैं ? आपको पहले से ही पता था कि मैं शादी करने के बाद जब अपना घर-संसार करूँगी तो नौकरों के साथ खिट-पिट करूँगी, मेरा एक आदिवासी नौकर होगा और जिसका नाम बुला होगा ?" बलभद्र ने फिर एक बार उसे बताया कि पुस्तक का पहला संस्करण उसके विवाह से पहले छपा था। मिता का उत्तर था कि, "हो सकता है, पुस्तक में तारीख गलत छपी हो। वैसे भी माँ ने इसे दूसरे संस्करण में पढ़ा है। आप जानबूझकर दूसरे संस्करण में इसे शामिल किए होंगे और उस समय तक मेरी शादी भी हो गई थी। और आपको पता है कि न कि एक खबर अखबार में छपी थी कि एक कहानी को दो पुस्तक में प्रकाशित करने के कारण किसी पाठक ने उस लेखक के नाम केस कर दिया था।"

आखिर तक बलभद्र उस दिन भानजी को अपनी बात समझा नहीं पाया, तो फिर अब इस पुलिस ऑफिसर को कैसे समझा पाता कि अपहरण वाली कहानी उसने बहुत पहले लिखी थी ? रात को सोते समय भी यह चिंता उसके दिमाग से नहीं गई। लोग सोचते हैं कि लेखक जो कुछ भी लिखता है, जरूर वह किसी सत्य घटना या चरित्र को लेकर ही कहानी लिखता है। उनको यह पता नहीं है कि लेखक के पास एक अक्षय संबल होता है, जो है, उसकी कल्पना !

मिता जैसे कई और लोगों ने भी उससे इस तरह के सवाल किए हैं। उसकी कहानी में अच्छे चरित्र भी हैं और बुरे भी। पर किसी ने कभी यह नहीं कहा कि आपने जो परोपकारी, आदर्श चरित्र का चित्रण किया है, उसे आपने जरूर मुझे ध्यान में रखकर लिखा है, जिसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। पर जब वह किसी घूसखोर इंजीनियर के बारे में लिखता है तो तुरंत ही आधे दर्जन इंजीनियर मित्र उसके शत्रु बन जाते हैं, मानो उसने उन्हीं मित्रों के बारे में ही वह कहानी लिखी हो! विकास, जोकि उसका बचपन का दोस्त था, उसने भी आखिरी में उसे गलत समझा। किसी पत्रिका में छपी उसकी कहानी पढ़कर वह उससे बोला, "तुमसे मुझे यह उम्मीद नहीं थीं।"

बलभद्र बोला, "भाई सॉरी। डिपार्टमेंट में हो रहे भ्रष्टाचार के बारे में तुमने जो कुछ बताया था, उस बारे में लिखने से पहले मुझे तुझसे पूछ लेना चाहिए था।"

विकास चिढ़कर बोला, "क्या अच्छा होता, क्या नहीं, इसका तो पता नहीं, पर अब तो मैं सबके सामने बदनाम हो गया।"

"बदनाम तो वही होंगे, जो भ्रष्टाचार कर रहे हैं। तूने ही तो बताया था कि कैसे खुल्लम-खुल्ला भ्रष्टाचार हो रहा है तेरे विभाग में!"

"वह बात ठीक है। पर जैसा तूने लिखा है। आकाश नाम लिखा, पर लोग तो यही सोचेंगे कि वह इंजीनियर विकास है।" बलभद्र उससे कहने जा रहा था कि आकाश नाम के तीन और लोगों को वह जानता है, पर ऐसा कहा नहीं उसने। विकास को खुश करने के लिए झूठ का सहारा लेते हुए बोला, "उस भ्रष्ट इंजीनियर की बात लिखते समय, तूने मुझे जिस सुपरिंटेंडेंट इंजीनियर विनय की बात बताई थी न, उसे ही ध्यान रखा था मैं।"

पर विकास उस दिन असंतुष्ट होकर वहाँ से चला गया और धीरे-धीरे उनकी चालीस साल की मित्रता उसी एक कहानी के चलते खत्म हो गई।

"थाना से उस दिन के बाद कोई फोन नहीं आया बलभद्र को। पर मन-ही-मन बेचैन रहा वह। अपहरण की उस घटना की हाल-फिलहाल की खबर जानने को इच्छुक था वह। जनकराज की अब तक कोई खोज-खबर नहीं मिली थी, फिर भी अखबार में अब उस घटना के बारे में कुछ भी खबर छप नहीं रही थी। शायद अखबारवालों को इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी या कोई आग्रह ही नहीं बचा था। आखिर में अधीर होकर बलभद्र ने खुद थाना बाबू को फोन किया।

उसी दरोगा को फोन पर पाकर बलभद्र बोला, "आपने कहा था कि उस कहानी को कब लिखा था, याद आने पर···" उसे आगे बोलने के लिए अवसर न

देते हुए दरोगा बोला, "मैं भी आपको फोन करने ही वाला था। अगर कोई असुविधा न हो तो आपको थाने आना होगा।"

बलभद्र ने पूछा, "कब आऊँ?"

दरोगा बोला, "अभी आ जाइए।"

बलभद्र ने सोचा, कहे कि अभी नहीं आ पाएगा, बाद में कभी सुविधा देखकर आ जाएगा। पर अगले ही पल कुछ सोचा और बोला, "ठीक है।"

वह अब उसी पहली वाली कुरसी पर बैठा था और दरोगा पहले ही की तरह सामने फाइल रखकर उसमें से कुछ पढ़ रहा था। बलभद्र कुछ टूट सा गया था और अब विश्वास के साथ अपनी परिस्थिति को देख नहीं पा रहा था। दरोगा ने जब उससे चाय के लिए पूछा, तो उसने हामी भरते हुए धन्यवाद कहा।

दरोगा ने फाइल में से पुस्तक को निकाला और उसकी निर्दिष्ट कहानी को खोलते हुए पूछा, "इस कहानी को आपने कब लिखा था, आप कुछ बता रहे थे?"

बलभद्र बोला, "वैसे तो मुझे बहुत सटीक पता नहीं है, पर मैंने इसे कुछ साल पहले लिखा था।" उसी समय चाय आ गई। दरोगा बोला, "लीजिए, चाय पीजिए और सोचने की थोड़ी सी कोशिश कीजिए। चूँकि पुस्तक अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है, तो कोई भी सोचेगा कि कहानी अभी की लिखी हुई है।"

दरोगा की बात का तुरंत कोई जवाब नहीं दिया बलभद्र ने और चाय पीते हुए सोचने का नाटक किया। चाय पीने के बाद कप को एक तरफ रखने जा ही रहा था, तभी दरोगा बोला, "आप समाज के एक सम्मानित व्यक्ति हैं। आपकी कहानी में ऐसे कई विस्तृत विवरण है, जो अपराधी और पुलिस के अलावा कई और लोगों को भी पता हैं। पर हमने खोज में बाधा उत्पन्न होने की आशंका से उन विवरण को बाहर प्रकट नहीं किया है। आपकी कहानी में अपराधियों के सफेद मारुति वैन में आने का जिक्र है और राउरकेला में सच में वे वैसी ही गाड़ी में आए थे। आप ही बताइए, यह कैसे हुआ?"

बलभद्र बोला, "इसका उत्तर बहुत आसान है। अगर अखबार में आपराधिक मामलों के बारे में पढ़ेंगे तो ज्यादातर केस में अपराधी सफेद मारुति वैन का ही इस्तेमाल करते नजर आएँगे।"

दरोगा बोला, "आपकी बात ठीक है। अब आपकी कहानी के एक दूसरे विवरण पर आते हैं। अपहरण के बाद कनकराज के टेबल पर एक बंद लिफाफा मिला था, जिसके भीतर एक सादा कागज रखा हुआ था। इस बारे में पुलिस और

आपके अलावा किसी को पता नहीं है। हमारा सवाल है कि आपने इस बारे में कैसे जाना?"

बलभद्र तुरंत इसका जवाब नहीं दे पाया। कुछ देर बाद बोला, "मुझे पता नहीं था कि राउरकेला केस में भी ऐसा एक लिफाफा मिला था! मैंने तो यह बात कल्पना से लिखी थी। और फिर मैंने आपसे पहले ही कहा है कि राउरकेला की घटना के बहुत पहले ही यह कहानी लिखी गई थी।"

"तो फिर क्या यह संभव है कि," दरोगा ने पूछा, "इस कहानी द्वारा प्रेरित होकर राउरकेला अपहरण कांड हुआ?" बलभद्र इस प्रश्न के लिए तैयार था। उसने कहा, "कई बार ऐसा होता है कि कहानी में लिखी गई कोई काल्पनिक कथा भविष्य में ठीक उसी तरह से घटित होती है। ऐसे में उसे पूरी तरह से संयोग कहने के अलावा उसकी और कोई व्याख्या नहीं हो सकती है। टाइटैनिक जहाज के डूबने से कुछ साल पहले एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें एक जहाज अपनी पहली यात्रा में ही डूब गया था, इसका वर्णन था। यहाँ तक कि जहाज का आकार, उसके यात्रियों की संख्या और ऐसी कई छोटी-बड़ी घटनाओं के बारे में लिखा गया था, जोकि टाइटैनिक के डूबते समय की घटनाओं से मिलती-जुलती थीं।"

दरोगा बोला, "हाँ, मैंने भी इस बारे में कहीं पढ़ा था। लोग कहते हैं कि नास्त्रेदम और अच्युतानंद मलिक की भविष्यवाणियाँ अभी भी सच हो रही हैं। पर मैं टाइटैनिक की घटना से पहले के उपन्यास या पहले की गई भविष्यवाणियों के बारे में मैं नहीं कह रहा था। मैं तो ऐसे लेखों के बारे में कह रहा था, जो किसी को अपराध करने के लिए प्रेरित करता है। हमारे पुलिस रिकॉर्ड में ऐसे कई उदाहरण हैं, जिसमें अपराधी ने कोई पुस्तक पढ़कर या फिल्म देखकर उसी तरह का अपराध किया है।"

बलभद्र बोला, "पर बिहार के गुंडे मेरी कहानी को क्यों पढ़ेंगे?" उसकी बात सुनकर दरोगा तुरंत सतर्क हो गया। अपनी सीट पर सीधा बैठते हुए पूछा, "आपको कैसे पता चला कि राउरकेला में हुआ अपहरण बिहार के गुंडों ने किया?" बलभद्र बोला, "उस दिन आपने मुझे अखबार की जो कतरन दी थी, उसी में से पढ़ा था मैंने।"

दरोगा फाइल में से उसी पुरानी कतरन को बाहर निकालकर बलभद्र को देते हुए बोला, "इसे एक बार फिर पढ़कर देखिए। इसमें अपराधी कहाँ के हैं, इस बारे में कोई सूचना नहीं दी गई है।"

अखबार की रिपोर्ट को ध्यान से पढ़ा बलभद्र ने। सच में उसमें बिहारी गुंडों के बारे में कोई उल्लेख नहीं था। पता नहीं क्यों, उसके दिमाग में ऐसी बात आई? उसने पहले कहा था कि राउरकेला अपहरण के बारे में वह जानता नहीं है, अब

अपनी भूल को सुधारने के लिए बोला, "तो फिर मैंने किसी दूसरी अखबार में पढ़ा होगा।" दरोगा बोला, "हमारे पास सारे अखबारों की फाइल है। उसमें किसी एक में भी लिखा नहीं है कि अपहरणकर्ता बिहार से आए थे। पर यदि आप ऐसे किसी अखबार को हमें दिखा सकते हैं तो हमारे काम आ सकती है वह खबर।"

उसके बाद बलभद्र जाने के लिए उठा, तो खड़ा होकर दरोगा उसे विदा करते हुए बोला, "हमारी खोज जारी है। अगर हमें पता चलता है कि अपहरणकर्ता बिहार के हैं तो हमारा पूर्व संदेह और भी दृढ़ हो जाएगा।"

पहली बार इस घटना से बलभद्र के मन में डर समाया। अपने लेखकीय जीवन में सबसे ज्यादा असुविधा में वह तब पड़ा था, जब एक नेता के बारे में उसने कहानी लिखी थी। उसकी कहानी का चरित्र लँगड़ा था और बहुत ही दुष्ट, दुश्चरित्र और भ्रष्टाचारी था। वैसे उसने उस चरित्र का कोई नाम नहीं दिया था, पर उसे केवल 'लँगड़ा' लिखा था। उसके दुर्भाग्य से उस समय की सरकार में एक लँगड़ा मंत्री थे और वे घूसखोरी के लिए बदनाम थे। बलभद्र की कहानी पत्रिका में प्रकाशित होने के बाद, यह उसी मंत्री के बारे में लिखी गई है, यह लोगों में प्रचारित होने लगा और पाठकों ने इसका खूब मजा लिया। साहित्य में कोई रुचि नहीं थी मंत्री की, फिर भी लँगड़े मंत्री को यह खबर मिल गई और उसके गुंडे बलभद्र के घर पहुँच गए। उसने उन्हें कितना भी समझाया कि यह संयोग भर है, पर वे मानने को तैयार थे। अंततः बलभद्र अखबार में क्षमा-पत्र लिखने के लिए राजी हुआ और किसी पुस्तक-संग्रह में इस कहानी को नहीं रखेगा, इसका वादा किया। पर वे तब भी नहीं माने और उसे धमकाते हुए बोले कि उसकी टाँग तोड़कर उसे भी लँगड़ा कर देंगे। पर बलभद्र की किस्मत अच्छी थी कि उसी समय उनके दल में कुछ समस्या आ गई और वे बलभद्र को छोड़कर लँगड़े मंत्री के विपक्षी दल के लोगों का पैर तोड़ने के लिए चले गए।

उसके दोस्त उस समय उससे पूछते थे कि क्या मंत्री को ध्यान में रखकर उसने उस लँगड़े चरित्र का निर्माण किया था, या फिर कल्पना का चरित्र संयोग से वास्तव चरित्र के साथ मेल खा रहा था? बलभद्र उनके इस प्रश्न का उत्तर ठीक से दे नहीं पा रहा था; कारण, वह उस नेता के बारे में जानता तो था, पर लिखते समय उसको ध्यान में रखा था या नहीं, इस बारे में वह खुद स्पष्ट नहीं था।

ऐसी बात नहीं थी कि किसी को ध्यान में रखकर उसके बारे में वह कहानी नहीं लिखता था। पर पकड़े जाने के डर से चरित्र का नाम बदलकर, एक-दो और लोगों के चाल-चलन, हाव-भाव को मिलाकर, घटना को तोड़-मरोड़कर अतिरंजित कर वह कहानी लिखता था। केवल एक कहानी में पति-पत्नी के संबंधों

के बारे में वह सीधे-सीधे ईमानदारी के साथ लिख पाया था; और ऐसा इसलिए संभव हो पाया था, क्योंकि उसने सभी के मरने के बाद उस कहानी को लिखा था। वैसे कई बार उसे लगता था कि कहानी एकतरफा लिखी गई थी। उसमें स्त्री के सही दृष्टिकोण को वह उभार नहीं पाया था। अगर स्त्री को मौका दिया जाता तो शायद कहानी में उसके प्रति किए गए आक्षेपों का वह तर्कसंगत जवाब दे पाती!

यह तो हुई एक सच्चे चरित्र की बात। उसके कई काल्पनिक चरित्रों को उससे शिकायत नहीं होगी, ऐसी बात नहीं थी। अपनी एक कहानी में दहेज समस्या से पीड़ित एक स्त्री चरित्र का उसने जैसा चित्रण किया था, उसमें उसके प्रति किसी की भी सहानुभूति नहीं थी। उसका पूर्व प्रेमी, उसका पति, माता-पिता, सास-ससुर, ननद, उसकी बस्ती के लोग, यहाँ तक कि जिस रिक्शे में वह बैठी थी, उसका चालक का भी दोषी था। बलभद्र ने आखिर में उस स्त्री को आग में जलाकर मरवा दिया था। क्या सच में उस काल्पनिक स्त्री चरित्र के साथ उसने न्याय किया था? अगर वह आकर उसके सामने खड़ा हो जाए और प्रश्न करे उससे, तो क्या जवाब देगा वह?

इस तरह की अप्रिय बातों से अपने मन को हटाने की कोशिश की बलभद्र ने। उसकी अभी की समस्या है, राउरकेला के अपहरण की घटना। उसके पास इसका कोई प्रमाण नहीं है कि उस कहानी को सच्ची घटना से पहले लिखा गया था, उसके बाद नहीं। उसने तय किया कि इस बारे में वह प्रकाशक को अपनी तरफ करेगा। पर प्रकाशक के साथ उसके संबंध उतने अच्छे नहीं थे और फिर पुलिस के इस मामले में वह उसका साथ देगा, यह विश्वास बलभद्र को नहीं था। फिर भी घर पहुँचकर उसने प्रकाशक को फोन किया। उसके ऑफिस से उसे पता चला कि दो दिन पहले ही प्रकाशक राउरकेला के लिए निकल चुके हैं।

बलभद्र के दिमाग में पांडुलिपि का खयाल आया। उसने सोचा कि पुस्तक तो अभी छपी है, पर हाथ से लिखी पांडुलिपि बहुत पहले प्रकाशक को भेजी थी उसने। इस बारे में हो सकता है कि वह प्रकाशक से सीधे अनुरोध न कर पाए, पर पुलिस जरूर उससे इसकी सच्चाई को बाहर निकाल पाएगी। इसी आशा से उसने दरोगा को फोन लगाया। दरोगा लाइन पर आया तो बलभद्र बोला, "मुझे याद आ गया है कि पुस्तक की पांडुलिपि मैंने राउरकेला की घटना से बहुत पहले ही प्रकाशक को भेज दी थी मैंने। उसी से प्रमाणित हो जाएगा कि कहानी पहले लिखी गई थी, बाद में नहीं। इस बारे में आप प्रकाशक से पूछ सकते हैं।" उसकी बात सुनकर दरोगा ने पूछा, "आपके प्रकाशक कौन है, बताइए?" बलभद्र ने कहा, "सुरसेन!" नाम सुनकर कुछ देर चुप रहा दरोगा, 'दैट्स इंटरेस्टिंग' कहते हुए फोन रख दिया।

उसके बाद कुछ दिनों तक पुलिस की तरफ से कोई फोन नहीं आया, पर बलभद्र अपने को उस चिंता से मुक्त नहीं कर पाया। वह सोचने लगा कि कैसी कहानी लिखी जाए कि कभी संकट का सामना न करना पड़े? पाठक आशा करते हैं कि कहानी में चरित्र वास्तविक हों, पर यही बात संकट का कारण भी बन जाती है। एक विवाहित स्त्री के नाजायज प्रेम के बारे में एक कहानी लिखी थी उसने। कहानी लोगों को पसंद आई थी, पर उतने में ही संतुष्ट न होकर हर कोई उस चरित्र के मूल उपादान को ढूँढ़ निकालने में जुट गया। इसके चलते शहर की कई आजाद खयाल नारियों का नाम उछलने लगा। क्लब में स्त्रियाँ ही आपस में कानाफूसी करने लगीं। एक-दूसरे पर आक्षेप लगाने लगीं। आखिर में सभ्य घरों की बेटी-बहुओं को इस तरह से बेपरदा करने के लिए बलभद्र को ही दोषी माना गया। एक दिन किसी मित्र ने फोन करके कहा, "हम दोस्तों में सट्टा लगा है कि कहानी की चरित्र राधा असल में कौन है। मेरा कहना है सीमा शर्मा, पर मेरा दोस्त कहता है, सोनाली दास। तुम बताओ कि कौन है राधा?" बलभद्र ने उसे डाँटते हुए फोन रख दिया। पर इस घटना के कुछ दिन बाद उसने गौर किया कि मि. शर्मा अब उससे बात नहीं कर रहे हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए तो 'कीर्तिमुख' नाम से लिखी गई कहानियों के सारे चरित्र समस्या रहित हैं। शायद अपने वास्तविक चरित्रों के अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए नकली पात्रों का चित्रण वह करता था। वे सभी निर्जीव खिलौने भर थे, जिन्हें वह साहित्यिक सृजन की मर्यादा देना नहीं चाहता था। फिल्मी गुंडा, बदमाश, पुलिसवाला, सस्ता प्रेमी वे सभी, उसके धूसर सृजनशील पृथ्वी के अथलोक के बाशिंदे थे। इन्हें कभी भी आम सड़क, बाजार में चलते-फिरते कोई नहीं देख पाएगा। वे वास्तविकता से इतने दूर थे कि कभी किसी ने उन चरित्रों के साथ अपनी तुलना नहीं की थी और न ही पूछा था कि किस चरित्र को आधार बनाकर लिखी थी उसने कहानी? पर कई बार वास्तविकता भी कल्पना का अनुसरण करती है। इसलिए शायद राउरकेला की अपहरण की घटना उसके लिए परेशानी का सबब बन गई थी। ऐसा लग रहा था, मानो कागज पर उतारे गए उसके नकारात्मक चरित्र अपने अनादर का उससे बदला लेना चाहते थे।

फिर एक दिन थाने से फोन आया। बलभद्र को थोड़ी सी खुशी महसूस हुई; कारण, वह जानना चाहता था कि खोजबीन में और कितनी प्रगति हुई है और उसमें उसकी स्थिति क्या हैं? पहले की घटना की पुनरावृत्ति हो रही थी, जैसे उसी तरह से वर्तमान में बलभद्र के सामने दरोगा फाइल खोलकर उसमें से कुछ पढ़ रहा था।

उसके लिए चाय मँगाने के बाद फाइल पर से आँख उठाकर उसकी तरफ देखते हुए वह बोला, "हमारी खोजबीन खत्म होने तक आपको इसी तरह से हम कभी-कभी तकलीफ देते रहेंगे।" मित्रता का हाथ बढ़ाते हुए बलभद्र बोला, "मैं आपकी हर तरह से मदद करने के लिए तैयार हूँ।"

"अब हमें पता चला है कि," दरोगा बोला, "बिहार के एक दल का हाथ है उस अपहरण कांड में। आपको याद आ गया कि किस अखबार में बिहार के गुंडों के बारे में पढ़ा था आपने?" इस बारे में लंबी-चौड़ी कैफियत देने की हिम्मत नहीं हुई बलभद्र की; इसलिए बस 'नहीं' कहा उसने।

"आपने विभास दास के बारे में कैसे जाना?"

"विभास दास? इस नाम के किसी व्यक्ति को मैं जानता हूँ, मुझे याद नहीं है।"

"आपकी कहानी में अपराधियों का जो चरित्र है, उसमें एक का नाम विभास दास है। पुस्तक दूँ आपको, देखेंगे?"

"नहीं, पुस्तक की जरूरत नहीं। मुझे याद आ गया। मैंने इस नाम का उपयोग किया है उस कहानी में। हम लेखक मन से सोचकर चरित्रों का नाम दे देते हैं। कहानी की घटनाएँ जिस तरह से काल्पनिक होती हैं, वैसे ही चरित्रों के नाम भी।"

दरोगा बोला, "ऐसा भी तो होता है कि सच्ची घटनाओं को आधार बनाकर कहानी लिखी जाती है। अगर आप किसी सच्ची घटना पर कहानी लिखते तो चरित्रों का असली नाम देते या काल्पनिक?"

बलभद्र को समझ में आ गया कि वह जो उत्तर देगा, मुसीबत में पड़ेगा। उसे याद आ गई आकाश, विकास, विजय, विनय की बात। पर पुलिस से इतनी सारी बातें कहकर कोई लाभ होनेवाला नहीं था। सीधे-सीधे जवाब न देते हुए बोला, "लेखक ज्यादातर काल्पनिक नाम का ही व्यवहार करते हैं।" दरोगा उस दिन के सवाल-जवाब को वहीं स्थगित रखते हुए बोला, "अगर विभास दास के बारे में कुछ याद आए तो मुझे बताइएगा।"

बलभद्र को यह समझ में नहीं आया कि विभास दास के बारे में जानने के लिए दरोगा इतना उत्सुक क्यों है? उसने तो उस कहानी में कई और नाम भी लिखे हैं। सच में ही वह सोचने लगा कि क्या किसी विभास दास को वह जानता है? पर ऐसा कोई व्यक्ति याद नहीं आया उसे। कुछ दिन तक इस विभास दास के बारे में सोचकर वह परेशान रहा।

पुलिस के साथ हुई इस बातचीत और कथित समस्या के बारे में अभी तक उसने किसी को नहीं बताया था। सुरसेन से इस बारे में कुछ सलाह लेने की बात

सोचकर उसने उसके ऑफिस में फोन किया और राउरकेला से कब वह लौटेगा, उसके बारे में पूछा। पर ऑफिसवालों ने कहा कि वे राउरकेला गए हैं या कहीं और, इसके बारे में उन्हें पता नहीं है और वे यह भी नहीं जानते हैं कि वे कब लौटेंगे?

दूसरे दिन उसे विभास दास के रहस्य के बारे में भी पता चल गया। उस दिन के सुबह के अखबार में उस अपहरण कांड के बारे में एक छोटी सी खबर छपी थी। अभी तक जनकराज की कोई खोज-खबर नहीं मिली थी। शक के चलते पुलिस ने बिहार के एक डकैत दल को पकड़ा है। उसी दल में एक डाकू का नाम विभास दास था।

अचानक बलभद्र के मन में डर बैठ गया। अपने को वह जेल में देखने लगा। वैसे कभी जेल देखने का सौभाग्य तो उसे नहीं मिला था, पर एक कहानी में जेल के बारे में कल्पना करके लिखा था उसने। उस कहानी के बारे में सोचा तो उसे जेल के गुणनिधि और उसका बायाँ हाथ कहलानेवाला भिखारी नायक याद आ गया। उसकी कहानी में गुणनिधि एक बदमाश था और कैदियों को कैसे तंग करके उन्हें हलकान किया जा सकता है, उसमें माहिर था। बलभद्र को आशंका होने लगी कि वह जेल जाएगा तो उसी गुणनिधि से उसका सामना हो जाएगा, जो उसे उसके सामने खड़े होकर कहेगा, 'मेरे नाम से झूठ-सच लगाकर कहानी लिखता था न! देख, मैं तुझे कैसे जेल का मजा चखाता हूँ!' उसके बाद वह भिखारी को उसके पीछे लगा देगा उसे परेशान करने के लिए। कहानी में भिखारी कैदियों को तकलीफ देने के लिए जो भी तरीके इस्तेमाल करता था, वे सब याद आने लगे उसे। वह कल्पना करने लगा कि भिखारी उसे भी उन सब तरीकों को आजमाकर परेशान करेगा। वह सबकुछ बहुत ही भयानक था।

अखबार की उस संक्षिप्त खबर का सारांश था—किसी अनिर्दिष्ट जगह जाने के कारण सुरसेन का अनुपस्थिति रहना, अपहरण केस में विभास बनाम प्रभाव दास का पकड़ा जाना काफी कुछ इशारा करता है। इस खबर के छपने के कुछ दिन तक थाने से बलभद्र के लिए कोई फोन नहीं आया। इन सब बातों से बलभद्र बेचैन रहने लगा। उस केस के अलावा उसका कहीं और मन नहीं लगता। उस कहानी के साथ असली घटना की समानता चाहे जिस कारण से भी हो, पर वह तभी निश्चिंत हो पाएगा, जब जनकराज को खोज लिया जाए और अपराधी पकड़ में आ जाएँ। तभी जाकर ही यह प्रमाणित हो सकेगा कि उसकी रचना के साथ वास्तविक घटना का कोई संबंध नहीं था और वह बिल्कुल एक संयोग ही था। वह टेलीफोन की तरफ देखता हुआ बैठा रहता।

इस तरह से जब तक उसके सब्र का बाँध टूटता, तब तक थाने से खबर आई

कि वह जाकर दरोगा से मिल ले। इतने दिनों की उत्कंठा उसकी खत्म हुई तो उसने शांति की साँस ली, जबकि वह जानता था कि उसका इस तरह से बार-बार थाने जाना उसे अपराध-चक्र से और भी जोड़ता जा रहा था। थाने में कुरसी पर बैठकर थाना बाबू को देखते समय उसे काक्का की पृथ्वी की याद आ गई। वह चित्र उसके लिए वर्तमान में जितना हास्यास्पद था, उतना ही भयंकर भी। अबकी बार दरोगा की बातचीत बहुत ही व्यावहारिक थी और उससे अपहरण की बात न पूछकर उसने सुरसेन के बारे में प्रश्न किया। बलभद्र ने उसे बताया कि सुरसेन को वह कई सालों से जानता है और व्यवसाय के अलावा उनका संबंध मैत्रीपूर्ण है। सुरसेन के ऑफिस से उसे पता चला था कि वह राउरकेला गया है, पर किस सिलसिले में गया है, वह नहीं जानता है। न ही उसकी रचनाओं में सुरसेन का कोई हाथ है, न ही कहानी लिखने से पहले वह सुरसेन से उस बारे में कोई चर्चा ही करता है। हाँ, किस प्रकार की कहानी की माँग ज्यादा हैं, इस बारे में कभी-कभी उनके बीच चर्चा जरूर हुई है। पर उसके अपहरण वाली इस कहानी में सुरसेन का कोई सहयोग नहीं है। लोगों से सुनी हुई कुछ बातों को वह कहानियों में व्यवहार करता है, पर सुरसेन से सुने किसी विषय पर उसने कोई कहानी लिखी है, यह उसे याद नहीं है। सुरसेन के प्रकाशन व्यवसाय में उसका कोई हिस्सा नहीं, न किसी तरह का कोई संबंध है। सुरसेन की माली हालत के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं है। सुरसेन सच में राउरकेला गया है या नहीं और कब वह लौटेगा, इस बारे में उसे कुछ पता नहीं है। जहाँ तक उसे याद आ रहा है, सुरसेन इतने दिनों तक शहर से कभी बाहर नहीं रहा।

बलभद्र से इतनी जानकारी लेने के बाद दरोगा बोला, "तफ्तीश में सहायता करने के लिए आपको राउरकेला जाना होगा।" यह बात सुनकर बलभद्र हैरान नहीं हुआ, क्योंकि उसने यह मान लिया था कि जिस भी कारण से हो, वह अब इस जाँच-पड़ताल का एक विशेष हिस्सा बन चुका है और उसे इसमें सक्रिय भाग लेना होगा।

चलती ट्रेन में कॉन्स्टेबल के पास बैठकर अपने आसपास का जायजा लिया बलभद्र ने। उसके सामने बैठे बुजुर्ग भद्र व्यक्ति और युवा पति-पत्नी का जोड़ा उसे परिचित से लगे। अपनी समस्या को भूलकर उनके हाव-भाव को देखने लगा। वह भद्र व्यक्ति पास बैठे युवक की तरफ टाइम-टेबल बढ़ाते हुए बोले, "मुझे चश्मा नहीं मिल रहा है; इसमें देखकर बताना जरा कि ट्रेन जंक्शन पर कब पहुँचेगी?" युवक ने पन्ने पलटे। वे बुजुर्ग व्यक्ति बोले, "दस या फिर ग्यारह नंबर टेबल में होगा।" युवक ने उन्हें समय बताया। बुजुर्ग व्यक्ति कलाई घड़ी को देखते हुए बोले, "ट्रेन तीन घंटे लेट चल रही है।" ठीक उसी समय बलभद्र को उस युवक का नाम

याद आ गया, 'मधुबन' पत्नी का नाम 'सुरमा'। इनको लेकर बहुत दिन पहले उसने एक कहानी लिखी थी।

राउरकेला का दरोगा प्रौढ़, मोटा और हिंस्र प्रकृति का था। थाने का कमरा कम रोशनीवाला, उदास और डरावना था। बलभद्र के कुरसी पर बैठते ही दरोगा बोला, "आपको जानकार खुशी होगी कि हमारी तफ्तीश पूरी हो चुकी है। आप जरूर सुरसेन और जनकराज के व्यवसाय के बारे में जानते होंगे। और यह भी जानते होंगे कि सुरेसन पर जनकराज का बहुत कर्जा बाकी था। सुरसेन को गिरफ्तार कर हमने हवालात में डाल दिया है। हमें शक है कि इस केस में आप सुरसेन के सहयोगी हैं, इसलिए हम आपको भी गिरफ्तार करेंगे।" इसके बाद दरोगा कुरसी पर से उठते हुए उसकी तरफ उँगली दिखाते हुए बहुत ही नाटकीयता के साथ चिल्लाकर बोला, "यू आर अंडर अरेस्ट!"

बलभद्र बिल्कुल भी अचंभित नहीं हुआ, मानो यह सबकुछ होना ही था। उसने चारों तरफ नजर दौड़ाई। थानेदार की बाईं तरफ थी काल-कोठरी। उसके द्वार पर गुणनिधि जेलर के यूनिफॉर्म में खड़ा था और उसकी तरफ उँगली से इशारा करते हुए अर्दली की ड्रेस पहने भिखारी को कुछ आदेश दे रहा था। काल-कोठरी की लोहे की सलाखों से भीतर से वहाँ मौजूद सभी लोगों को वह देख पा रहा था। उन सलाखों के पीछे से सुरसेन उसे गुस्से से देख रहा है। जैसे वह कह रहा है कि 'तेरे कारण से इस हालात में पड़ा हूँ!' उसके पास सीमा शर्मा और सोनाली दास खड़ी थीं और दोनों मुसकरा रही थीं। उन दोनों के पास जो औरतें खड़ी थीं, उनका चेहरा जलकर भयानक हो गया था और वह अपनी अंधी आँखों से उसे अपलक घूर रही थी। मिता अपने बेटे को गोद में लेकर उसे प्यार कर रही थी, पर बलभद्र की तरफ नहीं देख रही थी। विकास और विनय आपस में बातचीत करते हुए किसी बात पर हँस रहे थे। वह बेलौस स्त्री मगन होकर पान चबा रही थी और बलभद्र से आँखें मिलते ही पान का पीक थूक दिया था उसने। लँगड़ा मंत्री अपनी लकड़ी को उसकी तरफ उठाए हुए था और गुंडा मूँछ पर ताव दे रहा था। सुरमा मधुबन के कंधे पर सिर रखकर सो गई थी।

उनके पीछे की पंक्तियों में विभास दास के साथ कीर्तिमुख सारे हवालात में मजमा लगाए हुए थे। क्लांत और खिन्न होकर बलभद्र ने उन सभी से अपना मुँह फेर लिया।

□□□



जगन्नाथ प्रसाद दास

जन्म 26 अप्रैल, 1936। ओड़िशा के बहुचर्चित रचनाकार। मूलतः कवि, नाटककार। कला और फिल्मों में गहरी अभिरुचि। हिंदी पाठकों के बीच भी सुपरिचित नाम। कला-इतिहास में पी-एच.डी.। 1951 में 39 कविताओं का संग्रह 'स्तबका', जिसका अर्थ है 'गुलदस्ता' प्रकाशित हुआ, पर दास ने इन्हें अपरिपक्व करार दिया। अगला संग्रह 'प्रथम पुरुष' 1971 में बीस साल के अंतराल पर प्रकाशित। कई काव्य-संग्रह, नाटक, कहानी और उपन्यास प्रकाशित। काव्य-संग्रह 'जे जहर निर्जनता' के लिए 1975 का ओड़िशा साहित्य अकादमी पुरस्कार, 'आह्निक' पर वर्ष 1991 का साहित्य अकादेमी पुरस्कार, 'प्रिया विदुष्का' के लिए 1998 का सारला पुरस्कार और 'परिक्रमा' पर वर्ष 2006 का 'सरस्वती सम्मान'। राष्ट्रीय फिल्म समारोह तथा अंतरराष्ट्रीय बाल फिल्म समारोह की जूरी सदस्य रहे। भारतीय प्रशासनिक सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद साहित्य-सृजन।

सुजाता शिवेन (अनुवादक)

जन्म 1962 संबलपुर, ओड़िशा। शिक्षा स्नातकोत्तर, हिंदी। हिंदी-ओड़िया रचनाकार, अनुवादक, कला, संस्कृति, सिनेमा- शोधार्थी। 25 अनूदित पुस्तकें और काव्य-संकलन 'कुछ और सच' प्रकाशित। गैर-हिंदीभाषी लेखक पुरस्कार से सम्मानित। हिंदी अकादमी, दिल्ली की पूर्व सदस्य। 65वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार की जूरी सदस्य, दैनिक जागरण फिल्म फेस्टिवल प्रिव्यू समिति की सदस्य।



ज्ञान विज्ञान एजूकेयर



